करलो जिनवर की पूजन

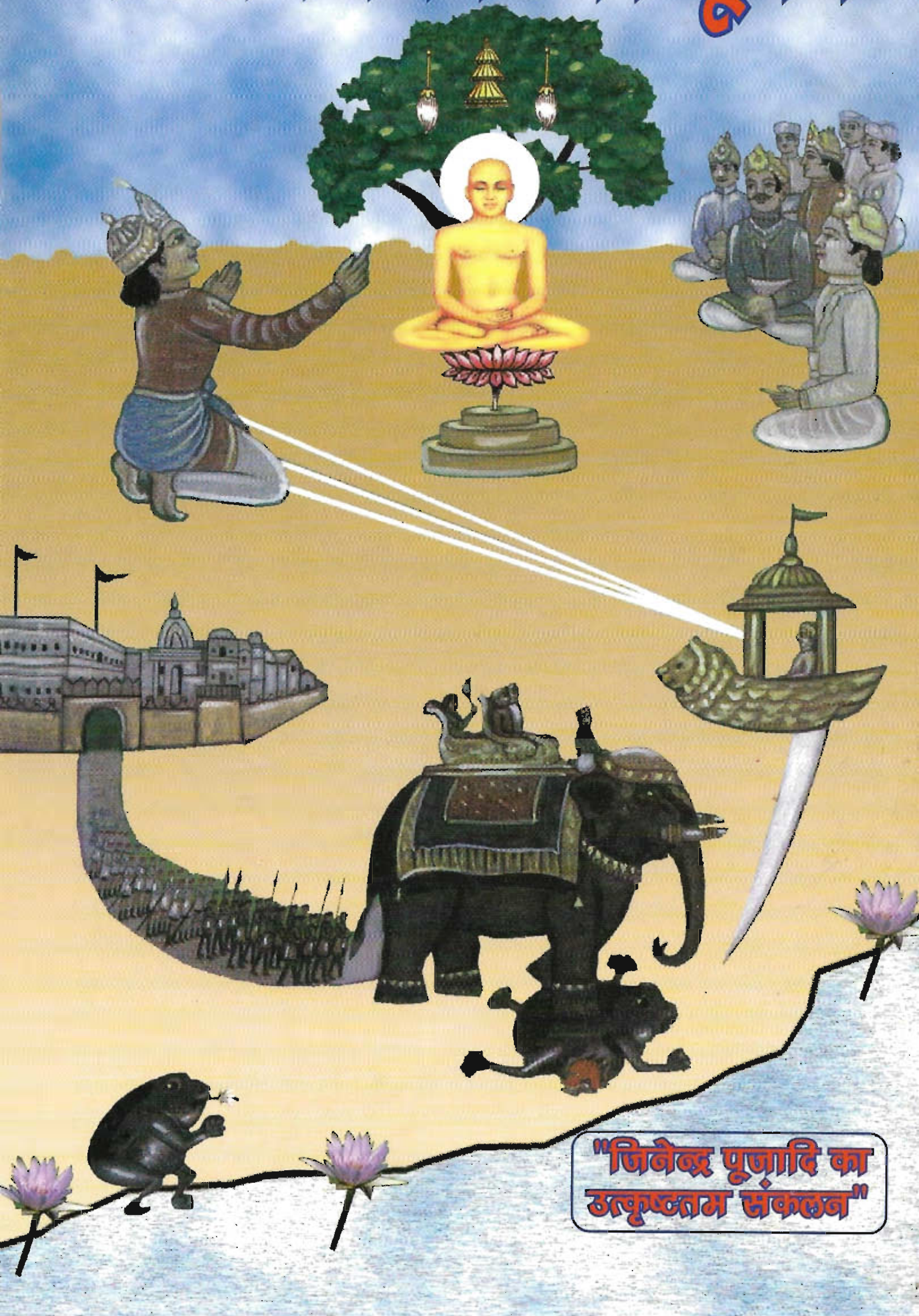

"जिनेन्द्र पूजादि का उत्कृष्टतम संकलन"

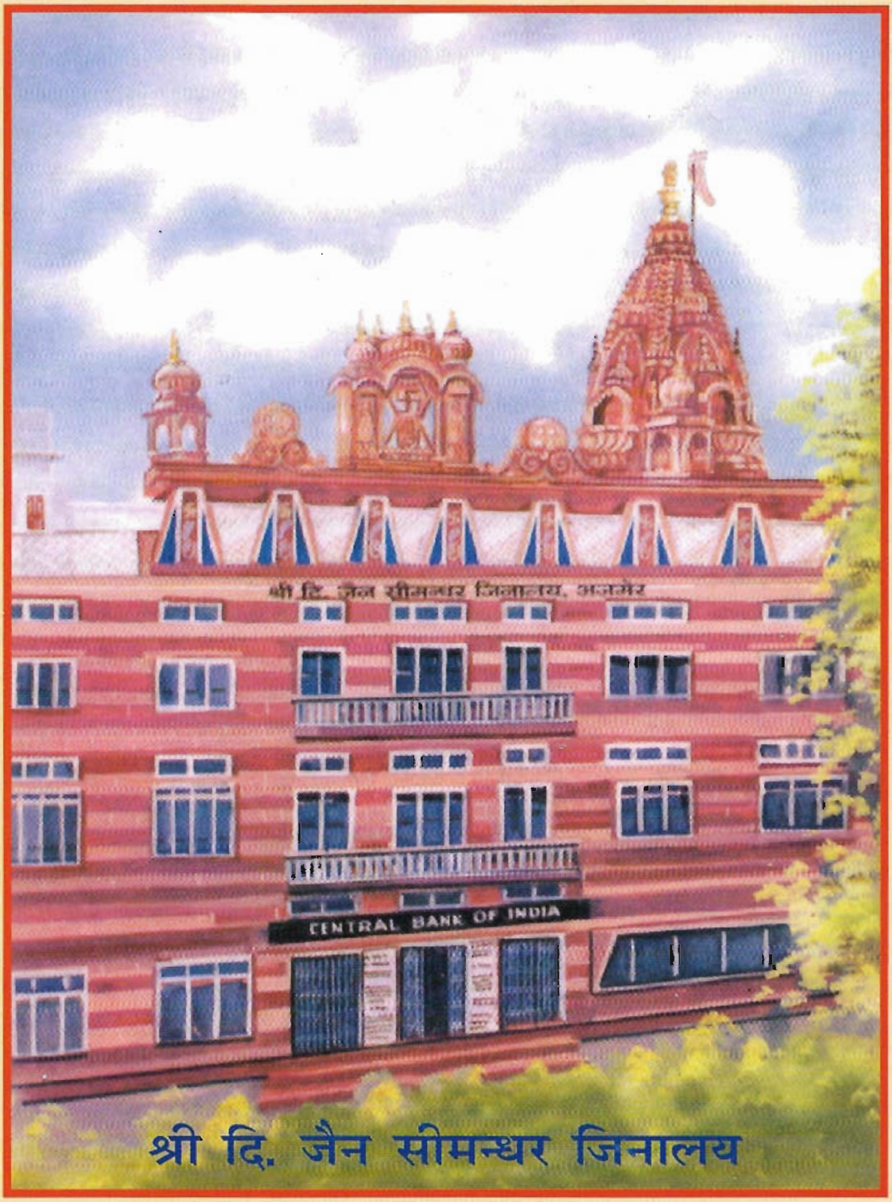

प्रकाशक

पंडित सदासुख ग्रन्थमाला

वीतराग-विज्ञान स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट

वीतराग-विज्ञान भवन, पुरानी मंडी अजमेर-305001

नमः सिद्धेभ्यः

पण्डित सदासुख ग्रन्थमाला पुष्प नं 9

करलो जिनवर की पूजन

प्राक्कथन

बाबू जुगलकिशोर जैन "युगल"

सम्पादक

देवेन्द्र कुमार जैन

बिजौलियाँ-311 602

जिला-भीलवाड़ा (राज.)

संकलन

हीराचन्द बोहरा

जयपुर (राज.)

प्रकाशक

पण्डित सदासुख ग्रन्थमाला

अन्तर्गत

श्री वीतराग विज्ञान स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

वीतराग विज्ञान भवन, पुरानी मंडी, अजमेर

प्रथमावृत्ति	:	5100 प्रतियाँ
द्वितीयावृत्ति	:	5100 प्रतियाँ
तृतीयावृत्ति	:	5100 प्रतियाँ
चतुर्थवृत्ति	:	5100 प्रतियाँ
पंचमावृत्ति	:	5100 प्रतियाँ
षष्ठमावृत्ति	:	3100 प्रतियाँ

श्री वीर निर्वाण एवं कार्तिक माह अष्टान्हिका महोत्सव के अवसर पर प्रकाशित वीर नि.सं 2541 माह नवम्बर सन् 2014

मूल्य : 50 रूपये

"करलो जिनवर की पूजन"
आवंरण-चित्र परिचय

राजगृह नगर में सेठ नागदत्त और सेठानी भवदत्ता रहते हैं। अपनी आयु के अन्त में सेठ आर्तध्यान पूर्वकर मरकर अपने ही घर के पीछे स्थित बावड़ी में मेंढ़क हो जाते हैं। अवधिज्ञानी मुनिराज से यह वृतान्त सुनकर सेठानी मेंढ़क को अत्यन्त आदर के साथ लाकर घर में रखती है। एक बार भगवान महावीर समवसरण सहित राजगृही में पधारते हैं और राजा श्रेणिक अपनी प्रजा सहित उनकी वंदनार्थ जाते हैं। आनन्दमय भेरी की आवाज सुनकर मेंढ़क भी अतिशय भक्तिभावना पूर्वक अपने मुँह में कमल-पत्र दबाकर जिनेन्द्रपूजन हेतु गमन करता है, परन्तु मार्ग में ही राजा श्रेणिक के हाथी के पाँव तले दबकर मर जाता है और भक्तिभावनारूप शुभ परिणामों से तुरन्त ही देव होकर वीरप्रभु के समवसरण में उपस्थित होता है।

प्राप्ति स्थान :

- **पण्डित सदासुख ग्रन्थमाला**
  4635/38, डिप्टीगंज, सदर बाजार
  दिल्ली–110006
  फोन नं. 23526448, 23540673
- **श्री वीतराग विज्ञान स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट**
  वीतराग-विज्ञान भवन, पुरानी मण्डी,
  अजमेर (राज.)
  फोन नं. 2429397, 2423153
- **पण्डित टोडरमल स्मारक भवन**
  ए–4, बापूनगर, जयपुर–302015 (राज.)
  फोन नं. 2707458, 2705581
- **आचार्य कुन्दकुन्द शिक्षण संस्थान ट्रस्ट**
  ए–304, पूनम अपार्टमेन्ट, वरली,
  मुम्बई–18
  फोन नं. 24921969

मुद्रक :
इण्डिया बाईण्डिंग हाऊस
A-98 सेक्टर 65, नोएडा-201301 (उ.प्र.)

प्रकाशकीय

जगत के समस्त प्राणियों के लिये महान पवित्र एवं कल्याणकारी दिगम्बर जैन वीतराग धर्म को देश–विदेश के हर कोने में प्रसारित करने की मंगलमय भावना तथा पावन लक्ष्य से अनुप्राणित होकर श्रेष्ठी रत्न जिन भक्त धर्मवत्सल अध्यात्म प्रेमी मुम्बई प्रवासी तथा अजमेर निवासी श्री पूनमचन्दजी लुहाड़िया ने दिनांक 16 अप्रेल, 1985 को श्री वीतराग विज्ञान स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट प्रस्थापित कर एक अनुकरणीय प्रेरणा दायक कार्य किया। इसी ट्रस्ट के अन्तर्गत स्थापित पं. सदासुख ग्रन्थमाला द्वारा वीतराग जैन धर्म के बहुमुखी प्रचार–प्रसार का पुनीत कार्य पूर्ण धर्मोत्साह के साथ वृद्धिगत है। ग्रन्थमाला द्वारा अनुपलब्ध दिगम्बर जैन साहित्य के प्रकाशन की दिशा में अब तक निम्न ग्रन्थ लोकार्पित किये जा चुके हैं।

1. मृत्यु महोत्सव : (चार संस्करण)
2. सहज सुख साधन : (चार संस्करण)
3. बारह भावना शतक : (द्वितीय खण्ड)
4. साधना के सूत्र : (दो संस्करण)
5. आगम रत्न : बोलती दीवारें : (दो संस्करण)
6. अध्यात्म पंच संग्रह : (पंडित श्री दीपचन्दजी कासलीवाल)
7. रत्नकरण्ड श्रावकाचार : (पाँच संस्करण)
8. 'महाकवि भूधर दास' : एक समालोचनात्मक अध्ययन।

आचार्य कुन्दकुन्द शिक्षण संस्थान मुम्बई द्वारा प्रकाशित साहित्य

1. मोक्षमार्ग प्रकाशक प्रवचन भाग–1, भाग–2 भाग–3 एवं भाग–4

वीतराग विज्ञान स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट की कतिपय धार्मिक गतिविधियाँ

श्री सीमन्धर जिनालय, अजमेर :– ट्रस्ट के भव्य भवन में स्थित श्री सीमन्धर जिनालय में प्रतिदिन नियमित सामूहिक जिनेन्द्र पूजन, स्वाध्याय, तात्विक गोष्ठियाँ आदि विविध कार्यक्रमों के संयोजन द्वारा आत्मकल्याण के पिपासु धर्मानुरागी बन्धु आत्मविकास में संलग्न है। समवसरण का प्रतीक यह जिन मंदिर मोक्षमार्ग में

लगे हुए सभी व्यक्तियों के लिये एक सशक्त माध्यम है।

पूजन विधानों का विशेष संयोजन :– तीनों अष्टान्हिका पर्व, दशलक्षण पर्व एवं अन्य विशेष प्रसंगों पर प्रति वर्ष आयोजित होने वाले अनेक पूजन विधानों का विशेष आयोजन मुमुक्षु बन्धुओं को उनके धर्माराधन में प्रेरणा एवं बल प्रदानकर धर्म प्रभावना का प्रबल निमित्त सिद्ध हुआ है। ऐसे मांगलिक प्रसंगों पर जैन दर्शन के प्रखर तत्वाभ्यासी आध्यात्मिक विद्वानों का अनुपम लाभ भी समाज को सहज प्राप्त होता है। वर्ष में दो बार आध्यात्मिक बाल व युवा चेतना शिविर का आयोजन किया जाता है।

अन्य धार्मिक गतिविधियां :– भारतवर्ष में विभिन्न स्थानों पर प्रतिवर्ष आयोजित आध्यात्मिक शिक्षण प्रशिक्षण शिविरों में आर्थिक अनुदान प्रदान कर ट्रस्ट द्वारा देशव्यापी धर्म प्रभावना का पुनीत कार्य किया जा रहा है। दिगम्बर जैन समाज के उदीयमान प्रतिभाशाली छात्र/छात्राओं के प्रोत्साहन हेतु पुरस्कार योजना भी ट्रस्ट की गतिविधियों का एक उल्लेखनीय अंग है।

''हिन्दी गद्य के विकास में जैन मनीषी पण्डित सदासुखदास का योगदान'' विषय पर श्रीमती डॉ. मुन्नीदेवी जैन, वाराणसी द्वारा डॉक्टरेट उपाधि प्राप्ति के उपलक्ष में उन्हें ट्रस्ट द्वारा 21000/– रुपये की सम्मान राशि, प्रशस्ति–पत्र, शॉल व नारियल भेंटकर दिनांक 17 अगस्त 1986 को सम्मानित किया गया। भविष्य में भी जैन धर्म सम्बन्धी शोध निबन्धों पर डॉक्टरेट उपाधि प्राप्ति करने वाले विद्वानों को उचित प्रोत्साहन हेतु सम्मानित किये जाने की योजना है।

आत्मार्थी ट्रस्टी बन्धुओं के निवास हेतु सर्वोदय कॉलोनी, अजमेर में कुन्दकुन्द निलय–आत्मार्थी निवास भवन का निर्माण किया गया है ताकि ट्रस्ट की धार्मिक गतिविधियों का सुविधापूर्ण संचालन सहज सम्भव हो सके। ''श्री कुन्दकुन्द शोध संस्थान'' की स्थापना की भी ट्रस्ट की परिकल्पना है।

पं० सदासुखदास दिगम्बर जैन विद्यालय, जयपुर की स्थापना :– प्रसिद्ध आध्यात्मिक विद्वान पं0 श्री सदासुखदासजी द्वारा जैन तत्वज्ञान

के विश्वव्यापी प्रचार की मंगलमयी भावना को चिरस्थायी रखने के पावन उद्देश्य से ट्रस्ट ने गत पाँच–छह वर्षों से श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट, मुम्बई के अन्तर्गत संचालित श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय जयपुर की उप शाखा के रूप में पं0 श्री सदासुखदास दिगम्बर जैन विद्यालय, जयपुर की स्थापना का महत्वपूर्ण रचनात्मक कदम उठाकर इस पवित्र श्रृंखला को स्थायी दिशा प्रदान की है। इस विद्यालय के माध्यम से 25 छात्रों के भोजन, निवास, शिक्षण आदि का पूरा खर्च ट्रस्ट नियमित रूप से देता रहेगा। इन छात्रों के माध्यम से वीतरागी तत्व के प्रचार–प्रसार का कार्य भविष्य में भी निरन्तर चलता रहेगा।

आचार्य कुन्दकुन्द शिक्षण संस्थान ट्रस्ट, मुम्बई की स्थापना :–ट्रस्ट संस्थापक श्री पूनमचन्दजी लुहाड़िया द्वारा 28 मई 1995 को आचार्य कुन्दकुन्द शिक्षण संस्थान ट्रस्ट स्थापित किया गया। यह संस्थान प्रतिभाशाली विद्वानों को आर्थिक स्वावलंबन देते हुए उन्हें उचित सम्मान देकर वीतरागी तत्वज्ञान के विश्वव्यापी प्रचार–प्रसार हेतु कृत संकल्पित है। सौभाग्य का विषय है कि इस ट्रस्ट के संरक्षक अध्यात्म शिरोमणि विद्वान बाबू जुगलकिशोरजी 'युगल' कोटा हैं तथा जैन तीर्थों की अनवरत सेवा के लिए सम्पूर्ण रूप से समर्पित कर्मठ सेवाभावी श्री बसंतभाई एम. दोशी, मुम्बई मैनेजिंग ट्रस्टी हैं जिनका मार्गदर्शन एवं सक्रिय सहयोग ट्रस्ट को प्राप्त है।

अन्य जनोपयोगी योजनाएं :–सार्वजनिक सेवा के लिये समर्पित चिकित्सा संस्था श्री जैन औषधालय, अजमेर तथा श्री दिगम्बर जैन औषधालय कोटा को क्रमशः प्रतिमाह दो हजार रुपये मासिक का अनुदान ट्रस्ट द्वारा नियमित रूप से दिया जा रहा है। इसके अतिरिक्त समय–समय पर नेत्र, दंत, शल्य आदि चिकित्सा शिविरों के संयोजन में ट्रस्ट निरन्तर आर्थिक सहयोग प्रदान करता रहा है।

असहाय दीन बन्धुओं को विभिन्न रूप से आर्थिक सहायता प्रदान कर ट्रस्ट मानव कल्याण के पवित्र मार्ग की ओर भी जागरुक

रहता हुआ निरन्तर अग्रसर है।

वीतराग जिनेन्द्र भगवन्तों की महान कल्याणकारी वाणी का सारे देश में अधिक से अधिक प्रचार-प्रसार हो यही ट्रस्ट का उद्धेश्य है। इस दिशा में समाज द्वारा प्राप्त सभी रचनात्मक सुझावों का सदा स्वागत है।

प्रस्तुतकृति : करलो जिनवर की पूजन

श्रावकाचारों में वर्णित श्रावक के षटकर्मों में देवपूजा का स्थान सर्वोपरि है। यही कारण है कि दिगम्बर जैन परम्परा में जिनेन्द्र पूजन की पावनधारा अविरल प्रवाहमान है। बड़े-बड़े आचार्यों, मुनियों तथा विशिष्ठप्रज्ञा मनीषियों ने अपनी कलम से पूजन साहित्य को समृद्ध किया है। समाज में पूजन साहित्य की कमी नहीं है, परन्तु एक ऐसे संकलन की आवश्यकता काफी लम्बे समय से अनुभव की जा रही थी जिसमें प्राचीन कवियों द्वारा रचित पूजाओं के साथ-साथ वर्तमान कालीन भक्त कवियों की पूजन रचनाओं का भी समावेश हो। इस भावना से अनुप्रेरित होकर ट्रस्ट संस्थापक श्री पूनमचंदजी लुहाड़िया की तीव्र भावनाओं को दृष्टिगत रखते हुए इस कृति का सम्पादन कार्य श्री देवेन्द्रकुमारजी जैन, बिजौलियाँ द्वारा किया गया है। जिसमें उन्होंने विविध संकलनों में पाई जाने वाली पूजाओं के कतिपय अंतर को मुख्यतः ज्ञानपीठ पूजांजली अथवा वजनदार भाव के आधार पर सम्पादित किया है।

अत्यन्त गौरव का विषय है कि इस कृति का प्राक्कथन आदरणीय बाबू जुगलकिशोरजी 'युगल' द्वारा कक्षा में लिखाये गये पूजा सम्बन्धी आलेख के रूप में दिया गया है, साथ ही कतिपय अंश बाबूजी की अन्य कृति चैतन्य विहार से लिये गये हैं। इस उपकार के लिये हम बाबूजी के चिर ऋणी हैं एवं उनके स्वस्थ व दीर्घ जीवन की मंगल कामना करते हैं।

इस कृति को अत्यल्प मूल्य में पहुँचाने हेतु साधर्मीजनों द्वारा प्रदत्त आर्थिक अनुदान हेतु ट्रस्ट आभारी है। इस पुस्तक का लेजर टाईप सेटिंग स्वागत कम्प्यूटर ग्राफिक्स, बिजौलियाँ द्वारा किया गया है।

सभी साधर्मीजन इस कृति से भरपूर लाभ उठावें तथा किसी प्रकार की कमी दृष्टिगोचर होतो कृपया सूचित करने का कष्ट करें।

हीराचन्द बोहरा, मंत्री

श्री वीतराग विज्ञान स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, अजमेर

क्या/कहाँ

(स्तवन खण्ड)

1.	मंगलाष्टक (संस्कृत)..........		1
2.	देवस्तुति (प्रभु पतित पावन)...	श्री बुधजनजी	3
3.	देवस्तुति (अति पुण्य उदय)...	श्री अमरचन्दजी	3
4.	दर्शन स्तुति (सकल ज्ञेय).....	पंडित दौलतरामजी	5
5.	देवस्तुति (अहो जगत).........	पं० भूधरदासजी	7
6.	दर्शन पाठ (दर्शन श्री देवाधि)..		8
7.	आराधना पाठ (मैं देव नित)...	पण्डित द्यानतरायजी	9
8.	देवस्तुति (वीतराग सर्वज्ञ).....		10

(पूजन खण्ड)

9.	जलाभिषेक पाठ	हरजसरायजी	12
10.	प्रतिमा प्रक्षाल पाठ)...........	पंडित अभयकुमारजी	16
11.	विनय पाठ–1..................		20
12.	विनय पाठ–2..................	ब्रह्मचारी रवीन्द्रजी	22
13.	पूजा पीठिका (संस्कृत)........		23
14.	पूजा पीठिका (हिन्दी)–1........	कवि राजमलजी पवैया	27
15.	परमर्षि मंगल पाठ हिन्दी–1....		30
16.	मंगल विधान हिन्दी–2.........		32
17.	देव–शास्त्र–गुरु पूजन–1......	पण्डित द्यानतरायजी	35
18.	देव–शास्त्र–गुरु पूजन–2......	बाबू युगलजी	39
19.	देव–शास्त्र–गुरु पूजन–3......	डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल	44
20.	देव–शास्त्र–गुरु पूजन–4......	ब्रह्मचारी रवीन्द्रजी	48
21.	देव–शास्त्र–गुरु पूजन–5......	कवि राजमलजी पवैया	51
22.	समुच्चय पूजन..................	ब्रह्मचारी सरदारमलजी	55
23.	नित्यनियम पूजन..............	कवि राजमलजी पवैया	58
24.	पंच परमेष्ठी पूजन.............	कवि राजमलजी पवैया	61
25.	नवदेव पूजन....................	कवि राजमलजी पवैया	65
26.	वीतराग पूजन..................	ब्रह्मचारी रवीन्द्रजी	69
27.	विद्यमान बीस तीर्थंकर –1....	पण्डित द्यानतरायजी	74
28.	विद्यमान बीस तीर्थंकर –2....	कवि राजमलजी पवैया	77
29.	सिद्ध पूजन –1.................	डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल	81
30.	सिद्ध पूजन –2.................	बाबू युगलजी	85

31. सिद्ध पूजन –3................ कवि राजमलजी पवैया 90
32. अकृत्रिम चैत्यालय पूजन 93
33. कृत्रिमाकृत्रिम चैत्यालय पूजन. कवि राजमलजी पवैया 98
34. कृत्रिमाकृत्रिम चैत्यालयों के अर्घ 102

(तीर्थंकर पूजन खण्ड)

35. चौबीस तीर्थंकर पूजन–1...... पण्डित द्यानतरायजी 105
36. चौबीस तीर्थंकर पूजन–2...... कवि राजमलजी पवैया 108
37. चौबीस तीर्थंकर पूजन–3..... श्री कुमरेशजी 111
38. त्रिकाल चौबीस पूजन.......... कवि राजमलजी पवैया 115
39. अनन्त तीर्थंकर पूजन.......... कवि राजमलजी पवैया 119
40. आदिनाथ जिन पूजन–1....... जिनेश्वरदासजी 126
41. आदिनाथ जिन पूजन–2....... ब्रह्मचारी रवीन्द्रजी 130
42. आदिनाथ जिन पूजन–3....... कवि राजमलजी पवैया 136
43. पद्मप्रभ जिन पूजन............. कवि राजमलजी पवैया 141
44. चन्द्रप्रभ जिन पूजन–1.......... पण्डित वृन्दावनदासजी 145
45. चन्द्रप्रभ जिन पूजन–2.......... कवि राजमलजी पवैया 150
46. वासुपूज्य जिन पूजन–1........ पण्डित वृन्दावनदासजी 154
47. वासुपूज्य जिन पूजन–2....... कवि राजमलजी पवैया 158
48. शान्तिनाथ जिन पूजन–1...... पण्डित वृन्दावनदासजी 162
49. शान्तिनाथ जिन पूजन–2...... कवि राजमलजी पवैया 166
50. नेमिनाथ जिन पूजन–1........ 171
51. नेमिनाथ जिन पूजन–2........ कवि राजमलजी पवैया 175
52. पार्श्वनाथ जिन पूजन–1....... बख्तावरजी 180
53. पार्श्वनाथ जिन पूजन–2....... ब्रह्मचारी रवीन्द्रजी 185
54. पार्श्वनाथ जिन पूजन–3....... कवि राजमलजी पवैया 189
55. वर्द्धमान जिन पूजन–1......... पंडित वृन्दावनदासजी 194
56. महावीर जिन पूजन–2......... डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल 199
57. महावीर जिन पूजन–3......... कवि राजमलजी पवैया 203
58. पंच बालयति जिन पूजन–1... पण्डित अभयकुमारजी 210
59. पंच बालयति जिन पूजन–2... ब्रह्मचारी रवीन्द्रजी 214
60. पंच बालयति जिन पूजन–3... कवि राजमलजी पवैया 220
61. शान्ति–कुन्थु–अरनाथ पूजन–1. ब्रह्मचारी रवीन्द्रजी 226
62. शान्ति–कुन्थु–अरनाथ पूजन–2. कवि राजमलजी पवैया 229
63. सीमन्धर पूजन–1.............. डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल 235

64. सीमन्धर पूजन–2............. कवि राजमलजी पवैया 238

(विविध पूजन खण्ड)

65. बाहुबली पूजन–1............... कवि राजमलजी पवैया 243
66. तुंगीगिरी गजपंथ देवलाली.... कवि राजमलजी पवैया 247
67. सप्तऋषि पूजन–1............. पण्डित रंगलालजी 252
68. सप्तऋषि पूजन–2............ कवि राजमलजी पवैया 256
69. णमोकार मन्त्र पूजन............ कवि राजमलजी पवैया 261
70. भक्तामर स्तोत्र पूजन........... कवि राजमलजी पवैया 265
71. कुन्दकुन्दाचार्य पूजन............ कवि राजमलजी पवैया 269
72. सरस्वती (जिनवाणी) पूजन–1. पण्डित द्यानतरायजी 274
73. सरस्वती (जिनवाणी) पूजन–2. कवि राजमलजी पवैया 277
74. समयसार पूजन................ कवि राजमलजी पवैया 281

(तीर्थक्षेत्र पूजन खण्ड)

75. निर्वाण क्षेत्र पूजन–1........... पण्डित द्यानतरायजी 286
76. निर्वाण क्षेत्र पूजन–2........... कवि राजमलजी पवैया 289
77. समस्त सिद्ध क्षेत्र पूजन....... कवि राजमलजी पवैया 293
78. तीर्थराज सम्मेद शिखर पूजन. कवि राजमलजी पवैया 298

(पर्व पूजन खण्ड)

79. दस लक्षण धर्म पूजन–1....... पण्डित द्यानतरायजी 302
80. दस लक्षण धर्म पूजन–2....... कवि राजमलजी पवैया 309
81. रत्नत्रय पूजन–1................ पण्डित द्यानतरायजी 315
82. रत्नत्रय पूजन–2.............. कवि राजमलजी पवैया 323
83. सोलह कारण पूजन–1......... पण्डित द्यानतरायजी 329
84. सोलह कारण पूजन–2........ कवि राजमलजी पवैया 332
85. सोलह कारण के 16 अर्घ..... 336
66. क्षमावाणी पूजन–1............. कवि राजमलजी पवैया 340
87. क्षमावाणी पूजन–2............. 346
88. पंचमेरु पूजन–1................ पण्डित द्यानतरायजी 351
89. पंचमेरु पूजन–2................ कवि राजमलजी पवैया 354
90. नन्दीश्वर द्वीप पूजन–1........ पण्डित द्यानतरायजी 358
91. नन्दीश्वर द्वीप पूजन–2........ कवि राजमलजी पवैया 362
92. रक्षाबन्धन पर्व पूजन............ कवि राजमलजी पवैया 366
93. वीर शासन जयन्ती पूजन..... कवि राजमलजी पवैया 371
94. अक्षय तृतीया पर्व पूजन....... कवि राजमलजी पवैया 376

95.	दीपमालिका पूजन..............	कवि राजमलजी पवैया	379
96.	श्रुतपंचमी पूजन................	कवि राजमलजी पवैया	384
97.	अर्घ्यावली..........................	विविध	388
98.	महाअर्घ–1, 2, 3..............		393
99.	शान्ति पाठ (संस्कृत)..........		398
100.	शान्तिपाठ (हिन्दी) 1 से 5...		400
101.	क्षमापना पाठ 1 व 2.........		405
102.	विसर्जन पाठ....................		406
103.	स्तुति पाठ.......................		407
104.	निर्वाणकाण्ड....................	भैया भगवतीदासजी	409

(आध्यात्मिक व वैराग्य पाठ खण्ड)

105.	नीरव–निर्झर....................	बाबू युगलजी	411
106.	अमूल्य तत्व विचार...........	बाबू युगलजी	414
107.	आलोचना..........................	जोहरीलालजी	415
109.	मेरी भावना.......................	जुगलकिशोरजी 'मुख्तार'	418
110.	वैराग्य भावना..................	पण्डित भूधरदास	420
111.	बारह भावना....................	पण्डित भूधरदास	423
112.	बारह भावना....................	पण्डित जयचन्दजी	424
113.	बारह भावना....................	पण्डित मंगतरायजी	425
114.	अपूर्व अवसर..................	ब्रह्मचारी रवीन्द्रजी	431
115.	पार्श्वनाथ स्तोत्र..............	पण्डित द्यानतरायजी	433
116.	महावीराष्टक स्तोत्र...........	पण्डित भागचन्दजी	434
117.	समयसार स्तुति...............	पण्डित हिम्मतभाई शाह	436
118.	समाधिमरण भाषा............	पण्डित द्यानतरायजी	437
119.	समाधि भावना................	पण्डित शिवरामजी	439
120.	आत्म भावना..................	ब्रह्मचारी रवीन्द्रजी	440
121.	महावीर वन्दना................	डॉ० हुकमचन्दजी भारिल्ल	442
122.	गुरु वन्दना.....................		443
123.	गुरु स्तुति.......................	पण्डित भूधरदास	445
124.	मेरा जीवन.....................	ब्रह्मचारी रवीन्द्रजी	447
125.	ढाला..........................	पण्डित दौलतरामजी	448
126.	क्तामर स्तोत्र..................	आचार्य मानतुंग	461
127.	क्तामर स्तोत्र (भाषा).......	पण्डित हेमराजजी	469
128.	जिनेन्द्र कलशाभिषेक जयमाला		476

प्राक्कथन
जिनेन्द्र पूजन - एक अनुचिंतन

श्रावक का स्वरूप :- श्रमण संस्कृति अर्थात् वीतरागता और उससे सम्बन्धित विचार तथा आचार पर विश्वास रखने वाला प्राणी श्रावक कहलाता है । वह चाहे मनुष्य हो अथवा तिर्यन्च ।

वैसे श्रावक शब्द का प्रयोग प्रायः जैन कुलोत्पन्न व्यक्ति के लिये रूढ़ हो गया है किन्तु वास्तव में जैन कुल में उत्पन्न प्रत्येक व्यक्ति को श्रावक नहीं कहा जा सकता और जैनेत्तर कुलोत्पन्न उस प्राणी को भी श्रावक कह सकते हैं जो जैन विचार और आचार में विश्वास रखता हो । वैसे श्रावक शब्द एक जाति विशेष के लिये भी प्रयुक्त होता है किन्तु यहाँ वह भी इष्ट नहीं है ।

जिन अर्थात् विजेता । अज्ञान आदि आत्म विकारों पर विजय पाने वाला । उनके द्वारा प्रतिपादित तत्वों को जीवन में साकार करने वाला ही जैन श्रावक हो सकता है । श्रावक के लिये यह आवश्यक है कि उसका अंतरंग और बहिरंग जीवन क्षमा, शौच तथा त्याग आदि की पवित्र भावनाओं से अनुरंजित हो । श्रावक नाम का प्राणी मुक्ति का पथिक होता है अतः मुक्ति विरोधी दुर्वासनाऐं अथवा हिंसा असत्य आदि की महापापमय भावनाएँ उसके हृदय को स्पर्श नहीं करती ।

इस युग में हम श्रावक संज्ञक प्राणी को अनेक दुर्वासनाओ से अविष्ट तथा उसके लोक-जीवन को अन्याय, अनैतिकता तथा अनाचार का केन्द्र पाते हैं वह वास्तव में श्रावक शब्द की बड़ी भारी अवज्ञा है । वहाँ तो धर्म के उदय की भी सम्भावना नहीं है । अनेक प्रकार के गर्हित आचार-विचार से मुक्त करके प्राणी की हृदय भूमि को कोमल बनाने के लिये, ऐसी कोमल कि उसमें धर्म का बीज वपन किया जा सके, श्रावक के षट कर्मो की आवश्यकता है।

इनके द्वारा श्रमण चर्या के प्रति आस्था जागृत होती है और उसे जीवन में साकार करने के लिए पवित्र प्रेरणाएँ भी मिलती है । एक बात और भी है कि सांसारिक प्राणी जीवन के अधिक क्षणों में जगत के पापमय वातावरण के सम्पर्क में रहता है, अतः ऐसे प्राणी को कि जिसका हृदय पाप की प्रवृत्तियों से अत्यन्त कलुषित और कठोर बन गया है पवित्र और कोमल बनाने के लिए तथा उसे धर्म के आंगन में लाने के लिये इन षट कर्मो का बड़ा भारी महत्व है । जैसे हमारे स्थूल लौकिक जीवन के लिये हवा-पानी और अन्न आवश्यक होते हैं, उसी प्रकार प्राणी को मानसिक खाद्य देने के लिये षट कर्मों की महती आवश्यकता है ।

भयंकर पापाचारों से जिसका मन नष्ट प्रायः हो चुका हो भले ही ऐसा प्राणी भौतिक उपलब्धियों से समृद्ध हो, ऐसे प्राणी को संजीवन देने के लिए षट कर्म अमृत का कार्य करते हैं । जैसे स्थूल भौतिक जीवन की सफलता के लिए आहार, विहार, आजीविका आदि अपेक्षित होते हैं उसी प्रकार प्राणी के अंतरंग जीवन को सुरक्षित रखने के लिए षट कर्म सर्वोत्कृष्ट उपादान हैं ।

षटकर्मः- देवपूजा, गुरुउपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान । ये षटकर्म श्रावक के जीवन की पवित्रता और उज्ज्वलता के लिये नित्य करणीय है अतएव इन्हें श्रावक के छह आवश्यक भी कहते हैं; इनके बिना प्राणी प्राण विहीन काया के समान होता है ।

देव पूजा :- देव उस पुरुष को कहते हैं जो साधारण लोक मानव के स्तर से ऊँचा उठ गया हो और जिसके जीवन आदर्शों का अनुशीलन करके लोक का सामान्य प्राणी देवत्व को प्राप्त कर सके । अतः देव निर्दोष होना चाहिए । वह कुछ ऐसा भी न हो जो नितान्त अगम और अगोचर हो कि जिसके स्वरूप का पता भी न चल सके; क्योंकि ऐसा देव हमारे लिये किसी प्रयोजन की वस्तु नहीं बन सकता । हाँ, वह केवल हमारे आश्चर्य का विषय ही हो सकता है

देव की एक विशेषता यह भी होनी चाहिए कि वह सम्पूर्ण जगत के रहस्यों को एक ही क्षण में साक्षात् कर लेने वाला हो अर्थात् उसका ज्ञान विकास के चरम बिन्दु को पहुँच चुका हो जिसे दर्शनकार कैवल्य अथवा सर्वज्ञता भी कहते हैं । उसके साथ यह भी अपेक्षित है कि उस देव की वाणी जगत के अंतरंग और बहिरंग रहस्यों का जगत के समक्ष उद्‌घाटन कर सके जिससे भ्रान्त जगत सत्य का अनुसंधान करके अपना जीवन पथ प्राप्त कर सके । उसकी वाणी से आगम अर्थात् सत्साहित्य की एक ऐसी धारा की सृष्टि हो कि अनवधि काल तक मोह तमिता में खोये प्राणी को प्रकाश स्तम्भ के समान आलोक देती रहे । (कारण कि भगवान अरहन्त की तरह जिनवाणी भी समान वन्दनीय एवं पूजनीय है; क्योंकि भगवान जिनेन्द्र के निमित्त से मोक्षमार्ग के जिस प्रयोजन की सिद्धि होती है उसी मोक्षमार्ग की सिद्धि जिनवाणी से भी होती है ।

अरहन्त देव एवं जिनवाणी के सदृश भगवान अरहन्त द्वारा उपदिष्ट अंतर-बाह्य चारित्र का पालन करने वाले नग्न दिगम्बर वीतराग मुनिराज भी समान रूप से वन्दन एवं पूजा करने योग्य है; क्योंकि राग अत्यन्त हीन हो जानें से दिगम्बर मुनिराज रत्नत्रय की प्रचुरता से सुशोभित होते हैं । संयम के लिये पिच्छी एवं शुद्धि के लिये कमण्डल हो इसके अलावा मुनि के पास कोई बाह्य परिग्रह नहीं होता । दिगम्बर साधु सिंह की तरह वनवासी एवं वनविहारी होते हैं घोर उपसर्ग एवं परिषहों में भी अंतर-बाह्य चारित्र से विचलित नहीं होते । तीन कषाय के अभाव में अंतरंग शुद्धिरूप आनन्द दशा तथा बाहर परम-विशुद्ध परिणाम पूर्वक अट्‌ठाईस मूल गुण एवं तेरह प्रकार के चारित्र मुनिराज का लक्षण होता है । मुनिराज का यह स्वरूप त्रैकालिक है; विदेहक्षेत्र अथवा भरतक्षेत्र आदि देश तथा चतुर्थकाल अथवा पंचमकाल आदि के कारण मुनिराज के स्वरूप

में कभी अंतर नहीं आता ।

पूजा के अंग :- पूजा के तीन अंग होते हैं -

पूज्य, पूजक और पूजा ।

पूज्य :- पूज्य वही देव हो सकता है जो निर्दोष हो अर्थात् वीतराग हो तथा सर्वज्ञ और हितोपदेशी हो ।

पूजक :- ऐसे देव का पूजक भी देव जैसा होता है । देव वीतरागी सर्वज्ञ होते हैं तो इसे वीतरागता और सर्वज्ञता प्रिय होती है । मुक्ति के बाधक तत्व मोह और राग इसको आदरणीय नहीं होते और इसकी पूजा का प्रयोजन भी मोह और राग का क्षय करके वीतरागता की उपलब्धि कर लेना ही होता है । सम्पूर्ण जगत के निकट जा-जाकर थका हुआ यह पूजक परम वीतराग पुरुष के निकट आकर अनायास ही रुक जाता है; मानों सदा से जिसकी उसे चाह थी वह उसे वीतराग के चरणों में ही मिल गई हो ।

देव दर्पण होता है और यह पुजारी अनादि अज्ञान से आवृत अपना कलुषित प्रतिबिम्ब उसमें देख-देखकर उसे साफ करता है । पूजक बड़ा विवेकी और पुरुषार्थी भी होता है; भगवान पर ही अपना सम्पूर्ण समर्पण करके पुरुषार्थ से विमुख नहीं होना चाहता किन्तु देव के स्वरूप में अपना अनुसंधान करता हुआ धैर्य पूर्वक स्वयं देवत्व की ओर बढ़ता जाता है । अतः वीतरागता की उपलब्धि के लिए अपनी निर्बल दशा में देव को साधन भी बनाता है और देव के आदर्शों का प्रतिपल अनुशीलन करता हुआ अंत में साध्य की उपलब्धि कर लेता है । सही अर्थ में इस प्रकार का पूजक बनने की पात्रता श्रावक में ही होती है । जगत की वे मान्यताएँ जो पूज्य से कुछ आशा लेकर चलती है अंत में साध्य से परिच्युत होकर निराशा के गर्त में ही गिरती है, क्योंकि कुछ लेने-देने वाला और जिसकी चेष्टाएँ साधारण मानवों जैसी हो उसे पूजा कैसे समर्पित की जाए और उसके प्रति पूजक की श्रद्धा जागे भी तो कैसे ?

पूजा :- पूजा में इस अनुष्ठान से पूर्व होने वाले देव-दर्शन

के विधि-विधान भी गर्भित है ।पूजा पूज्य के सम्मान अथवा उसके गुणानुवाद को कहते हैं। पूज्य में साधारण प्राणी के स्तर से जो असाधारणता होती है पूजक पूजा में उसी का सम्मान करता है । पूजा का पूजापा केवल बाह्य सामग्री नहीं किन्तु वह पूजापा देवोचित होता है जैसा देव वैसी पूजा । देव वीतरागी है तो उसका पूजापा भी वीतराग होगा; उसके बिना उस देव की पूजा नहीं बन सकेगी । जिसे राग अर्थात् संसार से स्नेह है और जिसकी पूजा में स्वर्गों के ऐश्वर्य नृत्य करते हों वह पूजा इन वीतरागी देवता को नहीं मिलेगी।

पूजा स्वयं पुण्य परिणाम है; किन्तु उसका प्रयोजन राग के क्षय पूर्वक अपने (पूजक के) भीतर वीतरागता को जन्म देना है । पूजक को न पूजा का परिणाम अभिष्ट है और न उसका फल । वह दोनों में निरीह भाव से वर्तता है । उसका आश्रय उदात्त है अतः मात्र पूजा के पुण्य भाव से वह संतुष्ट नहीं हो जाता किन्तु सम्पूर्ण वीतरागता को लेकर ही विराम लेता है । भूमिका कमजोर है, अवस्था दुर्बल है अतएव पूजादिक का भाव तो आता ही है; किन्तु उस भाव में तन्मयता न होकर उसे उस भाव के विषय के साथ एकत्व है ।

पूजा के भेद :- **भाव पूजा और द्रव्य पूजा ।**

भाव पूजा :- निश्चय भाव पूजा और व्यवहार भाव पूजा ।

निश्चय भाव पूजा :- जो पूजक अपने ज्ञानानन्द स्वरूप नित्य शुद्ध ध्रुव आत्म स्वभाव को ही उपादेय-आश्रय करने योग्य मानता है और उसके अतिरिक्त जगत के सम्पूर्ण जड़-चेतन पदार्थों को अपने लिए अकिंचित्कर मानता है और इस प्रकार जिसे निरन्तर अपने शुद्ध स्वभाव की उपासना ही प्रवर्तमान होती है वह निश्चय भाव पूजा है ।

व्यवहार भावपूजा :- अपने शुद्ध स्वभाव के उग्रता करके उत्तरोत्तर स्थिरता बढ़ाने के लिए जो देव का सानिध्य करता है और उसमें स्थिर होने के लिए देव के गुणानुवाद पूर्वक जो पुनः - पुनः प्रेरणाएँ प्राप्त करता है,

पूजक का यह विधान व्यवहार भाव पूजा कहलाता है । क्योंकि यह भाव पुण्य है और देवाश्रित होने से पराश्रित ही है ।

द्रव्य पूजा :- तीन लोक में एक मात्र अपने भीतर विद्यमान शुद्ध ज्ञायक स्वभाव को ही जिसने श्रेयस्कर माना है और अज्ञान दशा में प्रवर्तित जगत की सम्पूर्ण दासता से जिसने इनकार कर दिया है ऐसा पूजक मुक्ति की प्रेरणाएँ लेने के लिये जब देव का सानिध्य और गुणानुवाद करता है तब इस पुनीत कार्य में चित्त को अधिकाधिक स्थिर करने के लिये वह अन्य और भी बाह्य पदार्थों का अवलम्बन लेकर उनके माध्यम से अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है उसे द्रव्य पूजा कहते हैं ।

द्रव्य पूजा में आठ वस्तुओं का विधान होता है और वे सब के सब पूजक के मात्र बाह्य अवलम्बन होते हैं; किन्तु पूजा में जैसे भावों का महत्व है, द्रव्य का महत्व भी कुछ कम नहीं है ।

आज के बौद्धिक मानव का यह एक प्रश्न है कि जब देव द्रव्य पूजा को स्वीकार नहीं करते तो वह आवश्यक भी नहीं है ? किन्तु यह बात बौद्धिक तो हो सकती है पर तात्विक नहीं । पूजा में प्रयुक्त जिन द्रव्यों के अवलम्बन से हमारे मुक्ति जैसे महान कार्य की यदि साधना होती है तो पूजा के द्रव्य का यह कुछ कम महत्व नहीं है; भले ही देव उस पूजा को स्वीकार न करें । और हम पूजा देव को देते भी कब हैं उसमें तो जितना कुछ होता है वह सब हमारे द्वारा हमारे भीतर हमारा ही होता है ।

लौकिक अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए हम क्या-क्या नहीं करते हैं ? बड़े से बड़ा आर्थिक भार भी वहन करते हैं; फिर पूजा के द्रव्यों से सम्पन्न होने वाले मुक्ति जैसे महान कार्य में उसकी पुरुषार्थ की उपयोगिता और महत्व का अंकन नहीं कर सकें और इसे अपव्यय कहें तो यह बौद्धिक विकार ही होगा ।

द्रव्य पूजा में आठ द्रव्यों का विधान होता है और वे सब के

सब पूजक के भावों के प्रतीक होते हैं । प्रत्येक ही द्रव्य के समर्पण के द्वारा पूजक अपने भावों की ही अभिव्यक्ति करता है उनसे पूजक की भीतरी चाह का भी पता चलता है । यद्यपि सभी द्रव्य लगभग एक ही प्रयोजन के प्रतीक हैं किन्तु पूजक की अभिव्यक्तियाँ उनके सहारे भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है -जैसे जल के समर्पण में वह जन्म-जरा-मरण के विनाश की बात करता है, तो चन्दन में भवाताप के विनाश की और अक्षत में अक्षय पद की प्राप्ति की और इसी प्रकार शेष द्रव्यों में भी; किन्तु सबके पीछे भावना तो केवल एक ही है, क्योंकि जन्म-जरा-मृत्यु का विनाश, भव आताप का विनाश अथवा अक्षय पद की प्राप्ति तीनों निर्वाण स्वरूप ही है । किन्तु विकारो के प्रकार अनेक होते हैं और विकारों के अभाव में उत्पन्न होने वाली अवस्था एक ही प्रकार की होती है अतएव विकारों के माध्यम से भावों की अभिव्यक्ति अनेक प्रकार की हो जाती है । इस प्रकार द्रव्य पूजा हमारे लिये निम्न प्रकार उपयोगी बनती है -

१. द्रव्यों के माध्यम से पूज्य का जो भी गुणानुवाद किया जाता है उससें पूजक के भावों का परिचय मिलता है ।

२. द्रव्य चित्त की एकाग्रता के लिये बड़े सुन्दर अवलम्बन का कार्य करते हैं ।

३. द्रव्यों को हम विविध प्रकार से प्रतीक बनाकर भावविशुद्धि की प्रेरणाएँ लेते हैं । जैसे जल उज्ज्वलता, स्वच्छता, शीतलता का प्रतीक होता है अतएव जल के इन गुणों को जल चढ़ाते समय ध्यान में रखने से भावनाओं को विशेष प्रकार का उत्साह और विशुद्धि मिलती है । जल चढ़ाता हुआ पूजक मन ही मन परम प्रसन्न और उत्साहित होकर इस विश्वास के साथ उसका समर्पण करता है कि मानों मल का विनाश करने वाले जल का समर्पण करते हुए मेरे जन्म-जरा-मृत्यु का विनाश भी हो रहा है ।

४. पूजा के आठों ही द्रव्य एक निर्वाण के ही प्रतीक होते हुए भी उनके माध्यम से होने वाली भावाभिव्यक्तियाँ अनेक प्रकार की होने के कारण और उनके द्वारा पूजा की पद्धति में उत्तरोत्तर परिवर्तन होने के कारण पूजक पूजा के प्रति उपेक्षा भाव को प्राप्त नहीं होता, वरन् उत्साहित होता जाता है । यदि केवल एक ही द्रव्य हो और पुनः पुनः हम उसी का उच्चारण करें और बार-बार वही हमारे सामने रहे तो हमारी चित्त-वृत्ति पूजा में अधिक समय तक स्थिर नहीं रह सकेगी, क्योंकि रागी मन एक ही जगह बड़ी कठिनाई से स्थिर रहता है । अतः अष्ट द्रव्य का विधान इतना महत्वपूर्ण और मनोवैज्ञानिक है कि उसमें परिवर्तन की कल्पना एकदम निरतिशय सी लगती है ।

यह भी प्रश्न किया जाता है कि पूजा के द्रव्य आठ ही क्यों होते हैं ? किन्तु यदि पूजा के द्रव्यों की संख्या घटा दी जाए या बढ़ा दी जाए तो भी इस प्रश्न का कभी समाधान होने वाला नहीं है। यदि उनको घटाया जाए तो भी प्रश्न वही होगा कि उनकी संख्या इतनी ही क्यों ? और यदि बढ़ा दी जाए तो भी इसी प्रश्न की पुनरावृत्ति होगी । अतः महापुरुषों के द्वारा स्वीकृत यह परम्परा ज्यों की त्यों स्वीकार करने योग्य है ।

पूजा के द्रव्यों को घटाने में वही बाधा आती है कि उससे चित्तवृत्ति परिवर्तन न पाने के कारण अस्थिर हो जायेगी । यदि उन्हें बढ़ा दिया जाए तो भी वर्णन की एक लम्बी तालिका सी हो जाने के कारण पूजा की भावात्मकता कम हो जायेगी ।

आठ द्रव्यों की संख्या सुगमता पूर्वक याद रक्खी जा सकती है और उन्हे हम जिस - जिस प्रकार से प्रतीक बनाते हैंतथा उनके माध्यम से द्रव्य समर्पण सम्बन्धी मन्त्रों की रचना होती है वह अनपढ़ लोगों की स्मृति में भी सुगमता से अवधारण हो सकते हैं । द्रव्यों की एक लम्बी तालिका होने पर उनके मन्त्रों को तथा उनके क्रम को याद

रखना बड़ा कठिन होगा । साथ ही उनको सम्पादन तथा उनको तैयार करना भी अधिक श्रम साध्य हो जायेगा। और पूजा का यह विधान यदि अधिक कठिन हुआ तो इसके प्रति उतनी श्रद्धा और आकर्षण नहीं रह सकेगा जितना वह अष्ट द्रव्यों की एक सरल और सीमित विधान में देखने को मिलता है।

पूजा के अंग :- पूजा के पाँच अंग होते हैं ।

१. आह्वानन २. स्थापन ३. सन्निधिकरण
४. पूजन ५. विसर्जन ।

१. आह्वानन :- पूजक जिन पूज्य की पूजा करता है उनके प्रति उसे भक्ति का इतना अतिरेक होता है कि वह यह चाहता है कि पूज्य उसके सामने ही रहें । अतएव उन्हें बुलाने का वह एक भावात्मक विधान करता है और कहता है कि "आप आइये - आइये" इसे आह्वानन कहते हैं ।

२. स्थापन :- आह्वानन के उपरान्त भी पूजक को संतोष नहीं होता अतः वह चाहता है कि जब तक मैं पूजा करूँ पूज्य मेरे सामने ही बैठे रहें अतः वह कहता है "आप बैठिये - बैठिये ।"

३. सन्निधिकरण :- स्थापना के उपरान्त भी पूजक का मन नहीं भरता और उसकी भक्ति का प्रवाह अधिकाधिक उमड़ता ही चलता है अतः पूज्य का दूर बैठना भी उसे प्रिय नहीं लगता; वह तो मानो पूज्य को आत्मसात् कर लेना चाहता है; अतः पुनः कहता है "आप मेरे निकट बैठिये, निकट बैठिये ।"

४. पूजन :- इसके उपरान्त आठ द्रव्य और जयमाल के द्वारा होने वाला पूज्य का विविध प्रकार का गुणानुवाद अथवा गुणगान पूजन कहलाता है ।

५. विसर्जन :- पूजक इस अंग में पूजा के विस्तृत विधान का संकोच करके उसकी मंगलमय समाप्ति करता है और अपनी जानी अन्जानी सभी भूलों के लिये, अपनी सभी प्रकार की कमजोरियों को

स्वीकार करता हुआ पूज्य से क्षमायाचना करता है । पूजा का यह विधान समाप्ति को प्राप्त हो जाने पर भी पूजक के हृदय में पूज्य के प्रति भक्ति का वेग समाप्त नहीं होता । विसर्जन से पूर्व पूजक लोक के सभी प्राणियों के प्रति निर्वाण प्राप्ति की शुभकामना करता है । जिसे शान्ति विधान कहते हैं ।

श्रावक का उपास्य देव सर्वज्ञ वीतराग और हितोपदेशी ही होता है, अन्य चार जाति के देवों में कोई उसका पूजा पात्र नहीं होता । भले ही उनमें सम्यग्दृष्टि देव भी होते हैं किन्तु वे यथा योग्य आदर के ही पात्र होते हैं; तथा वे सभी देव अव्रती होते हैं और अव्रती की पूजा का जैन धर्म में विधान नहीं है । इन देवों की पूजा के प्रचलन द्वारा पाखण्ड को प्रोत्साहन देने के लिये लोग उनकी पूजा का समर्थन करते हैं । वे कहते हैं कि 'सम्यग्दृष्टि देव जैन शासन के रक्षक होते हैं अतः उनकी पूजा करना चाहिये' - किन्तु यह तर्क उचित नहीं है । जो देव सम्यग्दृष्टि होते हैं वे तो पूजा की अपेक्षा के बिना ही अपना कर्तव्य समझकर ही जैन शासन की प्रभावना करते हैं और जो देव मिथ्यादृष्टि अथवा धर्म विमुख होते हैं उनसे तो धर्म की प्रभावना का भी कोई अवकाश नहीं है क्योंकि उनमें राग-द्वेष और विषय-कषाय की ही बहुलता होती है ।

सम्यग्दृष्टि देवों के बहाने देव पूजा के समर्थक लोग वास्तव में बड़ा भारी अनर्थ करते हैं । प्रथम तो देवों के सम्यक्त्व और मिथ्यात्व का भी हमको ज्ञान नहीं होता और जो सम्यग्दृष्टि ही हैं वे स्वयं पूजा नहीं चाहते और उनके प्रति पूजा का विधान भी नहीं है अतः अन्य देवों के पूजा की बात जगत में पाखण्ड को प्रोत्साहन देने की ही है । देव पूजा के बहाने व्यक्ति अपनी विषय-वासनाओं और अभिलाषाओं को ही पूरा करना चाहता है और इस प्रकार देव पूजा के जो विधान हम जैनेत्तर मान्यताओं में देखते हैं

इस देव पूजा के प्रचार से हमारे यहाँ भी उसी प्रकार की विडम्बनाओं की पुनरावृत्ति होगी; यहाँ तक कि जिन देवों की विद्यमानता भी नहीं है उनकी भी नई-नई कल्पनाएँ होगी और इस प्रकार धर्म का विशुद्ध वीतराग स्वरूप राग के घटाटोप में लुप्त हो जायेगा ।

यह भी तर्क किया जाता है कि मिथ्यादृष्टि देव - गुरु आदि का शिष्टाचार के नाते व्यवहार में यदि आदर सत्कार या उनको प्रणाम आदि कर लिये जाएँ तो कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये । किन्तु यह बात सर्वथा असत्य है । आचार्य श्री समन्त भद्र का भी रत्नकरण्ड श्रावकाचार में ऐसा आदेश है कि सम्यग्दृष्टि जीवों को भयादि के वश से कुदेवादि को प्रणाम और विनय भी नहीं करना चाहिये ।

वास्तव में जो देव धर्मात्मा होते है उनके साथ तो सम्यग्दृष्टि साधर्मी जैसा व्यवहार रखता है किन्तु धर्म द्वेषी कुदेवों के साथ तो किसी भी प्रकार के सम्बन्ध का वहाँ प्रश्न ही नहीं है; भले ही इस प्रकार के देवों में बड़े-बड़े आश्चर्यकारी चमत्कार भी देखे जाएं किन्तु सम्यग्दृष्टि कभी उन आकर्षणों में नहीं पड़ता । लोग ऐसा समाधान निकालते हैं कि हमारे ऊपर अथवा सन्तानादि पर किसी प्रकार की आपत्ति, रोग अथवा पीड़ा आई हो तो उनको थोड़ा सा प्रणाम विनय आदि करने में हमारा और धर्म का क्या बिगाड़ होगा ? किन्तु गहराई से विचार किया जाये तो सम्यग्दृष्टि अपने लौकिक प्रयोजन के लिये लोक के मिथ्यादृष्टि लोगों के पास तो जा सकता है किन्तु जिनकी पूजा से मिथ्यात्व के भयंकर पाखण्डों की परम्परा को प्रोत्साहन मिलता हो ऐसे कुदेवों के निकट जाना अपने स्वाभिमान की हानि समझता है और लोक तो अनुकरण प्रिय होता है अतः इसकी परम्परा में भी भारी अनर्थों की सम्भावनाएं हैं ।

लोक में भी हम इस प्रकार के स्वाभिमानी लोग देखते हैं जो

चाहे किसी परिस्थिति में उनकी कितनी ही हानि हो जाये लेकिन अपने सिद्धान्त के विरोधी लोगों के पास जाने की कल्पना भी नहीं करते हैं ।

सम्यग्दृष्टि भी धर्म को जीवन की सर्वोत्कृष्ट वस्तु मानता है अतः जहाँ सत्य धर्म का साक्षात् विरोध देखता है उन देवों से अपना कोई सम्बन्ध नहीं रखता । यह भी कहा जाता है कि इन देवों को प्रणाम और विनय नहीं करना इनके प्रति द्वेष का सूचन करता है -किन्तु यह तर्क तो नितान्त निर्मूल है, क्योकि वास्तविक वस्तु का परिज्ञान हो जाने पर कृत्रिम वस्तु से सम्बन्ध विच्छेद कर लेना और उसके प्रति मध्यस्थ हो जाना द्वेष नहीं कहलाता है । जैसे मार्ग में पड़ी हुई धूल का सेवन हमारे उदर को हानि करता है अतः यदि हम उसका सेवन नहीं करते तो क्या उस धूल के प्रति हमको द्वेष पड़ा है ? द्वेष नहीं है, किन्तु हमारे प्रयोजन की वस्तु नही होने से हमें उसके प्रति मध्यस्थ भाव है । सम्पूर्ण लोक इस बात को इसी प्रकार स्वीकार करता है ।

अतः जैन श्रावक एक मात्र अरहन्त पुरुष में ही (अथवा उनकी वाणी व निर्ग्रन्थ गुरुओं में ही) अपनी वीतरागता का प्रयोजन हल होता जानकर उन्हीं का दर्शन - पूजन - भक्ति और उपासना करता है । अन्य देव अथवा गुरु लौकिक दृष्टि से भले ही बड़ी सुन्दर-सुन्दर वार्ता करते हों, उनके कथानक तथा उनकी प्रवचन शैलियाँ भी बड़ी आकर्षक हों किन्तु सम्यग्दृष्टि अन्तरदृष्टा होने के कारण इस छल में कभी भी फँसता नहीं है । जैसे खोटे रुपये को चलाने के लिये उस पर कृत्रिम मुलम्मा (आवरण) चढ़ाया जाता है; उसी प्रकार वीतरागता के विरोध की जगत की समग्र मान्यताएँ और उनके अनुयायी भी मिथ्याधर्म के प्रचार के लिये अनेक छद्म करते हैं । यदि हमें कुछ इस प्रकार की उलझन प्रतीत हो कि हम सच्चे-झूठे की परीक्षा कैसे करें तो उसकी परीक्षा के लिये हमें

स्वयं भी अनेकान्त के द्वारा वस्तु स्वभाव को समझना होगा और यदि वीतरागता हमारी कसौटी होगी तो फिर सत्य - असत्य का निर्णय हमारे लिये कोई समस्या ही नहीं रह जायेगा ।

पूजा एवं तत्व ज्ञान :- यद्यपि पूजा तत्वज्ञान के बिना नहीं होती किन्तु उसमें आदि से अन्त तक भक्ति की ही मुख्यता रहती है । प्रकरण के अनुसार उसमें तत्वज्ञान आता तो है किन्तु वह भक्ति का ही रूप धारण करके आता है । यद्यपि दोनों ही मोक्ष मार्ग के हेतु हैं किन्तु एक ही परिणति के समय दूसरा गौण रहता है । तत्वज्ञान एकान्त चिंतन की वस्तु है और भक्ति में भगवान का सानिध्य होता है अतएव तत्व की चिन्तनधारा भक्ति के अवसर पर लम्बी नहीं होती ।

पूजा के इस महा मंगलमय नित्य विधान में यह बात विशेष स्मरण रखने लायक है कि पूजा ऐसे शान्त स्वर में की जाये जिससे दर्शन एवं पूजन करने वाले अन्य लोगों के भावों में व्यवधान न हो ।

पूजा की संगीतमयता के कारण उसके साथ वाद्यों का उपयोग भावों में स्फुरणा तो लाता है, किन्तु वाद्यों का उपयोग उस मर्यादा तक ही होना चाहिये जहाँ तक वे हमारी भावों की रचना में निमित्त बनते हों, वाद्यों की धमाल एवं शोर में पूजा के शब्द एवं भाव भी गायब हो जाएँ तो वह वाद्यों का सही उपयोग नहीं है । प्रायः वाद्यों के निर्माण में चर्म आदि का उपयोग होता है अतएव ऐसे वाद्य तो जिनालय में भी नहीं आने चाहिये फिर पूजा में तो उनके उपयोग का प्रश्न ही नहीं उठता ।

पूजन एक ऐसा मधुर एवं सहज धार्मिक कर्म है जिसमें सम्पूर्ण तत्वज्ञान भक्ति के संगीत में घुलकर मधुर आस्वाद देता है । जहाँ तत्वज्ञान में मस्तिष्क की प्रधानता होती है वहीं पूजा में हृदय मुख्य होता है, इसीलिए भक्ति का यह अंग यद्यपि तत्वज्ञान के बिना कार्यकारी नहीं होता फिर भी तत्वज्ञान का चिंतन भक्ति की कोमल भावधारा का उल्लंघन करके उदित नहीं होता ।

पूजा किसी भी लौकिक अथवा पारलौकिक अभिलाषाओं को लेकर नहीं की जाती; क्योंकि मोक्ष मार्ग एवं मुक्ति ही उसका एक मात्र प्रयोजन होता है किसी भी लौकिक प्रयोजन को लेकर की जाने वाली पूजा में पूजा के बाह्य विधि-विधानों की काया तो साथ रहती है पर (प्राण) भाव गायब हो जाते हैं । सच्चाई तो यह है कि किसी भी अभिलाषा को लेकर की जाने वाली पूजा में भक्त और भगवान के बीच में एक अभिलाषा खड़ी हो जाती है । अतएव वह पूजा भगवान तक पहुँचती नहीं है और पुण्य की भाव-भूमि समाप्त हो जाने से पाप की ही सम्भावना होती है ।

बाबू जुगलकिशोर जैन "युगल"
कोटा (राजस्थान)

यह लेख बाबूजी द्वारा कक्षाओं में लिखाया गया है तथा इसमें कुछ अंश चैतन्य विहार में प्रकाशित 'जिनेन्द्र पूजन स्वरूप एवं समीक्षा' लेख में से जोड़े गये हैं ।

– सम्पादक

ॐ

परमात्मने नमः

करलो जिनवर की पूजन

मंगलाष्टक (संस्कृत)

(शार्दूलविक्रीड़ित)

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धीश्वराः
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः।
श्रीसिद्धान्तसुपाठकाः मुनिवराः रत्नत्रयाराधकाः,
पंचैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु ते मंगलम्।१।
श्रीमन्नम्र-सुरासुरेन्द्र-मुकुट- प्रद्योत रत्नप्रभा
भास्वत्पाद-नखेन्दवः प्रवचनाम्भोधीन्दवःस्थायिनः।
ये सर्वे जिनसिद्ध - सूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः,
स्तुत्या योगिजनैश्च पंचगुरवः कुर्वन्तु ते मंगलम्।२।
सम्यग्दर्शन-बोध-वृत्तममलं रत्नत्रयं पावनं,
मुक्तिश्री नगराधिनाथ-जिनपत्युक्तोऽपवर्गप्रदः।
धर्मःसुक्तिसुधा च चैत्यमखिलं चैत्यालयं श्रयालयं,
प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी कुर्वन्तु ते मंगलम्।३।
नाभेयादि-जिनाधिपास्त्रिभुवनख्याताः चतुर्विंशतिः,
श्रीमन्तो भरतेश्वरप्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादशः।
ये विष्णुप्रतिविष्णु-लांड्गलधराःसप्तोतरा विंशतिः,
त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रिषष्ठिपुरुषाः कुर्वन्तु ते मंगलम्।४।

ये सर्वोषधऋद्धयः सुतपसो वृद्धिंगता पंच ये,
ये चाष्टाँग महानिमित्तकुशला येष्टाविधाश्चारणाः।
पंचज्ञानधरास्त्रयोऽपिबलिनो ये बुद्धि-ऋद्धीश्वराः,
सप्तैते सकलार्चिता गणभृतः कुर्वन्तु ते मंगलम्।५।
कैलाशे वृषभस्य निर्वृतिमही वीरस्य पावापुरे,
चम्पायां वसुपूज्य सज्जिनपतेः सम्मेदशैलेऽर्हताम्।
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरे नेमीश्वरस्यार्हतो,
निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवाः कुर्वन्तु ते मंगलम्।६।
ज्योतिर्व्यन्तर-भावनामरगृहे मेरौ कुलाद्रौ तथा,
जम्बू-शाल्मलि-चैत्यशाखिषु तथा वक्षार-रौप्याद्रिषु।
इष्वाकारगिरौ च कुण्डलनगे द्वीपे च नन्दीश्वरे,
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहाः कुर्वन्तु ते मंगलम्।७।
यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां जन्माभिषेकोत्सवो,
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो यः केवलज्ञानभाक्।
यः कैवल्यपुरप्रवेशमहिमा संभावितः स्वर्गिभिः,
कल्याणानि च तानि पंच सततं कुर्वन्तु ते मंगलम्।८।
इत्थं श्री जिनमंगलाष्टकमिदं सौभाग्यसंपत्पदं,
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थङ्कराणांमुखात्।
ये श्रृण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनैर्धर्मार्थकामान्विता,
लक्ष्मीराश्रियते व्यपायरहिता निर्वाणलक्ष्मीरपि।९।

2 2 2

देव-स्तुति

प्रभु पतित पावन, मैं अपावन, चरण आयो सरण जी।
यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मरण जी।।
तुम ना पिछान्यो आन मान्यो, देव विविध प्रकार जी।
या बुद्धिसेती निज न जान्यो, भ्रम गिन्यो हितकार जी।।
भव विकट वन में करम वैरी, ज्ञान धन मेरो हर्‌यो।
तब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिर्‌यो।।
धन घड़ी यो धन दिवस यो ही, धन जनम मेरो भयो।
अब भाग मेरो उदय आयो, दरश प्रभु को लख लयो।।
छवि वीतरागी नगन मुद्रा, दृष्टि नासापै धरैं।
वसु प्रातिहार्य अनन्त गुण जुत, कोटि रवि छवि को हरैं।।
मिट गयो तिमिर मिथ्यात मेरो, उदय रवि आतमभयो।
मो उर हरष ऐसो भयो, मनु रंक चिंतामणि लयो।।
मैं हाथ जोड़ नवाय मस्तक, वीनऊँ तुव चरन जी।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनहु तारन-तरन जी।।
जाचूँ नहीं सुरवास पुनि, नरराज परिजन साथ जी।
'बुध' जाचहुँ तुव भक्ति भव-भव, दीजिये शिवनाथजी।।

दर्शन-स्तुति

अति पुण्य उदय मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया।
अब तक तुमको बिन जाने, दुख पाये निज गुण हाने।।
पाये अनंते दुःख अब तक, जगत को निज जानकर।
सर्वज्ञ भाषित जगत हितकर, धर्म नहिं पहिचान कर।।

भव बंध कारक सुख प्रहारक, विषय में सुख मानकर।
निज पर विवेचक ज्ञानमय, सुखनिधि-सुधा नहिं पानकर।।
तव पद मम उर में आये, लखि कुमति विमोह पलाये।
निज ज्ञान कला उर जागी, रुचि पूर्ण स्वहित में लागी।।
रुचि लगी हित में आत्म के, सतसंग में अब मन लगा।
मन में हुई अब भावना, तव भक्ति में जाऊँ रँगा।।
प्रिय वचन की हो टेव, गुणिगण गान में ही चित्त पगै।
शुभ शास्त्र का नित हो मनन, मन दोष वादनतैं भगै।।
कब समता उर में लाकर, द्वादश अनुप्रेक्षा भाकर।
ममतामय भूत भगाकर, मुनिव्रत धारूँ वन जाकर।।
धरकर दिगम्बर रूप कब, अठ-बीस गुण पालन करूँ।
दो-बीस परिषह सह सदा, शुभ धर्म दस धारन करूँ।।
तप तपूँ द्वादश विधि सुखद नित, बंध आस्रव परिहरूँ।
अरु रोकि नूतन कर्म संचित, कर्म रिपुकों निर्जरूँ।।
कब धन्य सुअवसर पाऊँ, जब निज में ही रम जाऊँ।
कर्तादिक भेद मिटाऊँ, रागादिक दूर भगाऊँ।।
कर दूर रागादिक निरन्तर, आत्म को निर्मल करूँ।
बल ज्ञान दर्शन सुख अतुल, लहि चरित क्षायिक आचरूँ।।
आनन्दकन्द जिनेन्द्र बन, उपदेश को नित उच्चरूँ।
आवै 'अमर' कब सुखद दिन, जब दुखद भवसागर तरूँ।।

दर्शन-स्तुति

(दोहा)

सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानंद रसलीन।
सो जिनेन्द्र जयवंत नित, अरि-रज-रहस विहीन।।

(पद्धरिछन्द)

जय वीतराग-विज्ञानपूर, जय मोहतिमिर को हरन सूर।
जय ज्ञान अनंतानंत धार, दृगसुखवीरजमण्डित अपार।।
जय परमशांत मुद्रा समेत, भविजन को निज अनुभूति हेत।
भवि भागनवच जोगेवशाय, तुम धुनि है सुनि विभ्रम नशाय।।
तुम गुण चिंतत निजपर विवेक, प्रगटै विघटैं आपद अनेक।
तुम जगभूषण दूषणवियुक्त, सब महिमायुक्त विकल्प मुक्त।।
अविरुद्ध शुद्ध चेतन स्वरूप, परमात्म परम पावन अनूप।
शुभ अशुभ विभाव अभाव कीन, स्वाभाविकपरिणतिमयअछीन।।
अष्टादश दोष विमुक्त धीर, स्वचतुष्टयमय राजत गंभीर।
मुनिगणधरादि सेवत महंत, नव केवललब्धिरमा धरंत।।
तुम शासन सेय अमेय जीव, शिव गये जाहिं जैहैं सदीव।
भवसागर में दुख छार वारि, तारन को अवर न आप टारि।।
यह लखि निजदुखगद हरणकाज, तुमही निमित्तकारण इलाज।
जाने तातैं मैं शरण आय, उचरों निज दुःख जो चिर लहाय।।
मैं भ्रम्यो अपनपो विसरीआप, अपनाये विधि-फल-पुण्य-पाप।
निजको परकौ करता पिछान, पर में अनिष्टता इष्ट ठान।।

आकुलित भयो अज्ञान धारि, ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि।
तन परिणति में आपो चितार, कबहूँ न अनुभव्यो स्वपदसार।।
तुमको बिन जाने जो कलेश, पाये सो तुम जानत जिनेश।
पशु नारक नर सुरगति मँझार, भव धर-धर मर्यो अनंत बार।।
अब काललब्धि बलतैं दयाल, तुम दर्शन पाय भयो खुशाल।
मन शांत भयो मिटि सकल द्वन्द, चाख्योस्वातमरस दुख निकंद।।
तातैं अब ऐसी करहु नाथ, बिछुरै न कभी तुव चरण साथ।
तुम गुणगण को नहिं छेव देव, जग तारन को तुम विरद एव।।
आतम के अहित विषय कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय।
मैं रहूँ आपमें आप लीन, सो करो होउँ ज्यों निजाधीन।।
मेरे न चाह कछु और ईश, रत्नत्रयनिधि दीजे मुनीश।
मुझ कारज के कारन सु आप, शिव करहु हरहु मम मोहताप।।
शशि शांतिकरन तपहरन हेत, स्वयमेव तथा तुम कुशल देत।
पीवत पीयूष ज्यों रोग जाय, त्यों तुम अनुभवतैं भव नशाय।।
त्रिभुवन तिहूंकाल मँझार कोय, नहिं तुम बिन निज सुखदाय होय।
मो उर यह निश्चय भयो आज, दुख जलधि उतारन तुम जहाज।।

(दोहा)

तुम गुणगणमणि गणपति, गणत न पावहिं पार।
'दौल' स्वल्पमति किम कहै, नमूँ त्रियोग संभार।।

✦ ✦ ✦

देव-स्तुति

अहो जगतगुरु देव सुनिये अरज हमारी।
तुम प्रभु दीन दयाल मैं दुखिया संसारी।।
इस भव-वन के माँहि, काल अनादि गमायो।
भ्रम्यो चहुँ गति माँहि, सुख नहिं दुख बहु पायो।।
कर्म महारिपु जोर, एक न कान करै जी।
मनमाने दुख देहिं, काहूसों नाहिं डरै जी।।
कबहूँ इतर निगोद, कबहूँ नरक दिखावै।
सुर-नर-पशु-गति मांहि, बहुविध नाच नचावैं।।
प्रभु! इनको परसंग, भव-भव माहिं बुरोजी।
जो दुख देखे देव, तुम सों नाहिं दुरोजी।।
एक जनम की बात, कहि न सकौं सुनि स्वामी।
तुम अनंत परजाय, जानतु अंतरजामी।।
मैं तो एक अनाथ, ये मिल दुष्ट घनेरे।
कियो बहुत बेहाल, सुनिये साहिब मेरे।।
ज्ञान महानिधि लूट, रंक निबल करि डार्यो।
इनही तुम मुझ माहिं, हे जिन! अंतर पार्यो।।
पाप पुन्य मिल दोय, पायनि बेड़ी डारी।
तन कारागृह माहिं, मोहि दियो दुख भारी।।
इनको नेक बिगार, मैं कछु नाहिं कियो जी।
बिन कारन जगबन्धु! बहुविध बैर लियो जी।।
अब आयो तुम पास, सुनि जिन! सुजस तिहारौ।
नीति निपुन जगराय, कीजै न्याय हमारौ।।
दुष्टन देहु निकार, साधुनकौं रखि लीजै।
विनवै, 'भूधरदास' हे प्रभु ढील न कीजै।।

दर्शन पाठ

दर्शन श्री देवाधिदेव का, दर्शन पाप विनाशन है।
दर्शन है सोपान स्वर्ग का, और मोक्ष का साधन है।।१।।
श्री जिनेन्द्र के दर्शन औ, निर्ग्रन्थ साधु के वन्दन से।
अधिक देर अघ नहीं रहै, जल छिद्र सहित कर में जैसे।।२।।
वीतराग-मुख के दर्शन की, पद्मराग सम शांत प्रभा।
जन्म-जन्म के पातक क्षण में, दर्शन से हों शांत विदा।।३।।
दर्शन श्री जिनदेव सूर्य, संसार-तिमिर का करता नाश।
बोधि-प्रदाता चित्तपद्म को, सकल अर्थ का करे प्रकाश।।४।।
दर्शन श्री जिनेन्द्र चन्द्र का, सद्धर्मामृत बरसाता।
जन्मदाह को करे शांत औ, सुख वारिधि को विकसाता।।५।।
सकल तत्व के प्रतिपादक, सम्यक्त्व आदि गुण के सागर।
शांत दिगम्बररूप, नमूँ, देवाधिदेव तुमको जिनवर।।६।।
चिदानन्दमय एकरूप, वंदन जिनेन्द्र परमात्मा को।
हो प्रकाश परमात्मनित्य, मम नमस्कार सिद्धात्मा को।।७।।
अन्य शरण कोई न जगत में, तुम्ही शरण मुझको स्वामी।
करुण भाव से रक्षा करिये, हे जिनेश अन्तर्यामी।।८।।
रक्षक नहीं शरण कोई नहिं, तीन जगत में दुखत्राता।
वीतराग प्रभुसा न देव है, हुआ न होगा सुखदाता।।९।।
दिनदिनपाऊँ जिनवर भक्ति, जिनवर भक्ति, जिनवर भक्ति।
सदा मिले वह सदा मिले, जब तक न मिले मुझको मुक्ति।।१०।।
नहीं चाहता जैनधर्म बिना, मैं चक्रवर्ती होना।
नहीं अखरता जैनधर्म से सहित, दरिद्री भी होना।।११।।

जन्म-जन्म के किये पाप औ बन्धन कोटि-कोटि भव के।
जन्म-मृत्यु औ जरा रोग, सब कट जाते जिन दर्शन से।।१२।।
आज'युगल'दृग हुएसफल,तुम चरण कमल से हे प्रभुवर।
हे त्रिलोक के तिलक, आज लगता भव सागर चुल्लूभर।।१३।।

आराधना-पाठ

मैं देव नित अरहंत चाहूँ, सिद्ध का सुमिरन करौं।
मैं सूर गुरु मुनि तीन पद ये, साधुपद हिरदय धरौं।।
मैं धर्म करुणामयी चाहूँ, जहाँ हिंसा रंच ना।
मैं शास्त्र ज्ञान विराग चाहूँ, जासु में परपंच ना।।१।।
चौबीस श्री जिनदेव चाहूँ, और देव न मन बसैं।
जिन बीस क्षेत्र विदेह चाहूँ, वंदिते पातक नसैं।।
गिरनार शिखर सम्मेद चाहूँ, चम्पापुरी पावापुरी।
कैलाश श्री जिनधाम चाहूँ, भजत भाजैं भ्रम जुरी।।२।।
नव तत्व का सरधान चाहूँ, और तत्व न मन धरौं।
षट् द्रव्य गुण परजाय चाहूँ, ठीक तासौं भय हरौं।।
पूजा परम जिनराज चाहूँ, और देव नहीं कदा।
तिहूँकाल की मैं जाप चाहूँ, पाप नहीं लागे कदा।।३।।
सम्यक्त्व दर्शन ज्ञान चारित्र, सदा चाहूँ भाव सों।
दशलक्षणी मैं धर्म चाहूँ, महा हर्ष उछाव सों।।
सोलह जु कारण दुख निवारण, सदा चाहूँ प्रीति सों।
मैं नित अठाई पर्व चाहूँ, महामंगल रीति सों।।४।।

मैं वेद चारों सदा चाहूँ, आदि अन्त निवाह सों।
पाये धर्म के चार चाहूँ, अधिक चित्त उछाव सों।।
मैं दान चारों सदा चाहूँ, भुवनवशि लाहो लहूँ।
आराधना मैं चार चाहूँ, अन्त में ये ही गहूँ।।५।।
भावना बारह जु भाऊं, भाव निर्मल होत हैं।
मैं व्रत जु बारह सदा चाहूँ, त्याग भाव उद्योत हैं।।
प्रतिमा दिगम्बर सदा चाहूँ, ध्यान आसन सोहना।
वसुकर्म तैं मैं छुटा चाहूँ, शिव लहूँ जहँ मोहना।।६।।
मैं साधुजन को संग चाहूँ, प्रीति तिनहीं सों करौं।
मैं पर्व के उपवास चाहूँ, आरम्भ मैं सब परिहरौं।।
इस दुखद पंचमकाल माहीं, कुल श्रावक मैं लह्यौ।
अरु महाव्रत धरि सकौं नाहीं, निबल तन मैंने गह्यौ।।७।।
आराधना उत्तम सदा चाहूँ, सुनो जिनराय जी।
तुम कृपानाथ अनाथ 'द्यानत' दया करना न्याय जी।।
वसुकर्म नाश विकास, ज्ञान प्रकाश मुझको दीजिये।
करि सुगति गमन समाधिमरन, सुभक्ति चरनन दीजिये।।८।।

देव-स्तुति

वीतराग सर्वज्ञ हितंकर, भविजन की अब पूरो आस।
ज्ञान भानु का उदय करो, मम मिथ्यातम का होय विनास।।
जीवों की हम करुणा पालें, झूठ वचन नहीं कहें कदा।
परधन कबहुँ न हरहुँ स्वामी, ब्रह्मचर्य व्रत रखें सदा।।

तृष्णा लोभ बढ़े न हमारा, तोष सुधा नित पिया करें।
श्री जिनधर्म हमारा प्यारा, तिस की सेवा किया करें।।
दूर भगावें बुरी रीतियाँ, सुखद रीति का करें प्रचार।
मेल-मिलाप बढ़ावें हम सब, धर्मोन्नति का करें प्रचार।।
सुख-दुख में हम समता धारें, रहें अचल जिमि सदा अटल।
न्याय मार्ग को लेश न त्यागें, वृद्धि करें निज आतमबल।।
अष्ट करम जो दुख हेतु हैं, तिनके क्षय का करें उपाय।
नाम आपका जपें निरन्तर, विघ्न शोक सब ही टल जाय।।
आतम शुद्ध हमारा होवे, पाप मैल नहीं चढ़े कदा।
विद्या की हो उन्नति हम में, धर्म ज्ञान हू बढ़े सदा।।
हाथ जोड़कर शीश नवावें, तुम को भविजन खड़े-खड़े।
यह सब पूरो आस हमारी, चरण शरण में आन पड़े।।

भजन

निरखो अंग-अंग जिनवर के जिनसे झलके शान्ति अपार।।
चरण कमल जिनवर कहें घूमा सब संसार।
पर क्षणभंगुर जगत में निज आत्म तत्त्व ही सार।।
यातें पद्मासन विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार।।१।।
हस्त युगल जिनवर कहें पर का करता होय।
ऐसी मिथ्या बुद्धि से ही भ्रमण चतुरगति होय।।
यातें पद्मासन विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार।।२।।
लोचन द्वय जिनवर कहें, देखा सब संसार।
पर दुःखमय गति चतुर में ध्रुव आत्म तत्त्व ही सार।।
यातें नाशा दृष्टि विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार।।३।।
अन्तर्मुख मुद्रा अहो, आत्म तत्त्व दरशाय।
जिनदर्शन कर निज दर्शन पा, सत्गुरु वचन सुहाय।।
यातें अन्तर्दृष्टि विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार।।४।।

जलाभिषेक पाठ

(दोहा)

जय जय भगवंते सदा, मंगल मूल महान।
वीतराग सर्वज्ञ प्रभु, नमौं जोरि जुगपान।।

(अडिल्ल और गीता)

श्रीजिन जग में ऐसो को बुधवंत जू।
जो तुम गुण वरननि करि पावै अन्त जू।।
इन्द्रादिक सुर चार ज्ञानधारी मुनि।
कहि न सके तुम गुणगण हे त्रिभुवन धनी।।
अनुपम अमित तुम गुणनि वारिधि ज्यों अलोकाकाश है।
किमि धरै हम उर कोष में सो अकथ गुण-मणिराश है।।
पै जिन! प्रयोजन सिद्धि की तुम नाम ही में शक्ति है।
यह चित्त में सरधान यातें नाम ही में भक्ति है।।१।।
ज्ञानावरणी दर्शन-आवरणी भने।
कर्म मोहनी अन्तराय चारों हने।।
लोकालोक विलोक्यो केवलज्ञान में।
इन्द्रादिक के मुकुट नये सुरथान में।।
तब इन्द्र जान्यो अवधि तैं, उठिसुरनयुत वंदत भयौ।
तुम पुण्य को प्रेर्यो हरि है मुदित धनपति सौं कह्यो।।
अब वेगि जाय रचो समवसृति सफल सुरपद को करौ।
साक्षात् श्री अरहंत के दर्शन करौ कल्मष हरौ।।२।।
ऐसे वचन सुने सुरपति के धनपति।
चल आयो तत्काल मोद धारैं अति।।

वीतराग छबि देखि शब्द जय-जय कह्यो।
देय प्रदच्छिना बार-बार वंदत भयौ।।
अति भक्ति भीनो नम्रचित है समवसरण रच्यो सही।
ताकी अनूपम शुभ गति को कहन समरथ कोउ नहीं।।
प्राकार तोरण सभामंडप कनक मणिमय छाजहीं।
नगजड़ित गंधकुटी मनोहर मध्यभाग विराजहीं।।३।।
सिंहासन तामध्य बन्यौ अद्भुत दिपै।
तापर वारिज रच्यो प्रभा दिनकर छिपै।।
तीन छत्र सिर शोभित चौंसठ चमरजी।
महाभक्तियुत ढोरत हैं तहाँ अमरजी।।
प्रभु तरनतारन कमल ऊपर, अन्तरीक्ष विराजिया।
यह वीतराग दशाप्रतच्छ विलोकि, भविजन सुख लिया।।
मुनि आदिद्वादश सभा के भवि जीव मस्तकनायकैं।
बहुभाँति बारम्बार पूजैं, नमैं गुणगण गायकैं।।४।।
परमौदारिक दिव्य देह पावन सही।
क्षुधा तृषा चिन्ता भय गद दूषण नहीं।।
जन्म जरा मृति अरति शोक विस्मय नसें।
राग रोष निद्रा मद मोह सबैं खसें।।
श्रम बिना श्रमजलरहितपावन, अमल ज्योति स्वरूपजी।
शरणागतनि की अशुचिता हरि, करतविमल अनूपजी।।
ऐसे प्रभु की शांत मुद्रा को न्हवन जलतैं करैं।
'बस' भक्तिवश मन उक्ति तैं, हम भानु ढिग दीपक धरैं।।५।।

तुम तो सहज पवित्र यही निश्चय भयो।
तुम पवित्रता हेत नहीं मंजन ठयो।।
मैं मलीन रागादिक मलतैं है रह्यौ।
महामलिन तन में वसुविधिवश दुख सह्यौ।।
बीत्यो अनंतो काल यह, मेरी अशुचिता ना गई।
तिस अशुचिताहर एक तुम ही, भरहु वांछाचित ठई।।
अब अष्टकर्म विनाश सब मल, दोष-रागादिक हरौ।
तनरूप कारागेह तैं, उद्धार शिववासा करौ।।६।।
मैं जानत तुम अष्टकर्म हरि शिव गये।
आवागमन विमुक्त राग वर्जित भये।।
पर तथापि मेरो मनरथ पूरत सही।
नय-प्रमाण तैं जानि महा साता लही।।
पापाचरण तजि न्हवन करता चित्त में ऐसे धरूँ।
साक्षात् श्री अरहंत का मानों न्हवन परसन करूँ।।
ऐसे विमल परिणाम होते अशुभ नशि शुभ बन्ध तैं।
विधि अशुभ नसि शुभ बन्धतैं है शर्म, सब विधि नासतैं।।७।।
पावन मेरे नयन भये तुम दरस तैं।
पावन पाणि भये तुम चरननि परस तैं।।
पावन मन है गयो तिहारे ध्यान तैं।
पावन रसना मानी, तुम गुण गान तैं।।
पावन भई परजाय मेरी, भयो मैं पूरण धनी।
मैं शक्तिपूर्वक भक्ति कीनी, पूर्ण भक्ति नहीं बनी।।

धनि धन्य ते बड़भागि भवि तिन नींव शिवघर की धरी।
वर क्षीरसागर आदि जल मणि-कुम्भभरी भक्ति करी।।८।।

विघन-सघन-वन-दाहन दहन प्रचण्ड हो।
मोह-महातम-दलन प्रबल मार्तण्ड हो।।
ब्रह्मा विष्णु महेश आदि संज्ञा धरो।
जगविजयी जमराज नाश ताको करो।।

आनन्दकारण दुख निवारण, परम मंगलमय सही।
मोसो पतित नहिं और तुमसो, पतित-तार सुन्यो नहीं।।
चिंतामणि पारस कल्पतरु, एक भव सुखकार ही।
तुम भक्ति-नौका जे चढ़े, ते भये भवदधि पार ही।।९।।

(दोहा)

तुम भवदधि तैं तरि गये, भये निकल अविकार।
तारतम्य इस भक्ति को, हमैं उतारो पार।।१०।।

निर्मल वस्त्र से प्रतिमाजी को साफ कर निम्न श्लोक बोलकर गन्धोदक ग्रहण करें।

निर्मलं निर्मलीकरणं, पावनम् पापनाशनम्।
जिन चरणोदकं वंदे, अष्टकर्म विनाशनम्।।

अभिषेक स्तुति

मैंने प्रभु के चरण पखारे।
जनम, जनम के संचित पातक तत्क्षण ही निरवारे।।
प्रासुक जल के कलश श्री जिन प्रतिमा ऊपर ढ़ारे।
वीतराग अरिहंत देव के गूंजे, जय जयकारे।।
चरणाम्बुज स्पर्श करत ही छाये हर्ष अपारे।
पावन तन, मन नयन भये सब दूर भये अंधियारे।।

प्रतिमा प्रक्षाल पाठ

(दोहा)

परिणामों की स्वच्छता के निमित्त जिनबिम्ब।
इसीलिए मैं निखरता, इनमें निज प्रतिबिम्ब।।
पंच प्रभु के चरण में, वंदन करूँ त्रिकाल।
निर्मल जल से कर रहा, प्रतिमा का प्रक्षाल।।

अथ पौर्वान्हिक देववन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजास्तवनवन्दना समेतं श्री पंचमहागुरुभक्तिपूर्वककायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(नौ बार णमोकार मन्त्र पढ़ें)

(छप्पय)

तीन लोक के कृत्रिम और अकृत्रिम सारे।
जिनबिम्बों को नित प्रति अगणित नमन हमारे।।
श्री जिनवर की अन्तर्मुख छवि उर में धारूँ।
जिन में निज का, निज में जिन-प्रतिबिम्ब निहारूँ।।
मैं करूँ आज संकल्प शुभ, जिन प्रतिमा प्रक्षाल का।
यह भाव सुमन अर्पण करूँ फल चाहूँ गुणमाल का।।

ॐ ह्रीं प्रक्षाल प्रतिज्ञाये पुष्पांजलिं क्षिपामि।

(प्रक्षाल की प्रतिज्ञा हेतु पुष्प क्षेपण करें)

(रोला)

अन्तरंग बहिरंग सुलक्ष्मी से जो शोभित।
जिनकी मंगल वाणी पर है त्रिभुवन मोहित।।
श्री जिनवर सेवा से क्षय मोहादि विपत्ति।
हे जिन! श्री लिख पाऊँगा निज-गुण सम्पत्ति।।

(थाली की चौकी पर केशर से श्री लिखें)

(दोहा)

अन्तर्मुख मुद्रा सहित शोभित श्री जिनराज।
प्रतिमा प्रक्षालन करूं, धरुं पीठ यह आज।।

ॐ ह्रीं श्री पीठस्थापनं करोमि।
(प्रक्षाल हेतु थाली स्थापित करें)

(रोला)

भक्ति रत्न से जड़ित आज मंगल सिंहासन।
भेद-ज्ञान जल से क्षालित भावों का आसन।।
स्वागत है जिनराज तुम्हारा सिंहासन पर।
हे जिनदेव! पधारो श्रद्धा के आसन पर।।

ॐ ह्रीं श्री धर्मतीर्थाधिनाथ भगवन्निह सिंहासने तिष्ठतिष्ठ।
(थाली में जिनबिम्ब विराजमान करें)

क्षीरोदधि के जल से भरे कलश ले आया।
दृग-सुख-वीरज ज्ञान स्वरूपी आतम पाया।।
मंगल कलश विराजित करता हूँ जिनराजा।
परिणामों के प्रक्षालन से सुधरें काजा।।

ॐ ह्रीं अर्हं कलश स्थापनं करोमि
(चारों कोनों में निर्मल जल से भरे कलश स्थापित करें)

जल-फल आठों द्रव्य मिलाकर अर्घ्य बनाया।
अष्ट अंग युत मानो सम्यग्दर्शन पाया।।
श्री जिनवर के चरणों में यह अर्घ्य समर्पित।
करूँ आज रागादि विकारी भाव विसर्जित।।

ॐ ह्रीं श्री स्नपनपीठस्थिताय जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
(पीठ स्थित जिन प्रतिमा को अर्घ्य चढ़ायें)

मैं रागादि विभावों से कलुषित हे जिनवर।
और आप परिपूर्ण वीतरागी हो प्रभुवर।।
कैसे हो प्रक्षाल, जगत के अघ-क्षालक का।
क्या दरिद्र होगा पालक? त्रिभुवन पालक का।।
भक्ति भाव के निर्मल जल से अघ-मल धोता।
है किसका अभिषेक भ्रान्त चित खाता गोता।।
नाथ! भक्तिवश जिनबिम्बों का करूँन्हवन मैं।
आज करूँ साक्षात् जिनेश्वर का पर्शन मैं।।

(दोहा)

क्षीरोदधि सम नीर से करूँ बिम्ब प्रक्षाल।
श्री जिनवर की भक्ति से जानूँ निज पर चाल।।
तीर्थंकर का न्हवन शुभ सुरपति करें महान।
पंचमेरु भी हो गये महातीर्थ सुखदान।।
करता हूँ शुभ भाव से प्रतिमा का अभिषेक।
बचूँ शुभाशुभ भाव से यही कामना एक।।

ॐ ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपालसन्तं वृषभादि महावीर पर्यन्तं चतुर्विंशतितीर्थंकर परमदेवम्आद्यानामाद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्य खण्डे....नाम्निनगरे मासा नामुत्तमे. ...मासे.....पक्षे.....दिने मुन्यार्यिका श्रावक श्राविकाणां सकलकर्म क्षयार्थं पवित्रतर जलेन जिन्माभिषेचयामि।

(चारों कलशों से अभिषेक करें तथा वादित्र नाद करावें एवं जय-जय शब्दोच्चारण करें)

(दोहा)

जिन संस्पर्शित नीर यह, गन्धोदक गुणखान।
मस्तक पर धारुँ सदा, बनूँ स्वयं भगवान।।

(मस्तक पर गन्धोदक चढ़ावें। अन्य किसी अंग से गन्धोदक का स्पर्श वर्जित हैं)

जल फलादि वसु द्रव्य ले, मैं पूजूँ जिनराज।
हुआ बिम्ब अभिषेक अब, पाऊँ निज पदराज।।

ॐ ह्रीं अभिषेकान्तेवृषभादिवीरान्तेभ्योऽर्घ्यंनिर्वपामीति स्वाहा।

श्री जिनवर का धवल यश त्रिभुवन में है व्याप्त।
शान्ति करें मम चित्त में, हे परमेश्वर आप्त।।

(पुष्पांजलि क्षेपण करें)

(रोला)

जिन प्रतिमा पर अमृत सम जल कण अति शोभित।
आत्म-गगन में गुण अनन्त तारे, भवि मोहित।।
हो अभेद का लक्ष्य, भेद का करता वर्जन।
शुद्ध वस्त्र से जल कण का करता परिमार्जन।।

(प्रतिमा को शुद्ध वस्त्र से पोंछें)

(दोहा)

श्री जिनवर की भक्ति से, दूर होय भव-भार।
उर-सिंहासन थापिये, प्रिय चैतन्यकुमार।।

(जिन-प्रतिमा को सिंहासन पर विराजमान करें तथा निम्न छन्द बोलकर अर्घ्य चढ़ायें।)

जल गन्धादिक द्रव्य से, पूजूँ श्री जिनराज।
पूर्ण अर्घ्य अर्पित करूँ, पाऊँ चेतनराज।।

ॐ ह्रीं श्री पीठस्थित जिनाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ध्यान दीजिये....

1. *जिन बिम्ब का प्रक्षाल मात्र शुद्ध जल से, शुद्ध वस्त्र पहन कर किया जाए।*
2. *प्रक्षाल मात्र पुरुषों द्वारा ही किया जाए। महिलायें जिनबिम्ब को स्पर्श न करें।*
3. *जिनबिम्ब का प्रक्षाल प्रतिदिन एक बार हो जाने के पश्चात् बार-बार न करें।*
4. *अर्हन्त भगवान का अभिषेक नहीं होता, जिनबिम्ब का प्रक्षाल किया जाता है, जो अभिषेक के नाम से प्रचलित है।*

विनय पाठ -1

(दोहा)

इह विधि ठाड़ो होय के, प्रथम पढ़ै जो पाठ।
धन्य जिनेश्वर देव तुम, नाशे कर्म जु आठ।।१।।
अनन्त चतुष्टय के धनी, तुम ही हो सरताज।
मुक्ति-वधू के कंत तुम, तीन भुवन के राज।।२।।
तिहुँ जग की पीड़ा हरन, भवदधि-शोषणहार।
ज्ञायक हो तुम विश्व के, शिव-सुख के करतार।।३।।
हरता अघ अंधियार के, करता धर्म-प्रकाश।
थिरता-पद दातार हो, धरता निजगुण रास।।४।।
धर्मामृत उर जलधि सौं, ज्ञानभानु तुम रूप।
तुमरे चरण-सरोज को, नावत तिहुँ-जग भूप।।५।।
मैं वन्दौं जिनदेव को, करि अति निर्मल भाव।
कर्म-बन्ध के छेदने, और न कछु उपाव।।६।।
भविजन कौं भव-कूप तैं, तुम ही काढ़नहार।
दीन-दयाल अनाथ-पति, आतम गुण भंडार।।७।।
चिदानन्द निर्मल कियो, धोय कर्म-रज मैल।
सरल करी या जगत में, भविजन को शिव-गैल।।८।।
तुम पद-पंकज पूजतैं, विघ्न-रोग टर जाय।
शत्रु मित्रता को धरैं, विष निरविषता थाय।।९।।
चक्री सुरखग इन्द्र पद, मिलैं आप तैं आप।
अनुक्रम करि शिवपद लहैं नेम सकल हनि पाप।।१०।।
तुम बिन मैं व्याकुल भयो, जैसे जलबिन मीन।
जन्म-जरा मेरी हरो, करो मोहि स्वाधीन।।११।।

पतित बहुत पावन किये, गिनती कौन करेव।
अंजन से तारे कुधी, जय जय जय जिनदेव।।१२।।
थकी नाव भवदधि विषैं, तुम प्रभु पार करेय।
खेवटिया तुम हो प्रभु, जय जय जय जिनदेव।।१३।।
राग सहित जग में रुल्यो, मिले सरागी देव।
वीतराग भेट्यो अबैं, मेटो राग कुटेव।।१४।।
कित निगोद कित नारकी, कित तिर्यंच अजान।
आज धन्य मानुष भयो, पायो जिनवर थान।।१५।।
तुमको पूजैं सुरपती, अहिपति, नरपति देव।
धन्य भाग्य मेरो भयो, करन लग्यो तुम सेव।।१६।।
अशरण के तुम शरण हो, निराधार आधार।
मैं डूबत भव-सिन्धु में, खेव लगाओ पार।।१७।।
इन्द्रादिक गणपति थके, कर विनती भगवान।
अपनो विरद निहारिकै, कीजे आप समान।।१८।।
तुम्हरी नेक सुदृष्टि तैं, जग उतरत है पार।
हा हा डूब्यो जात हौं, नेक निहार निकार।।१९।।
जो मैं कहहूँ और सौं, तो न मिटैं उरझार।
मेरी तो तोसौं बनी, यातैं करौं पुकार।।२०।।
वंदौ पाँचों परमगुरु सुरगुरु वंदत जास।
विघनहरन मंगल करन, पूरन परम प्रकाश।।२१।।
चौबीसौं जिनपद नमों, नमों शारदा माय।
शिवमग साधक साधु नमि, रच्यौ पाठ सुखदाय।।२२।।

विनय पाठ - 2

सफल जन्म मेरा हुआ, प्रभु दर्शन से आज,
भव समुद्र नहिं दीखता, पूर्ण हुए सब काज।१।
दुर्निवार सब कर्म अरु, मोहादिक परिणाम,
स्वयं दूर मुझसे हुए, देखत तुम्हें ललाम।२।
संवर कर्मों का हुआ, शान्त हुए गृह जाल,
हुआ सुख सम्पन्न मैं, नहिं आये मम काल।३।
भव कारण मिथ्यात्व का, नाशन ज्ञान सुभानु,
उदित हुआ मुझमें प्रभो, दीखे आप समान।४।
मेरा आत्म स्वरूप जो ज्ञान सुख की खान,
आज हुआ प्रत्यक्ष सम, दर्शन से भगवान।५।
दीन भावना मिट गई, चिन्ता मिटी अशेष,
निज प्रभुता पाई प्रभो, रहा न दुख का लेश।६।
शरण रहा था खोजता, इस संसार मंझार,
निज आतम मुझको शरण, तुमसे सीखा आज।७।
निज स्वरूप में मगन हो, पाऊँ शिव अभिराम,
इसी हेतु मैं आप को, करता कोटि प्रणाम।८।
मैं वन्दों जिन राज को, धर उर समता भाव,
तन-धन-जग जंजाल से, धरि विरागता भाव।९।
यही भावना है प्रभो, मेरी परिणति माँही,
राग-द्वेष की कल्पना, किंचित उपजै नाहीं।१०।

पूजा पीठिका (संस्कृत)

ॐ जय जय जय। नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु।
णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

ॐ ह्रीं अनादिमूलमंत्रेभ्यो नमः, पुष्पांजलिं क्षिपामि।

चत्तारि मंगलं–अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं,
साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।
चत्तारि लोगुत्तमा-अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।
चत्तारि सरणं पव्वज्जामि–अरिहंते सरणं पव्वज्जामि,
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि,
केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

मंगल विधान

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा।
ध्यायेत्पंच नमस्कारं सर्व पापैः प्रमुच्यते।।१।।
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्परमात्मानं स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः।।२।।
अपराजितमंत्रोऽयं सर्व विघ्न विनाशनः।
मंगलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलं मतः।।३।।
एसो पंच णमोयारो सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होई मंगलं।।४।।
अर्हमित्यक्षरं ब्रह्मवाचकं परमेष्ठिनः।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहम्।।५।।

कर्माष्टक-विनिर्मुक्तं मोक्ष-लक्ष्मी निकेतनम्।
सम्यक्त्वादि-गुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम्।।६।।
विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनी-भूत-पन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे।।७।।

(पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

जिनसहस्त्रनाम अर्घ्य

उदक-चन्दन-तन्दुलपुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घ्यकैः।
धवल-मंगल-गान-रवाकुले जिन-गृहे जिननाथमहं यजे।।

(ॐ ह्रीं श्री भगवज्जिनसहस्त्रनामेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

पूजा प्रतिज्ञा पाठ

श्रीमज्जिनेन्द्र- मभिवन्द्य जगत्त्रयेशं,
स्याद्वाद- नायकमनन्त-चतुष्टयार्हम्।
श्रीमूलसंघ-सुदृशां सुकृतैकहेतु,
जैनेन्द्र-यज्ञ-विधिरेष मयाऽभ्यधायि।।१।।
स्वस्ति त्रिलोक-गुरवे जिन-पुंगवाय,
स्वस्ति स्वभाव-महिमोदय-सुस्थिताय।
स्वस्ति प्रकाश-सहजोर्ज्जित-दृङ् मयाय,
स्वस्ति प्रसन्न-ललिताद्भुत-वैभवाय।।२।।
स्वस्त्युच्छलद्विमल-बोधसुधा प्लवाय,
स्वस्ति स्वभाव-परभाव-विभासकाय।
स्वस्ति त्रिलोकविततैक-चिदुद्गमाय,
स्वस्ति त्रिकाल-सकलायत-विस्तृताय।।३।।
द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं,
भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तुकामः।
आलम्बनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन्,
भूतार्थ-यज्ञ-पुरुषस्य करोमि यज्ञम्।।४।।

अर्हत् पुराणपुरुषोत्तम पावनानि,
वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव।
अस्मिज्ज्वलद्विमल-केवल-बोधवह्नौ,
पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि।।५।।

ॐ यज्ञविधि प्रतिज्ञायै जिनप्रतिमाग्रे परि पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

स्वस्ति मंगलपाठ

श्रीवृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअजितः।
श्रीसम्भवः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअभिनन्दनः।
श्रीसुमति स्वस्ति, स्वस्ति श्रीपद्मप्रभः।
श्रीसुपार्श्व स्वस्ति, स्वस्ति श्रीचन्द्रप्रभः।
श्रीपुष्पदन्तः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशीतलः।
श्रीश्रेयान्सः स्वस्ति, स्वस्ति श्री वासुपूज्यः।
श्रीविमलः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअनन्तः।
श्रीधर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशान्तिः।
श्रीकुन्थुः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअरनाथः।
श्रीमल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीमुनिसुव्रतः।
श्रीनमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीनेमिनाथः।
श्रीपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवर्द्धमानः।

(पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

परमर्षि स्वस्ति मंगलपाठ

(प्रत्येक श्लोक के बाद पुष्प क्षेपण करें।)

नित्याप्रकंपाद्भुत-केवलौघा स्फुरन्मनः पर्यय-शुद्धबोधाः।
दिव्यावधिज्ञान-बलप्रबोधा स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।१।।
कोष्ठस्थ-धान्योपममेकबीजं संभिन्न- संश्रोतृ-पदानुसारि।
चतुर्विधं बुद्धिबलं दधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।२।।

संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरादास्वादन-घ्राण-विलोकनानि।
दिव्यानूमतिज्ञान-बलाद्वहन्तः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।३।।
प्रज्ञाप्रधानाः श्रमणाः समृद्धाः प्रत्येकबुद्धा दशसर्वपूर्वैः।
प्रवादिनोऽष्टांगनिमित्तविज्ञाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।४।।
जंघावलि-श्रेणि-फलांबु-तंतु-प्रसून-बिजांकुर- चारणाह्वाः।
नभोऽङ्गणस्वैर-विहारिणश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।५।।
अणिम्निदक्षाः कुशलामहिम्नि लघिम्निशक्ताःकृतिनो गरिम्णि,
मनो-वपुर्वाग्बलिनश्च नित्यं स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।६।।
सकामरूपित्व-वशित्वमैश्यं प्राकाम्यमन्तर्द्धिमथाप्तिमाप्ताः।
तथाऽप्रतीघातगुणप्रधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।७।।
दीप्तं च तप्तं च तथा महोग्रं घोरं तपो घोरपराक्रमस्थाः।
ब्रह्मापरं घोर गुणंचरन्तः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।८।।
आमर्ष-सर्वौषधयस्तथाशीर्विषं-विषा दृष्टिविषंविषाश्च।
सखिल्ल-विड्जल्ल-मलौषधीशाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।९।।
क्षीरं स्रवन्तोऽत्र घृतं स्रवन्तो मधुस्रवन्तोऽप्यमृतं स्रवन्तः।
अक्षीणसंवास-महानसाश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।१०।।

(इति परमर्षिस्वस्तिमंगलविधानम्।)

हे भव्य!

जिन रूप ही देखने योग्य है।

जिन वचन ही सुनने योग्य है।

जिन भावना ही भाने योग्य है।

जिन मंदिर संसाररूपी मरुस्थल का कल्पवृक्ष है।

पूजा पीठिका (हिन्दी) - 1

ॐ जय जय जय। नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु।
अरिहन्तों को नमस्कार है, सिद्धों को सादर वन्दन।
आचार्यों को नमस्कार है, उपाध्याय को है वंदन।।
और लोक के सर्वसाधुओं को है विनय सहित वंदन।
पंच परम परमेष्ठी प्रभु को बार-बार मेरा वंदन।।

ॐ ह्रीं अनादिमूलमंत्रेभ्यो नमः, पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

(वीर छन्द)

मंगल चार, चार हैं उत्तम चार शरण में जाऊँ मैं।
मन वच काय त्रियोग पूर्वक, शुद्ध भावना भाऊँ मैं।।
श्री अरिहंत देव मंगल हैं, श्री सिद्ध प्रभु हैं मंगल।
श्री साधु मुनि मंगल हैं, है केवलि कथित धर्म मंगल।।
श्री अरिहंत लोक में उत्तम, सिद्ध लोक में हैं उत्तम।
साधु लोक में उत्तम हैं, है केवलि कथित धर्म उत्तम।।
श्री अरहंत शरण में जाऊँ, सिद्धशरण में मैं जाऊँ।
साधु शरण में जाऊँ, केवलिकथित धर्म शरण में जाऊँ।।

मंगल विधान

अपवित्र हो या पवित्र, जो णमोकार को ध्याता है।
चाहे सुस्थित हो या दुस्थित, पाप-मुक्त हो जाता है।।१।।
हो पवित्र-अपवित्र दशा, कैसी भी क्यों नहिं हो जन की।
परमातम का ध्यान किये, हो अन्तर-बाहर शुचि उनकी।।२।।
है अजेय विघ्नों का हर्त्ता, णमोकार यह मंत्र महा।
सब मंगल में प्रथम सुमंगल, श्री जिनवर ने एम कहा।।३।।

सब पापों का है क्षय कारक, मंगल में सबसे पहला।
नमस्कार या णमोकार यह, मन्त्र जिनागम में पहला।।४।।
अर्हं ऐसे परं ब्रह्म-वाचक, अक्षर का ध्यान करूँ।
सिद्धचक्र का सद्बीजाक्षर, मन-वच-काय प्रणाम करूँ।।५।।
अष्टकर्म से रहित मुक्ति-लक्ष्मी के घरश्री सिद्ध नमूँ।
सम्यक्त्वादि गुणों से संयुत, तिन्हें ध्यान धर कर्म वमूँ।।६।।
जिनवर की भक्ति से होते, विघ्न समूह अन्त जानो।
भूत शाकिनी सर्प शांत हो, विष निर्विष होता मानों।।७।।

(यहाँ पुष्पांजलिं क्षेपण करें)

जिनसहस्त्रनाम अर्घ्य

मैं प्रशस्त मंगल गानों से युक्त जिनालय माँहीं यजूँ।
जल चंदन अक्षत प्रसून चरु, दीप धूप फल अर्घ्य सजूँ।।

(ॐ ह्रीं श्री भगवज्जिनसहस्त्रनामेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

पूजा प्रतिज्ञा पाठ

(ताटंक)

स्याद्वाद वाणी के नायक, श्री जिनको मैं नमन कराय।
चार अनंत चतुष्टयधारी, तीन जगत के ईश मनाय।।
मूलसंघ के सम्यग्दृष्टि, उनके पुण्य कमावन काज।
करूँ जिनेश्वर की यह पूजा, धन्य भाग्य है मेरा आज।।१।।
तीन लोक के गुरु जिन-पुंगव, महिमा सुन्दर उदित हुई।
सहज प्रकाश मई दृग-ज्योति, जग-जन के हित मुदित हुई।।
समवसरण का अद्भुत वैभव, ललित प्रसन्न करी शोभा।
जग-जन का कल्याण करे अरु, क्षेम कुशल हो मन लोभा।।२।।
निर्मल बोध सुधा सम प्रकटा, स्व-पर विवेक करावन हार।
तीन लोक में प्रथित हुआ जो, वस्तु त्रिजग प्रकटावनहार।।

ऐसा केवलज्ञान करे, कल्याण सभी जगतीतल का।
उसकी पूजा रचूँ आज मैं, कर्म बोझ करने हलका।।३।।
द्रव्य-शुद्धि अरु भाव-शुद्धि, दोनों विधि का अवलंबन कर।
करूँ यथार्थ पुरुष की पूजा, मन-वच-तन एकत्रित कर।।
पुरुष पुराण जिनेश्वर अर्हन्, एकमात्र वस्तु का स्थान।
उसकी केवल-ज्ञान वह्नि में, करूँ समस्त पुण्य आह्वान।।४।।

(यहाँ पुष्पांजलिं क्षेपण करें)

स्वस्ति पाठ

(चौपाई)

ऋषभदेव कल्याणकराय, अजित जिनेश्वर निर्मलथाय।
स्वस्ति करें संभव जिनराय, अभिनंदन के पूजों पाय।।१।।
स्वस्ति करें श्री सुमति जिनेश, पद्म-प्रभ पद-पद्म विशेष।
श्री सुपार्श्व स्वस्ति के हेतु, चन्द्रप्रभु जन तारन सेतु।।२।।
पुष्पदंत कल्याण सहाय, शीतल शीतलता प्रकटाय।
श्री श्रेयान्स स्वस्ति के श्वेत, वासुपूज्य शिव साधन हेत।।३।।
विमलनाथ पद विमल कराय, श्री अनंत आनन्द बताय।
धर्मनाथ शिव शर्म कराय, शांति विश्व में शांति कराय।।४।।
कुंथु और अरजिन सुखरास, शिवमग में मंगलमय आश।
मल्लि और मुनिसुव्रतदेव, सकल कर्मक्षय कारण एव।।५।।
श्री नमि और नेमि जिनराज, करें सुमंगलमय सब काज।
पार्श्वनाथ तेवीसम ईश, महावीर वंदों जगदीश।।६।।
ये सब चौबीसों महाराज, करें भव्य जन मंगल काज।
मैं आयो पूजन के काज, राखो श्री जिन मेरी लाज।।७।।

(यहाँ पुष्पांजलिं क्षेपण करें)

परमर्षि स्वस्ति मंगल पाठ (हिन्दी) - 1

(गीतिका)

नित्य अद्भुत अचल केवल, ज्ञानधारी जे मुनी।
मन:प्रर्यय ज्ञानधारक, यती तपसी वा गुणी।।
दिव्य अवधिज्ञान धारक, श्री ऋषिश्वर को नमूँ।
कल्याणकारी लोक में, कर पूज वसु विधि को वमूँ।१।
कोष्ठस्थ धान्योपम कही, अरु एक बीज कही प्रभो।
संभिन्न संश्रोतृ पदानुसारी, बुद्धि ऋद्धि कही विभो।।
ये चार ऋद्धीधर यतीश्वर, जगत जन मंगल करें।
अज्ञान-तिमिर विनाश कर, कैवल्य में लाकर धरें।२।
दिव्य मति के बल ग्रहण, करते सपर्शन घ्राण को।
श्रवण आस्वादन करें, अवलोकते कर त्राण को।।
पंच इन्द्री की विजय, धारण करें जो ऋषिवरा।
स्व पर का कल्याण कर, पावें शिवालय ते त्वरा।३।
प्रज्ञा प्रधाना श्रमण, अरु प्रत्येक बुद्धि जो कही।
अभिन्न दश पूर्वि चतुर्दश-पूर्व प्रकष्टवादी सही।।
अष्टांग महा निमित्त विज्ञा, जगत का मंगल करें।
उनके चरण में अहर्निश, यह दास अपना शिर धरे।४।
जंघावलि अरु श्रेणि तंतू, फलांबु बीजांकुर प्रसून।
ऋद्धि चारण धार के मुनि, करत आकाशी गमन।।
स्वछन्द करत विहार नभ में, भव्यजन के पीर हर।
कल्याण मेरा भी करें, मैं शरण आया हूँ प्रवर।५।
अणिमा जु महिमा और गरिमा, में कुशल श्री मुनिवरा।
ऋद्धि लघिमा वे धरें, मन-वचन-तन से ऋषिवरा।।

हैं यद्यपि ये ऋद्धि धारी, पर नहीं मद झलकता।
उनके चरण के यजन हित, इस दास का मन ललकता।६।
ईशत्व और वशित्व, अन्तर्धान आप्ति जिन कही।
कामरूपी और अप्रतिघात, ऋषि पुंगव लही।।
इन ऋद्धि धारक मुनिजनों को, सतत वंदन मैं करूँ।
कल्याणकारी जो जगत में, सेय शिव-तिय को वरूँ।७।
दीप्ती तप्ता महा घोरा, उग्र घोर पराक्रमा।
ब्रह्मचारी ऋद्धिधारी, वन विहारी अघ वमा।।
ये घोर तपधारी परम गुरु, सर्वदा मंगल करें।
भव डूबते इस अज्ञजन को, तार तीरही ले धरें।८।
आमर्षऔषधि आषि विष, अरु दृष्टि विष सर्वौषधि।
खिल्ल औषधि जल्ल औषधि, विडौषधि मल्लौषधि।।
ये ऋद्धिधारी महा मुनिवर, सकल संघ मंगल करें।
जिनके प्रभाव सभी सुखी हों, और भव-जलनिधि तरें।६।
क्षीरस्रावी मधुस्रावी घृतस्रावी मुनि यशी।
अमृतस्रावी ऋद्धिवर, अक्षीण संवास महानसी।।
ये ऋद्धिधारी सब मुनिश्वर, पापमल को परिहरें।
पूजाविधि के प्रथम अवसर, आ सकल पूजा करें।१०।
कर जोड़ दास 'गुलाब' करता, विनय चरणन में खड़ा।
सम्यक्त्व दरशन ज्ञान चारित्र, दीजिये सबसे बड़ा।।
जब तक न हो संसार पूरा, चरण में रत नित रहें।
वसुकर्म क्षयकर शिव लहें, बस और कुछ नहीं यह चहें।११।

(इति पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

2 2 2

मंगल विधान (हिन्दी) - 2

णमोंकार का मंत्र शास्वत इसकी महिमा अपरम्पार।
पाप ताप संताप क्लेश हरता भवभय नाशक सुखकार।।
सर्व अमंगल का हर्ता है सर्वश्रेष्ठ है मन्त्र पवित्र।
पाप पुण्य आस्रव का नाशक संवरमय निर्जरा विचित्र।।
बन्ध विनाशक मोक्ष प्रकाशक वीतराग पद दाता मित्र।
श्री पंच परमेष्ठी प्रभु के झलक रहे हैं इसमें चित्र।।
इसके उच्चारण से होता विषय कषायों का परिहार।
इसके उच्चारण से होता अन्तर मन निर्मल अविकार।।
इसके ध्यान मात्र से होता अन्तर द्वन्दों का प्रतिकार।
इसके ध्यान मात्र से होता बाह्यान्तर आनन्द अपार।।
णमोकार है मन्त्र श्रेष्ठतम सर्व पाप नाशनहारी।
सर्व मंगलों में पहला मंगल पढ़ते ही सुखकारी।।
यह पवित्र अपवित्र दशा सुस्थिति दुस्थिति में हितकारी।
निमिष मात्र में जपते ही होते विलीन पातकभारी।।
सर्व विघ्न बाधा नाशक है सर्व संकटों का हर्ता।
अजर अमर अविकल अविकारी अविनाशी सुख का कर्ता।।
कर्माष्टक का चक्र मिटाता, मोक्ष लक्ष्मी का दाता।
धर्मचक्र से सिद्धचक्र पाता जो ओम् नमः ध्याता।।
ओम् शब्द में गर्भित पाँचों परमेष्ठी निज गुण धारी।
जो भी ध्याते बन जाते परमात्मा पूर्ण ज्ञानधारी।।
जय जय जयति पंच परमेष्ठी जय जय णमोकार जिन मंत्र।
भव बंधन से छुटकारे का यही एक है मंत्र स्वतंत्र।।
इसकी अनुपम महिमा का शब्दों से कैसे हो वर्णन।
जो अनुभव करते हैं वे ही पा लेते हैं मुक्ति गगन।।

अर्घ्य

जल गंधाक्षत पुष्प सुचरु ले दीप धूप फल अर्घ्य धरूँ।
जिन गृह में जिनराज पंच कल्याणक पाँचों नमन करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री जिनेन्द्र पंच कल्याणकेभ्यो अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंधाक्षत पुष्प सुचरु ले दीप धूप फल अर्घ्य धरूँ।
जिन गृह में पाँचों परमेष्ठी के चरणों में नमन करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंतादि पंच परमेष्ठिभ्यो अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंधाक्षत पुष्प सुचरु ले दीप धूप फल अर्घ्य धरूँ।
जिन गृह में जिन प्रतिमा सम्मुख सहस्त्रनाम को नमन करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री भगवज्जिन सहस्त्रनामेभ्यो अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

स्वस्ति मंगल

मंगलमय भगवान वीर प्रभु मंगलमय गौतम गणधर।
मंगलमय श्री कुन्दकुन्द मुनि मंगल जैन धर्म सुखकर।।
मंगलमय श्री ऋषभदेवप्रभु मंगलमय श्री अजित जिनेश।
मंगलमय श्री सम्भव जिनवर, मंगल अभिनन्दन परमेश।।
मंगलमय श्री सुमति जिनोत्तम मंगल पद्मनाथ सर्वेश।
मंगलमय सुपार्श्व जिन स्वामी मंगल चन्द्राप्रभु चन्द्रेश।।
मंगलमय श्री पुष्पदंत प्रभु, मंगल शीतलनाथ सुरेश।
मंगलमय श्रेयान्सनाथ जिन मंगल वासुपूज्य पूज्येश।।
मंगलमय श्री विमलनाथ विभु, मंगल अनन्तनाथ महेश।
मंगलमय श्री धर्मनाथ प्रभु, मंगल शांतिनाथ चक्रेश।।
मंगलमय श्री कुन्थुनाथ जिन मंगल श्री अरनाथ गुणेश।
मंगलमय श्री मल्लिनाथ प्रभु मंगल मुनिसुव्रत सत्येश।।
मंगलमय नमिनाथ जिनेश्वर मंगल नेमिनाथ योगेश।
मंगलमय श्री पार्श्वनाथ प्रभु, मंगल वर्द्धमान तीर्थेश।।

मंगलमय अरिहंत महाप्रभु, मंगल सर्व सिद्ध लोकेश।
मंगलमय आचार्य श्री जय मंगल उपाध्याय ज्ञानेश।।
मंगलमय श्री सर्वसाधुगण, मंगल जिनवाणी उपदेश।
मंगलमय सीमन्धर आदिक, विद्यमान जिन बीस परेश।।
मंगलमय त्रैलोक्य जिनालय, मंगल जिन प्रतिमा भव्येश।
मंगलमय त्रिकाल चौबीसी, मंगल समवसरण सविशेष।।
मंगल पंचमेरु जिन मन्दिर, मंगल नन्दीश्वर द्वीपेश।
मंगल सोलह कारण दशलक्षण, रत्नत्रय व्रत भव्येश।।
मंगल सहस्त्र कूट चैत्यालय मंगल मान स्तम्भ हमेश।
मंगलमय केवलि श्रुतकेवलि मंगल ऋद्धिधारि विद्येश।।
मंगलमय पाँचों कल्याणक, मंगल जिन शासन उद्देश।
मंगलमय निर्वाण भूमि, मंगलमय अतिशय क्षेत्र विशेष।।
सर्व सिद्धि मंगल के दाता हरो अमंगल हे विश्वेश।
जब तक सिद्ध स्वपद ना पाऊँ तब तक पूजूँ हे ब्रह्मेश।।

भजन

करलो जिनवर की पूजन, आई पावन घड़ी।
आई पावन घड़ी मन भावन घड़ी।। करलो...।।
दुर्लभ यह मानव तन पाकर, करलो जिन गुणगान।
गुण अनन्त सिद्धों का सुमिरण, करके बनो महान।। करलो...।।
ज्ञानावरण दर्शनावरणी मोहनीय अंतराय।
आयु नाम अरु गोत्र वेदनीय, आठों कर्म नशाय।। करलो...।।
धन्य धन्य सिद्धों की महिमा, नाश किया संसार।
निजस्वभाव से शिवपद पाया, अनुपम अगम अपार।। करलो...।।
जड़ से भिन्न सदा तुम चेतन करो भेद विज्ञान।
सम्यक्दर्शन अंगीकृत कर निज की कर पहचान।। करलो...।।
रत्नत्रय की तरणी चढ़कर चलो मोक्ष के द्वार।
शुद्धातम का ध्यान लगाओ हो जाओ भव पार।। करलो...।।

देव-शास्त्र-गुरु पूजन - 1

(अडिल्ल)

प्रथम देव अरहंत सुश्रुत सिद्धान्त जू।
गुरु निरग्रंथ महंत मुकतिपुर-पंथ जू।।
तीन रतन जगमाँही सु ये भवि ध्याइये।
तिनकी भक्ति-प्रसाद परम-पद पाइये।।

(दोहा)

पूजों पद अरहंत के, पूजों गुरुपद सार।
पूजों देवी सरस्वती, नित प्रति अष्ट प्रकार।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(हरिगीतिका एवं दोहा)

सुरपति उरग नरनाथ तिन करि, वन्दनीक सुपदप्रभा।
अति शोभनीक सुवरण उज्ज्वल, देख छवि मोहित सभा।।
वर नीर क्षीर-समुद्र घट भरि, अग्र तसु बहुविधि नचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।

मलिन वस्तु हर लेत सब, जल स्वभाव मल छीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जे त्रिजग-उदर मँझार प्रानी, तपत अति दुद्धर खरे।
तिन अहित-हरन सुवचन जिनके, परम शीतलता भरे।।
तसु भ्रमर-लोभित घ्राण पावन, सरस चन्दन घसि सचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।

चंदन शीतलता करे, तपत वस्तु परवीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

यह भव-समुद्र अपार तारण, के निमित्त सुविधि ठई।
अति दृढ़ परम-पावन जथारथ, भक्तिवर नौका सही।
उज्ज्वल अखंडित सालि तंदुल, पुंज धरि त्रयगुण जचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।

तंदुल सालि सुगंधि अति, परम अखंडित बीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

जय विनयवंत सुभव्य-उर-अंबुज प्रकाशन भानु हैं।
जे एक मुख चारित्र भाषत, त्रिजग माँहि प्रधान हैं।
लहि कुन्द-कमलादिक पहुप, भव-भव कुवेदन सों बचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।

विविध भाँति परिमल सुमन, भ्रमर जास आधीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो काम-बाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अति सबल मद-कंदर्प जाको, क्षुधा-उरग अमान हैं।
दुस्सह भयानक तासु नाशन, को सुगरुड़ समान हैं।
उत्तम छहों रस युक्त नित, नैवेद्य करि घृत में पचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।

नानाविधि संयुक्तरस, व्यंजन सरस नवीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो क्षुधा-रोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जे त्रिजग-उद्यम नाश कीने, मोह-तिमिर महाबली।
तिहि कर्मघाती ज्ञानदीप - प्रकाश ज्योति प्रभावली।
इहभाँति दीप प्रजाल कंचन, के सुभाजन में खचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।

स्व-पर प्रकाशक ज्योतिअति, दीपक तमकरि हीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोहांधकारविनाशकाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जो कर्म-ईंधन दहन अग्निसमूह सम उद्धत लसै।
वर धूप तासु सुगंधिताकरि, सकल परिमलता हँसै।
इह भाँति धूप चढ़ाय नित भव-ज्वलन माँहि नहीं पचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।

अग्निमांहिं परिमल दहन, चंदनादि गुणलीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

लोचन सुरसनां घ्राण उर, उत्साह के करतार हैं।
मोपे न उपमा जाय वरणी, सकल फल गुणसार हैं।
सो फल चढ़ावत अर्थपूरन, परम अमृतरस सचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।

जे प्रधान फल-फल विषैं, पंचकरण-रस-लीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोक्ष-फलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल परम उज्ज्वल गन्ध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूँ।
वर धूप निर्मल फल विविध बहु, जनम के पातक हरूँ।

इह भाँति अर्घ्य चढ़ाय नित भवि, करत शिव-पंकति मचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।
वसुविधि अर्घ्य संजोय कै, अति उछाह मन कीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

देव-शास्त्र-गुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार।
भिन्न-भिन्न कहुँ आरती, अल्प सुगुण विस्तार।।

(पद्धरि-छन्द)

चउ कर्म सु त्रेसठ प्रकृतिनाशि, जीते अष्टादश दोषराशि।
जे परम सुगुण हैं अनंत धीर, कहवत के छ्यालिसगुणगंभीर।।
शुभ समवसरण शोभा अपार, शत इन्द्र नमत कर सीस धार।
देवाधिदेव अरहन्तदेव, वन्दों मन-वचन-तन कर सुसेव।।
जिनकी धुनि है ओंकाररूप, निर-अक्षरमय महिमा अनूप।
दश-अष्ट महाभाषा समेत, लघु भाषा सात शतक सुचेत।।
सो स्याद्वादमय सप्तभंग, गणधर गूँथे बारह सुअंग।
रवि-शशि न हरै सो तम हराय, सो शास्त्र नमों बहु प्रीति ल्याय।।
गुरु आचारज उवझाय साधु, तननगन रत्नत्रयनिधि अगाध।
संसार देह वैराग धार, निरवांछि तपै शिव पद निहार।।
गुण छत्तिस पच्चिस आठ-बीस, भव-तारन-तरन जिहाज ईस।
गुरु की महिमा वरनी न जाय, गुरुनाम जपों मन-वचन-काय।।

(सोरठा)

कीजे शक्ति प्रमान, शक्ति बिना सरधा धरै।
'द्यानत' सरधावान, अजर-अमर पद भोगवै।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्योअनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा। पुष्पांजलिं क्षिपेत्

देव-शास्त्र-गुरु पूजन - 2

केवल-रवि किरणों सें जिसका, सम्पूर्ण प्रकाशित है अन्तर।
उस श्री जिन-वाणी में होता, तत्त्वों का सुन्दरतम दर्शन।।
सद्दर्शन-बोध-चरण-पथ पर, अविरल जो बढ़ते हैं मुनिगण।
उन देव, परम-आगम, गुरु को शत-शत वन्दन, शत-शत वन्दन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

इन्द्रिय के भोग मधुर विष-सम, लावण्यमयी कंचन काया।
यह सब कुछ जड़ की क्रीड़ा है, मैं अब तक जान नहीं पाया।।
मैं भूल स्वयं निज वैभव को, पर-ममता में अटकाया हूँ।
अब निर्मल सम्यक्-नीर लिये, मिथ्यामल धोने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ चेतन की सब परिणति प्रभु! अपने-अपने में होती है।
अनुकूल कहें प्रतिकूल कहें, यह झूठी मन की वृत्ती है।।
प्रतिकूल संयोगों में क्रोधित, होकर संसार बढ़ाया है।
सन्तप्त हृदय प्रभु ! चन्दन सम, शीतलता पाने आया है।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

उज्ज्वल हूँ कुन्द-धवल हूँ प्रभु, पर से न लगा हूँ किंचित् भी।
फिर भी अनुकूल लगें उन पर, करता अभिमान निरन्तर ही।।
जड़ पर झुक-झुक जाता चेतन, की मार्दव की खण्डित काया।
निज शाश्वत अक्षत-निधि पाने, अब दास चरण रज में आया।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

यह पुष्प सुकोमल कितना है, तन में माया कुछ शेष नहीं।
निज अंतर का प्रभु! भेद कहूँ, उसमें ऋजुता का लेश नहीं।।
चिंतन कुछ फिर संभाषण कुछ, वृत्ति कुछ की कुछ होती है।
स्थिरता निज में प्रभु पाऊँ जो, अन्तर का कालुष धोती है।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो काम-बाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अब तक अगणित जड़ द्रव्यों से, प्रभु! भूख न मेरी शान्त हुई।
तृष्णा की खाई खूब भरी, पर रिक्त रही वह रिक्त रही।।
युग-युग से इच्छा सागर में, प्रभु! गोते खाता आया हूँ।
चरणों में व्यंजन अर्पित कर, अनुपम रस पीने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो क्षुधा-रोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मेरे चैतन्य सदन में प्रभु! चिर व्याप्त भयंकर अंधियारा।
श्रुत-दीप बुझा हे करुणानिधि! बीती नहिं कष्टों की कारा।।
अतएव प्रभो! यह ज्ञान-प्रतीक, समर्पित करने आया हूँ।
तेरी अन्तर लौ से निज अन्तर, दीप जलाने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोहांधकारविनाशकाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ कर्म घुमाता है मुझको, यह मिथ्या भ्रान्ति रही मेरी।
मैं रागी द्वेषी हो लेता, जब परिणति होती है जड़ की।।
यों भाव-करम या भाव मरण, सदियों से करता आया हूँ।
निज अनुपम गंध-अनल से प्रभु पर -गंध जलाने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

जग में जिसको निज कहता मैं, वह छोड़ मुझे चल देता है।
मैं आकुल व्याकुल हो लेता, व्याकुल का फल व्याकुलता है।।

मैं शान्त निराकुल चेतन हूँ, है मुक्ति रमा सहचर मेरी।
यह मोह तड़क कर टूट पड़े, प्रभु ! सार्थक फल पूजा तेरी।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोक्ष-फलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षण भर निज-रस को पी चेतन, मिथ्या मल को धो देता है।
काषायिक भाव विनष्ट किये, निज आनन्द अमृत पीता है।।
अनुपम सुख तब विलसित होता, केवल रवि जगमग करता है।
दर्शन बल पूर्ण प्रगट होता, यह ही अर्हन्त अवस्था है।।
यह अर्घ्य समर्पण करके प्रभु! निज गुण का अर्घ्य बनाऊँगा।
और निश्चित तेरे सदृश प्रभु! अर्हन्त अवस्था पाऊँगा।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

भव वन में जी भर घूम चुका, कण-कण को जी भर-भर देखा।
मृग-सम मृग-तृष्णा के पीछे, मुझको न मिली सुख की रेखा।।

(बारह भावना)

झूँठे जग के सपने सारे, झूँठी मन की सब आशायें।
तन-जीवन-यौवन अस्थिर है, क्षण-भंगुर पल में मुरझाये।।
सम्राट महाबल सेनानी, उस क्षण को टाल सकेगा क्या?
अशरण मृत काया में हर्षित, निज जीवन डाल सकेगा क्या?
संसार महा दुःख सागर के, प्रभु दुखमय सुख आभासों में।
मुझको न मिला सुख क्षण भर भी, कंचन-कामिनि प्रासादों में।।
मैं एकाकी एकत्व लिये, एकत्व लिये सब ही आते।
तन धन को साथी समझा था, पर ये भी छोड़ चले जाते।।
मेरे न हुए ये, मैं इनसे, अति भिन्न अखण्ड निराला हूँ।
निज में पर से अन्यत्व लिये, निज समरस पीने वाला हूँ।।

जिसके श्रृंगारों में मेरा, यह मँहगा जीवन घुल जाता।
अत्यन्त अशुचि जड़ काया से, इस चेतन का कैसा नाता।।
दिन-रात शुभाशुभ भावों से, मेरा व्यापार चला करता।
मानस वाणी और काया से, आस्रव का द्वार खुला रहता ।।
शुभ और अशुभ की ज्वाला से, झुलसा है मेरा अन्तस्तल।
शीतल समकित किरणें फूटें, संवर से जागे अन्तर्बल।।
फिर तप की शोधक वह्नि जगे, कर्मों की कड़ियाँ टूट पड़ें।
सर्वांग निजात्म प्रदेशों से अमृत के निर्झर फूट पड़ें।।
हम छोड़ चलें यह लोक तभी, लोकान्त विराजें क्षण में जा।
निज लोक हमारा वासा हो, शोकांत बने फिर हमको क्या।।
जागे मम दुर्लभ बोधि प्रभो! दुर्नय-तम सत्वर टल जावे।
बस ज्ञाता दृष्टा रह जाऊँ, मद-मत्सर-मोह विनश जावे।।
चिर रक्षक धर्म हमारा हो, हो धर्म हमारा चिर साथी।
जग में न हमारा कोई था, हम भी न रहें जग के साथी।।

(देव-स्तवन)

चरणों में आया हूँ प्रभुवर! शीतलता मुझको मिल जावे।
मुर्झाई ज्ञान-लता मेरी, निज अन्तर्बल से खिल जावे।।
सोचा करता हूँ भोगों से, बुझ जावेगी इच्छा ज्वाला।
परिणाम निकलता है लेकिन, मानों पावक में घी डाला।।
तेरे चरणों की पूजा से, इन्द्रिय सुख को ही अभिलाषा।
अब तक न समझ ही पाया प्रभु! सच्चे सुख की भी परिभाषा।।
तुम तो अविकारी हो प्रभुवर! जग में रहते जग से न्यारे।
अतएव झुके तव चरणों में, जग के माणिक मोती सारे।।

(शास्त्र-स्तवन)

स्याद्वादमयी तेरी वाणी, शुभनय के झरने झरते हैं।
उस पावन नौका पर लाखों, प्राणी भव-वारिधि तिरते हैं।।

(गुरु-स्तवन)

हे गुरुवर! शाश्वत सुख दर्शक, यह नग्न स्वरूप तुम्हारा है।
जग की नश्वरता का सच्चा, दिग्दर्शन करने वाला है।।
जब जग विषयों में रच-पच कर, गाफिल निद्रा में सोता हो।
अथवा वह शिव के निष्कंटक, पथ में विषकंटक बोता हो।।
हो अर्द्ध-निशा का सन्नाटा, वन में वनचारी चरते हों।
तब शान्त निराकुल मानस तुम, तत्त्वों का चिंतन करते हो।।
करते तप शैल-नदी-तट पर, तरु-तल वर्षा की झड़ियों में।
समता रस पान किया करते, सुख-दुःख दोनों की घड़ियों में।।
अन्तर्ज्वाला हरती वाणी, मानों झड़ती हों फुलझड़ियाँ।
भव-बन्धन तड़-तड़ टूट पड़े, खिल जावें अन्तर की कलियाँ।।
तुमसा दानी क्या कोई हो, जग को दे दी जग की निधियाँ।
दिन-रात लुटाया करते हो, सम-शम की अविनश्वर मणियाँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हे निर्मल देव! तुम्हें प्रणाम, हे ज्ञान-दीप आगम! प्रणाम।
हे शान्ति त्याग के मूर्तिमान, शिव-पथ-पंथी गुरुवर! प्रणाम।।

(इति पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

अहो! देव-गुरु-धर्म तो सर्वोत्कृष्ट पदार्थ हैं, इनके आधार से धर्म है। इनमें शिथिलता रखने से अन्य धर्म किस प्रकार होगा? इसलिए बहुत कहने से क्या? सर्वथा प्रकार से कुदेव-कुधर्म का त्यागी होना योग्य है।

–मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 192

देव-शास्त्र-गुरु पूजन - 3

शुद्धब्रह्म परमात्मा, शब्दब्रह्म जिनवाणि।
शुद्धातम साधकदशा, नमों जोड़ जुगपाणि।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

आशा की प्यास बुझाने को, अब तक मृगतृष्णा में भटका।
जलसमझ विषय-विष भोगों को, उनकी ममता में था अटका।।
लख सौम्य दृष्टि तेरी प्रभुवर, समता रस पीने आया हूँ।
इस जल ने प्यास बुझाई ना, इस को लौटाने लाया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रोधानल से जब जला हृदय, चन्दन ने कोई न काम किया।
तन को तो शान्त किया इसने, मन को न मगर आराम दिया।।
संसार ताप से तप्त हृदय, संताप मिटाने आया हूँ।
चरणों में चन्दन अर्पण कर, शीतलता पाने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अभिमान किया अब तक जड़ पर, अक्षयनिधि को ना पहचाना।
मैं जड़ का हूँ जड़ मेरा है, यह सोच बना था मस्ताना।।
क्षत में विश्वास किया अब तक, अक्षत को प्रभुवर ना जाना।
अभिमान की आन मिटाने को, अक्षयनिधि तुमको पहिचाना।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

दिन-रात वासना में रहकर, मेरे मन ने प्रभु सुख माना।
पुरुषत्व गमाया पर प्रभुवर, उसके छल को ना पहिचाना।।
माया ने डाला जाल प्रथम, कामुकता ने फिर बाँध लिया।
उसका प्रमाण यह पुष्प-बाण, लाकर के प्रभुवर भेंट किया।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो काम-बाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पर पुद्गल का भक्षण करके, यह भूख मिटानी चाही थी।
इस नागिन से बचने को प्रभु, हर चीज बनाकर खाई थी।।
मिष्टान्न अनेक बनाये थे, दिन-रात भखे न मिटी प्रभुवर।
अब संयम-भाव जगाने को, लाया हूँ ये सब थाली भर।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो क्षुधा-रोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पहिले अज्ञान मिटाने को, दीपक था जग में उजियाला।
उससे न हुआ कुछ तब युग ने, बिजली का बल्ब जला डाला।।
प्रभु भेद-ज्ञान की आँख न थी, क्या कर सकती थी यह ज्वाला।
यह ज्ञान है कि अज्ञान कहो, तुमको भी दीप दिखा डाला।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोहांधकारविनाशकाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ-कर्म कमाऊं सुख होगा, अबतक मैंने यह माना था।
पापकर्म को त्याग पुण्य को, चाह रहा अपनाना था।।
किन्तु समझकर शत्रु कर्म को, आज जलाने आया हूँ।
लेकर दशांग यह धूप, कर्म की धूम उड़ाने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

भोगों को अमृत फल जाना, विषयों में निश-दिन मस्त रहा।
उनके संग्रह में हे प्रभुवर! मैं व्यस्त-त्रस्त-अभ्यस्त रहा।।
शुद्धात्मप्रभा जो अनुपम फल, मैं उसे खोजने आया हूँ।
प्रभु सरस सुवासित ये जड़ फल, मैं तुम्हें चढ़ाने लाया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोक्ष-फलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

बहुमूल्य जगत का वैभव यह, क्या हमको सुखी बना सकता।
अरे पूर्णता पाने में, इसकी क्या है आवश्यकता।।
मैं स्वयं पूर्ण हूँ अपने में, प्रभु है अनर्घ्य मेरी माया।
बहुमूल्य द्रव्य मय अर्घ्य लिये, अर्पण के हेतु चला आया।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

समयसार जिनदेव हैं, जिन-प्रवचन जिनवाणि।
नियमसार निर्ग्रन्थ गुरु, करें कर्म की हानि।।

(वीरछन्द)

हे वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, तुमको ना अब तक पहिचाना।
अतएव पड़ रहे हैं प्रभुवर, चौरासी के चक्कर खाना।।
करुणानिधि तुमको समझ नाथ, भगवान भरोसे पड़ा रहा।
भरपूर सुखी कर दोगे तुम, यह सोचे सन्मुख खड़ा रहा।।
तुम वीतराग हो लीन स्वयं में, कभी न मैंने यह जाना।
तुम हो निरीह जग से कृत-कृत, इतना ना मैंने पहिचाना।।
प्रभु वीतराग की वाणी में, जैसा जो तत्त्व दिखाया है।
जो होना है सो निश्चित है, केवलज्ञानी ने गाया है।।
उस पर तो श्रद्धा ला न सका, परिवर्तन का अभिमान किया।
बनकर पर का कर्ता अब तक, सत् का न प्रभो सन्मान किया।।
भगवान तुम्हारी वाणी में, जैसा जो तत्त्व दिखाया है।
स्याद्वाद-नय, अनेकान्त-मय, समयसार समझाया है।।
उस पर तो ध्यान दिया न प्रभो, विकथा में समय गमाया है।
शुद्धात्म रुचि न हुई मन में, ना मन को उधर लगाया है।।
मैं समझ न पाया था अब तक, जिनवाणी किसको कहते हैं।
प्रभु वीतराग की वाणी में, कैसे क्या तत्त्व निकलते हैं।।
राग धर्ममय धर्म रागमय, अब तक ऐसा जाना था।
शुभ-कर्म कमाते सुख होगा, बस अब तक ऐसा माना था।।

पर आज समझ में आया है, कि वीतरागता धर्म अहा।
राग-भाव में धर्म मानना, जिनमत में मिथ्यात्व कहा।।
वीतरागता की पोषक ही, जिनवाणी कहलाती है।
यह है मुक्ति का मार्ग निरन्तर, हमको जो दिखलाती है।।
उस वाणी के अन्तर्तम को, जिन गुरुओं ने पहिचाना है।
उन गुरुवर्यों के चरणों में, मस्तक बस हमें झुकाना है।।
दिन-रात आत्मा का चिन्तन, मृदुसम्भाषण में वही कथन।
निर्वस्त्र दिगम्बर काया से भी, प्रगट हो रहा अन्तर्मन।।
निर्ग्रन्थ दिगम्बर सद्ज्ञानी, स्वातम में सदा विचरते जो।
ज्ञानीध्यानीसमरससानी, द्वादश विधि तप नित करते जो।।
चलते-फिरते सिद्धों से गुरु, चरणों में शीष झुकाते हैं।
हम चलें आपके कदमों पर, नित यही भावना भातें हैं।।
हो नमस्कार शुद्धातम को, हो नमस्कार जिनवर वाणी।
हो नमस्कार उन गुरुओं को, जिनकी चर्या समरससानी।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

दर्शन दाता देव हैं, आगम सम्यग्ज्ञान।
गुरु चारित्र की खानि हैं, मैं वंदौं धरि ध्यान।।

(इति पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

जिनेन्द्र भगवान के दर्शन-पूजन भी न करे और तू अपने को जैन कहलावे, यह तेरा कैसा जैनपना है? जिस घर में प्रतिदिन भक्तिपूर्वक देव-गुरु-शास्त्र के दर्शन-पूजन होते हैं, मुनिवरों आदि धर्मात्माओं को आदरपूर्वक दान दिया जाता है; वह घर धन्य है, और इसके बिना घर तो श्मशान-तुल्य है।

-पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

देव-शास्त्र-गुरु पूजन - 4

देव-शास्त्र-गुरुवर अहा, मम स्वरूप दर्शाय,
किया परम उपकार, मैं नमन करूं हर्षाय।
जब मैं आऊँ आप ढिंग, निज स्मरण सु आय,
निज प्रभुता मुझ में प्रभो, प्रत्यक्ष देय दिखाय।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम्।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

जब से स्व सन्मुख दृष्टि हुई, अविनाशी ज्ञायक रुप लखा,
शाश्वत अस्तित्व स्वयं का लखकर, जन्म मरण भय दूर हुआ।
श्रीदेव-शास्त्र-गुरुवर सदैव मम, परिणति में आदर्श रहो,
ज्ञायक में ही स्थिरता हो, निज भाव सदा मंगलमय हो।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

निज परम तत्व जब से देखा, अद्भुत शीतलता पाई है,
आकुलता मय संतप्त परिणति, सहज नहीं उपजाई है।।श्री देव.।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

निज अक्षय प्रभु के दर्शन से ही, अक्षय सुख विकसाया है,
क्षत् भावों में एकत्वपने का, सर्व विमोह पलाया है।।श्री देव.।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतम् निर्वपामीति स्वाहा।

निष्काम परम ज्ञायक प्रभुवर, जब से दृष्टि में आया है,
विभु ब्रह्मचर्य रस प्रकट हुआ, दुर्दान्त काम विनशाया है।।श्री देव.।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो काम-बाणविध्वंसनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा।

हुआ निमग्न तृप्ति सागर में, तृष्णा ज्वाला बुझाई है,
क्षुधा तृषादिक दोष विनष्टे, सहज तृप्ति उपजाई है।।श्री देव.।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो क्षुधा-रोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान भानु का उदय हुआ, आलोक सहज ही छाया है,
चिर का मोह अंधेरा स्वामी, क्षणभर भी न दिखाया है।।
श्रीदेव-शास्त्र-गुरुवर सदैव मम, परिणति में आदर्श रहो,
ज्ञायक में ही स्थिरता हो, निज भाव सदा मंगलमय हो।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोहांधकारविनाशकाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।।६।।

द्रव्य भाव नो कर्म शून्य, चैतन्य प्रभु जबसे देखा,
शुद्ध परिणति प्रकट हुई, मिटती पर भावों की रेखा।।श्री देव.।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।।७।।

अहो पूर्ण निज वैभव देखा, नहीं कामना शेष रही,
निर्वांछक हो गया सहज मैं, निज में ही अब मुक्ति दिखी।।श्री देव.।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोक्ष-फलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।।८।।

निज से उत्तम न दिखे कुछ भी, पाई निज अनर्घ माया,
निज में ही अब हुआ समर्पण, ज्ञानानंद प्रकट पाया।।श्री देव.।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।९।।

जयमाला

ज्ञान मात्र परमात्मा, परम प्रसिद्ध कराय।
धन्य आज मैं हो गया, निज स्वरूप को पाय।।

चैतन्य में ही मग्न हो, चैतन्य दरशाते अहो।
निर्दोष श्री सर्वज्ञ प्रभुवर, जगत्साक्षी हो विभो।।
सच्चे प्रणेता धर्म के, शिवमार्ग प्रकटाया प्रभो।
कल्याण वाँछक भविजनों के, आप ही आदर्श हो।।
शिवमार्ग पाया आप से, भवि पा रहे अरु पायेंगे।
स्वाराधना से आप सम ही, हुए हो रहे होयेंगें।।

तब दिव्य ध्वनि में दिव्य आत्मीक, भाव उद्घोषित हुए।
गणधर गुरु आम्नाय में, शुभ शास्त्र तब निर्मित हुए।।
निर्ग्रन्थ गुरू के ग्रन्थ ये, नित्य प्रेरणायें दे रहे।
निज भाव अरु पर भाव का, शुभ भेद ज्ञान जगा रहे।।
इस दुःषम भीषण काल में, जब जिन देव का हो विरह।
तब मात सम उपकार करते, शास्त्र ही आधार हैं।।
जग से उदास रहे स्वयं में, वास जो नित ही करें।
स्वानुभवमय सहज जीवन, मूल गुण परिपूर्ण हैं।।
नाम लेते ही जिन्हों का, हर्ष मय रोमांच हो।
संसार भोगों की व्यथा, मिटती परम आनन्द हो।।
पर भाव सब निस्सार दिखते, मात्र दर्शन ही किये।
निज भाव की महिमा जगे, जिनके सहज उपदेश से।।
उन देव शास्त्र गुरू प्रति, आता सहज बहुमान है।
आराध्य यद्यपि एक ज्ञायक भाव निश्चय ज्ञान है।।
अर्चना के काल में भी भावना ये ही रहे।
धनि घड़ी होगी अहो, जब परिणति निज में रहे।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अहो कहाँ तक मैं कहूँ, महिमा अपरम्पार।
निज महिमा में मगन हो, पाऊँ पद अविकार।।

इत्याशीर्वादः।

सामान्य श्रावक सप्त व्यसनों एवं लोकनिंद्य कार्यों का त्यागी और अष्ट मूलगुणों का धारी होता है।

देव-शास्त्र-गुरु पूजन - 5

वीतराग अरिहंत देव के पावन चरणों में वन्दन।
द्वादशांग श्रुत श्री जिनवाणी जग कल्याणी का अर्चन।।
द्रव्य भाव संयममय मुनिवर श्री गुरु को मैं करूँ नमन।
देव-शास्त्र-गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

आवरण ज्ञान पर मेरे है, हूँ जन्म-मरण से सदा दुखी।
जब तक मिथ्यात्व हृदय में है यह चेतन होगा नहीं सुखी।।
ज्ञानावरणी के नाश हेतु चरणों में जल करता अर्पण।
देव-शास्त्र-गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो ज्ञानावरणकर्म विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

दर्शन पर जब तक छाया है संसार ताप तब तक ही है।
जब तक तत्त्वों का ज्ञान नहीं, मिथ्यात्व पाप तब तक ही है।।
सम्यक्श्रद्धा के चंदन से मिट जायेगा दर्शनावरण।
देव-शास्त्र-गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो दर्शनावरणकर्म विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

निज स्वभाव चैतन्य प्राप्ति हित जागे उर में अन्तरबल।
अव्याबाधित सुख का घाता वेदनीय है कर्म प्रबल।।
अक्षत चरण चढ़ाकर प्रभुवर वेदनीय का करूं दमन।
देव-शास्त्र-गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो वेदनीयकर्म विनाशनाय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहनीय के कारण यह चेतन अनादि से भटक रहा।
निज स्वभाव तज पर द्रव्यों की ममता में ही अटक रहा।।

भेदज्ञान की खड्ग उठाकर मोहनीय का करूँ हनन।
देव-शास्त्र-गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोहनीयकर्म विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

आयु कर्म के बंध उदय में सदा उलझता आया हूँ।
चारों गतियों में डोला हूँ निज को जान न पाया हूँ।।
अजर-अमर अविनाशी पदहित आयु कर्म का करूँ शमन।
देव-शास्त्र-गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो आयुकर्म विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नाम कर्म के कारण मैंने जैसा भी शरीर पाया।
उस शरीर को अपना समझा निज चेतन को विसराया।।
ज्ञानदीप के चिर प्रकाश से, नामकर्म का करूँ दमन।
देव-शास्त्र-गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो नामकर्म विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

उच्च-नीच कुल मिला बहुत पर निज कुल जान नहीं पाया।
शुद्ध-बुद्ध चैतन्य निरंजन सिद्ध स्वरूप न उर भाया।।
गोत्र कर्म का धूम्र उड़ाऊँ निज परिणति में करूँ नमन।
देव-शास्त्र-गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो गोत्रकर्म विनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

दान-लाभ भोगोपभोग बल मिलने में जो बाधक है।
अन्तराय के सर्वनाश का, आत्मज्ञान ही साधक है।।
दर्शन ज्ञान अनन्त वीर्य सुख पाऊँ निज आराधक बन।
देव-शास्त्र-गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अन्तराय कर्म विनाशनाय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

कार्मोदय में मोह रोष से करता है शुभ-अशुभ विभाव।
पर में इष्ट-अनिष्ट कल्पना राग-द्वेष विकारी भाव।।
भाव कर्म करता जाता है जीव भूल निज आत्मस्वभाव।
द्रव्य कर्म बंधते हैं तत्क्षण शाश्वत सुख का करे अभाव।।
चार घातिया चउ अघातिया अष्ट कर्म का करूँ हनन।
देव-शास्त्र-गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अन्तराय कर्म विनाशनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

हे जगबन्धु जिनेश्वर तुमको अब तक कभी नहीं ध्याया।
श्री जिनवाणी बहुत सुनी पर कभी नहीं श्रद्धा लाया।।
परम वीतरागी सन्तों का भी उपदेश न मन भाया।
नरक तिर्यंच देव नरगति में भ्रमण किया बहु दुख पाया।।
पाप पुण्य में लीन हुआ निज शुद्ध भाव को बिसराया।
इसीलिये प्रभुवर अनादि से भव अटवी में भरमाया।।
आज तुम्हारे दर्शन कर प्रभु मैंने निज दर्शन पाया।
परम शुद्ध चैतन्य ज्ञानघन का बहुमान हृदय आया।।
दो आशीष मुझे हे जिनवर जिनवाणी गुरुदेव महान।
मोह महातम शीघ्र नष्ट हो जाये करूँ आत्म कल्याण।।
स्वपर विवेक जगे अन्तर में दो सम्यक् श्रद्धा का दान।
क्षायक हो उपशम हो हे प्रभु क्षयोपशम सद्दर्शन ज्ञान।।
सात तत्व पर श्रद्धा करके देव शास्त्र गुरु को मानूँ।
निज पर भेद जानकर केवल निज में ही प्रतीत ठानूँ।।

पर द्रव्यों से मैं ममत्व तज आत्म द्रव्य को पहिचानूँ।
आत्म द्रव्य को इस शरीर से पृथक भिन्न निर्मल जानूँ।।
समकित रवि की किरणें मेरे उर अन्तर में करें प्रकाश।
सम्यक्ज्ञान प्राप्त कर स्वामी पर भावों का करूँ विनाश।।
सम्यक्चारित को धारण कर निज स्वरूप का करूँ विकास।
रत्नत्रय के अवलम्बन से मिले मुक्ति निर्वाण निवास।।
जय जय जय अरहन्त देव जय, जिनवाणी जग कल्याणी।
जय निर्ग्रन्थ महान सुगुरु जय जय शाश्वत शिवसुखदानी।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घपद प्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देव शास्त्र गुरु के वचन भाव सहित उरधार।
मन वच तन जो पूजते वे होते भव पार।।

इत्याशीर्वादः।

✠✠✠

जिस प्रकार प्रिय पुत्र–पुत्री को न देखे तो माता को चैन नहीं पड़ती अथवा माता को न देखे तो बालक को चैन नहीं पड़ती; उसी प्रकार भगवान के दर्शन बिना धर्मात्मा को चैन नहीं पड़ती। ''अरे रे, आज मुझे परमात्मा के दर्शन नहीं हुए, आज मैंने मेरे भगवान को नहीं देखा, मेरे प्रिय नाथ के दर्शन आज मुझे नहीं मिले।'' –इस प्रकार धर्मी को भगवान के दर्शन के बिना चैन नहीं पड़ती।

–पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

समुच्चय पूजन

(दोहा)

देवशास्त्र गुरु नमन करि, बीस तीर्थंकर ध्याय।
सिद्ध शुद्ध राजत सदा, नमूँ चित्त हुलसाय।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! श्री विद्यमानविंशति तीर्थंकर समूह! श्री अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठि समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(वीर छन्द)

अनादिकाल से जग में स्वामिन, जल से शुचिता को माना।
शुद्ध निजातम सम्यक् रत्नत्रय, निधि को नहीं पहिचाना।।
अब निर्मल रत्नत्रय जल ले, श्री देवशास्त्र गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्य श्री अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठिभ्योः जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव आताप मिटावन की, निज में ही क्षमता समता है।
अनजाने में अब तक मैंने, पर में की झूठी ममता है।।
चन्दन सम शीतलता पाने, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्य श्री अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठिभ्योः संसारताप विनाशनाय चदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षयपद के बिना फिरा, जगत की लख चौरासी योनी में।
अष्ट कर्म के नाश करन को, अक्षत तुम ढिंग लाया मैं।।
अक्षयनिधि निज की पाने श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्य श्री अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठिभ्योः अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प सुगन्धी से आतम ने, शील स्वभाव नशाया है।
मन्मथ बाणों से बिन्ध करके, चहुँगति दुःख उपजाया है।।
स्थिरता निज में पाने को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्य श्री अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठिभ्योः कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

षट्रस मिश्रित भोजन से, ये भूख न मेरी शांत हुयी।
आतमरस अनुपम चखने से, इन्द्रिय मन इच्छा शमन हुयी।।
सर्वथा भूख के मेटन को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्य श्री अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठिभ्योः क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़दीप विनश्वर को अब तक, समझा था मैंने उजियारा।
निजगुण दरशायक ज्ञानदीप से, मिटा मोह का अंधियारा।।
यह दीप समर्पण करके मैं, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्य श्री अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठिभ्योः मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ये धूप अनल में खेने से, कर्मों को नहीं जलायेगी।
निज में निज की शक्ति ज्वाला, जो राग-द्वेष नशायेगी।।
उस शक्ति दहन प्रगटाने को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्य श्री अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठिभ्योः अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पिस्ता बादाम श्रीफल लवंग, चरणन तुम ढिंग मैं ले आया।
आतमरसभीने निज गुण फल, मम मन अब उनमें ललचाया।।

अब मोक्ष महाफल पाने को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्य श्री अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठिभ्यो: मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टम् वसुधा पाने को, कर में ये आठों द्रव्य लिये।
सहज शुद्ध स्वाभाविकता से, निज में निज गुण प्रकट किये।।
ये अर्घ्य समर्पण करके मैं, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्य श्री अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठिभ्यो: अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

देवशास्त्र गुरु बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु भगवान।
अब वरणूँ जय मालिका, करूँ स्तवन गुणगान।।

नसे घातिया कर्म अर्हंत देवा, करें सुर-असुर नर-मुनि नित्य सेवा।
दरशज्ञान सुखबल अनन्त के स्वामी, छियालीस गुणयुत महाईशनामी।।
तेरी दिव्य वाणी सदा भव्य मानी, महामोह विंध्वंसिनी मोक्ष-दानी।
अनेकांतमय द्वादशांगी बखानी, नमो लोक माता श्री जैन वाणी।।
विरागी अचारज उवज्झायसाधु, दरश-ज्ञान भण्डार समता अराधूं।
नगन वेशधारी सु एका विहारी, निजानन्द मंडित मुकति पथ प्रचारी।।
विदेह क्षेत्र में तीर्थंकर बीस राजे, विरहमान वंदूँ सभी पाप भाजे।
नमूँ सिद्ध निर्भय निरामय सुधामी, अनाकुल समाधान सहजाभिरामी।।

(छन्द)

देवशास्त्र गुरु बीस तीर्थंकर, सिद्ध हृदय बिच धरले रे।
पूजन ध्यान गान गुण करके, भवसागर जिय तर ले रे।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्य श्री अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठिभ्यो: अनर्घ्यपद प्राप्तये जयमाला महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। पूर्णार्घ्यं।।

नित्य नियम पूजन

जय जय देव-शास्त्र-गुरु तीनों, मंगलदाता प्रभु वन्दन।
पंच परम परमेष्ठी प्रभु के चरणों को मैं करूँ नमन।।
विद्यमान तीर्थंकर बीस विदेह क्षेत्र के करूँ नमन।
तीन लोक के कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालय को वन्दन।।
परमोत्कृष्ट अनंत गुण सहित सर्व सिद्ध प्रभु को वन्दन।
वृषभादिक श्री वीर जिनेश्वर तीर्थंकर सब करूँ नमन।।
निज भावों की अष्ट द्रव्य ले सविनय नाथ करूँ पूजन।
श्रद्धा पूर्वक भक्तिभाव से करता हूँ जिनपद अर्चन।।

ॐ ह्रीं श्री सर्वजिनचरणाग्रेषु पुष्पांजलि क्षिपामि ।

अनन्तानुबंधी कषाय का नाश करूँ दो यह आशीष।
मोहरूप मिथ्यात्व नष्ट कर दूँ मैं समकित जल से ईश।।
देव शास्त्र गुरु पाँचों परमेष्ठी प्रभु विद्यमान जिन बीस।
कृत्रिम अकृत्रिम जिनगृह वन्दूँ सर्व सिद्ध जिनवर चौबीस।।

ॐ ह्रीं श्री सर्वजिनचरणाग्रेषु जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

अप्रत्याख्यानावरणी कषाय का नाश करूँ तत्काल।
अविरति हर अणुव्रत लूँ समकित चंदन से चमके निज भाल।।देव.।।

ॐ ह्रीं श्री सर्वजिनचरणाग्रेषु संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं कषाय प्रत्याख्यानावरणी हर करूँ प्रमाद अभाव।
पंच महाव्रत ले समकित अक्षत से पाऊँ शुद्ध स्वभाव।।देव.।।

ॐ ह्रीं श्री सर्वजिनचरणाग्रेषु अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु कषाय संज्वलन नाश कर पाऊँ मैं निज में विश्राम।
समकित पुष्प खिले अंतर में मैं अरहंत बनूँ निष्काम।।देव.।।

ॐ ह्रीं श्री सर्वजिनचरणाग्रेषु कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पाप-पुण्य शुभ-अशुभ आस्रव का निरोध करलूँ संवर।
समकित चरु से कर्म निर्जराकर मैं बंध हरूँ सत्वर।।देव.।।

ॐ ह्रीं श्री सर्वजिनचरणाग्रेषु क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

राग-द्वेष सबका अभाव कर नो कषाय का करूँ विनाश।
सम्यक्‌ज्ञान दीप से स्वामी पाऊँ केवलज्ञान प्रकाश।।देव.।।

ॐ ह्रीं श्री सर्वजिनचरणाग्रेषु मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानावरणादिक आठों कर्मों का नाश करूँ भगवन्त।
समकित धूपसुवासित हो उर भवसागर का करदूँ अन्त।।देव.।।

ॐ ह्रीं श्री सर्वजिनचरणाग्रेषु अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

गुणस्थान चौदहवाँ पाकर योग अभाव करूँ स्वामी।
समकित का फल महामोक्ष पद पाऊँ हे अन्तर्यामी।।देव.।।

ॐ ह्रीं श्री सर्वजिनचरणाग्रेषु महामोक्ष फल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

बन्ध हेतु मिथ्यात्व असंयम और प्रमाद कषाय त्रियोग।
समकित अर्घ्य सजा अंतर में पाऊँ पद अनर्घ अवियोग।।देव.।।

ॐ ह्रीं श्री सर्वजिनचरणाग्रेषु अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

जिनवर पद पूजन करूँ नित्य नियम से नाथ।
शुद्धातम से प्रीत कर मैं भी बनूँ सनाथ।।

तीन लोक के सारे प्राणी हैं कषाय आतप से तप्त।
इन्द्रिय विषय रोग से मूर्छित भव सागर दुख से संतप्त।।
इष्ट वियोग अनिष्ट योग से खेद खिन्न जग के प्राणी।
उनको है सम्यक्त्व परम हितकारी औषधि सुखदानी।।

सर्व दुःखों की परमौषधि पीते ही होता रोग विनष्ट।
भवनाशक जिनधर्म शरण पाते ही मिट जाता भवकष्ट।।
है मिथ्यात्व असंयम और कषाय पाप की क्रिया विचित्र।
पाप क्रियाओं से निवृत्त हो तो होता सम्यक्चारित्र।।
घातिकर्म बन्धन करने वाली शुभ अशुभ क्रिया सब पाप।
महा पाप मिथ्यात्व सदा ही देता है भव-भव संताप।।
इसके नष्ट हुए बिन होता दूर असंयम कभी नहीं।
इसके सम दुखकारी जग में और पाप है कहीं नहीं।।
मुनिव्रत धारण कर ग्रैवेयक में अहमिन्द्र हुआ बहुबार।
सम्यक्दर्शन बिन भटका प्रभु पाए जग में दुक्ख अपार।।
क्रोधादिक कषाय अनुरंजित हो भव सागर में डूबा।
साता के चक्कर में पड़कर नहीं असाता से ऊबा।।
पाप-पुण्य दुखमयी जानकर यदि मैं शुद्ध दृष्टि होता।
नष्ट विभाव भाव कर लेता यदि मैं द्रव्य दृष्टि होता।।
मिथ्यातम के गये बिना प्रभु नहीं असंयम जाता है।
जप तप व्रत पूजन अर्चन से जिय सम्यक्त्व न पाता है।।
इसीलिए मैं शरण आपकी आया हूँ जिनदेव महान।
सम्यक्दर्शन मुझे प्राप्त हो, पाऊँ स्वपर भेद विज्ञान।।
नित्य नियम पूजन करके प्रभु निज स्वरूप का ज्ञान करूँ।
पर्यायों से दृष्टि हटा, बन द्रव्य दृष्टि निज ध्यान धरूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सर्वजिनचरणाग्रेषु पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नित्य नियम पूजन करूँ जिनवर पद उर धार।
आत्मज्ञान की शक्ति से हो जाऊँ भव पार।।

इत्याशीर्वादः।

पंच-परमेष्ठी पूजन

अर्हन्त सिद्ध आचार्य नमन, हे उपाध्याय हे साधु नमन।
जय पंच परम परमेष्ठी जय, भव सागर तारणहार नमन।।
मन-वच-काया पूर्वक करता हूँ, शुद्ध हृदय से आह्वानन।
मम हृदय विराजो तिष्ठ तिष्ठ, सन्निकट होहु मेरे भगवन।।
निज आत्मतत्त्व की प्राप्ति हेतु, ले अष्ट द्रव्य करता पूजन।
तुम चरणों की पूजन से प्रभु, निज सिद्ध रूप का हो दर्शन।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिनः ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। इत्याह्वाननम्।

ॐ ह्रीं श्री अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिनः ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। इति स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिनः ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्। इति सन्निधिकरणम्।

मै तो अनादि से रोगी हूँ, उपचार कराने आया हूँ।
तुम सम उज्ज्वलता पाने को, उज्ज्वल जल भरकर लाया हूँ।।
मैं जन्म-ज़रा-मृतु नाश करूँ, ऐसी दो शक्ति हृदय स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

संसार ताप में जल-जल कर, मैंने अगणित दुःख पाये हैं।
निज शान्त स्वभाव नहीं भाया, पर के ही गीत सुहाये हैं।।
शीतल चंदन हैं भेंट तुम्हें, संसार ताप नाशो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

दुःखमय अथाह भवसागर में, मेरी यह नौका भटक रही।
शुभ-अशुभ भाव की भंवरों में, चैतन्य शक्ति निज अटक रही।।

तन्दुल है धवल तुम्हें अर्पित, अक्षयपद प्राप्त करूँ स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं काम व्यथा से घायल हूँ, सुख की न मिली किंचित् छाया।
चरणों में पुष्प चढ़ाता हूँ, तुम को पाकर मन हर्षाया।।
मैं कामभाव विध्वंस करूँ, ऐसा दो शील हृदय स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं क्षुधा रोग से व्याकुल हूँ, चारों गति में भरमाया हूँ।
जग के सारे पदार्थ पाकर भी, तृप्त नहीं हो पाया हूँ।।
नैवेद्य समर्पित करता हूँ, यह क्षुधा रोग मेटो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहान्ध महा-अज्ञानी मैं, निज को पर का कर्ता माना।
मिथ्यातम के कारण मैने, निज आत्मस्वरूप न पहिचाना।।
मैं दीप समर्पण करता हूँ, मोहान्धकार क्षय हो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्मों की ज्वाला धधक रही, संसार बढ़ रहा है प्रतिपल।
संवर से आस्रव को रोकूँ, निर्जरा सुरभि महके पल-पल।।
मैं धूप चढ़ाकर अब आठों, कर्मों का हनन करूँ स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निज आत्मतत्त्व का मनन करूँ, चिंतवन करूँ निज चेतन का।
दो श्रद्धा-ज्ञान-चरित्र श्रेष्ठ, सच्चा पथ मोक्ष निकेतन का।।
उत्तम फल चरण चढ़ाता हूँ, निर्वाण महा फल हो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चन्दन अक्षत पुष्प दीप, नैवेद्य धूप फल लाया हूँ।
अब तक के संचित कर्मों का, मैं पुंज जलाने आया हूँ।।
यह अर्घ्य समर्पित करता हूँ, अविचल अनर्घ्य पद दो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

जय वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, निज ध्यानलीन गुणमय अपार।
अष्टादश दोष रहित जिनवर, अर्हन्त देव को नमस्कार।।
अविकल अविकारी अविनाशी, निजरूप निरंजन निराकार।
जय अजर अमर हे मुक्तिकंत, भगवंत सिद्ध को नमस्कार।।
छत्तीस सुगुण से तुम मण्डित, निश्चय रत्नत्रय हृदय धार।
हे मुक्ति वधू के अनुरागी, आचार्य सुगुरु को नमस्कार।।
एकादश अंग पूर्व चौदह के, पाठी गुण पच्चीस धार।
बाह्यान्तर मुनि मुद्रा महान, श्री उपाध्याय को नमस्कार।।
व्रत समिति गुप्ति चारित्र धर्म, वैराग्य भावना हृदय धार।
हे द्रव्य-भाव संयममय मुनिवर, सर्व साधु को नमस्कार।।
बहु पुण्य संयोग मिला नरतन, जिनश्रुत जिनदेव चरणदर्शन।
हो सम्यग्दर्शन प्राप्त मुझे, तो सफल बने मानव जीवन।।

निज-पर का भेद जानकर मैं, निजको ही निज में लीन करूँ।
अब भेद ज्ञान के द्वारा मैं, निज आत्म स्वयं स्वाधीन करूँ।।
निज में रत्नत्रय धारण कर, निज परिणति को ही पहचानूँ।
पर-परिणति से हो विमुख सदा, निज ज्ञानतत्व को ही जानूँ।।
जब ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता विकल्प तज, शुक्लध्यान मैं ध्याऊँगा।
तब चार घातिया क्षय करके, अर्हन्त महापद पाऊँगा।।
है निश्चित सिद्ध स्वपद मेरा, हे प्रभु कब इसको पाऊँगा।
सम्यक् पूजा फल पाने को, अब निजस्वभाव में आऊँगा।।
अपने स्वरूप की प्राप्ति हेतु, हे प्रभु मैंने की है पूजन।
तबतक चरणों में ध्यान रहे, जब तक न प्राप्त हो मुक्ति सदन।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये जयमाला महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हे मंगल रूप अमंगल हर, मंगलमय मंगल गान करूँ।
मंगल में प्रथम श्रेष्ठ मंगल, नवकार मन्त्र का ध्यान करूँ।।

इत्याशीर्वादः।

भाई! ऐसा अमूल्य मनुष्य जीवन प्राप्त कर यों ही चला जावे, उसमें तू सर्वज्ञ देव की पहचान न करे, सम्यग्दर्शन का सेवन न करे, शास्त्र स्वाध्याय न करे, धर्मात्मा की सेवा न करे और कषायों की मंदता न करे तो इस जीवन में तूने क्या किया?

-पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

श्रावक धर्म प्रकाश

नवदेव पूजन

श्री अरहंत सिद्ध, आचार्योपाध्याय, मुनि साधु महान।
जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्मदेव नव जान।।
ये नवदेव परम हितकारी रत्नत्रय के दाता हैं।
विघ्न विनाशक संकटहर्ता तीन लोक विख्याता हैं।।
जल फलादि वसु द्रव्य सजाकर हे प्रभु नित्य करूँ पूजन।
मंगलोत्तम शरण प्राप्त कर मैं पाऊँ सम्यक्‌दर्शन।।
आत्मतत्व का अवलम्बन ले पूर्ण अतीन्द्रिय सुख पाऊँ।
नवदेवों की पूजन करके फिर न लौट भव में आऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेव अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेव अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेव अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

परम भाव जल की धारा से जन्म मरण का नाश करूँ।
मिथ्यातम का गर्व चूर कर रवि सम्यक्त्व प्रकाश करूँ।।
पंच परम परमेष्ठी, जिनश्रुत, जिनगृह, जिनप्रतिमा, जिनधर्म।
नवदेवों की पूजन करके मैं बन जाऊँ प्रभु निष्कर्म।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंतसिद्ध-आचार्योपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

परम भाव चंदन के बल से भव आतप का नाश करूँ।
अन्धकार अज्ञान मिटाऊँ सम्यक्ज्ञान प्रकाश करूँ।।पंच.।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंतसिद्ध-आचार्योपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

परम भाव अक्षत के द्वारा अक्षय पद को प्राप्त करूँ।
मोह-क्षोभ से रहित बनूँ मैं सम्यक्चारित प्राप्त करूँ।।पंच.।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंतसिद्ध-आचार्योपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

परम भाव पुष्पों से दुर्धर काम-भाव को नाश करूँ।
तप-संयम की महाशक्ति से निर्मल आत्म प्रकाश करूँ।।पंच.।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंतसिद्ध-आचार्योपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

परम भाव नैवेद्य प्राप्तकर क्षुधा व्याधि का ह्रास करूँ।
पंचाचार आचरण करके परम तृप्त शिववास करूँ।।पंच.।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंतसिद्ध-आचार्योपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परम भाव मय दिव्य ज्योति से पूर्ण मोह का नाश करूँ।
पाप-पुण्य आस्रव विनाशकर केवलज्ञान प्रकाश करूँ।।पंच.।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंतसिद्ध-आचार्योपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

परम भाव मय शुक्लध्यान से अष्टकर्म का नाश करूँ।
नित्य-निरंजन शिवपद पाऊँ सिद्धस्वरूप विकास करूँ।।पंच.।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंतसिद्ध-आचार्योपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

परम भाव संपत्ति प्राप्त कर मोक्ष भवन में वास करूँ।
रत्नत्रय की मुक्ति शिला पर सादि अनंत निवास करूँ।।पंच.।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंतसिद्ध-आचार्योपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो महामोक्षफलं प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

परम भाव के अर्घ्य चढ़ाऊँ उर अनर्घ पद व्याप्त करूँ।
भेदज्ञान रवि हृदय जगाकर शाश्वत जीवन प्राप्त करूँ।।पंच.।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंतसिद्ध-आचार्योपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो अनर्घपद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

नवदेवों को नमन कर करूँ आत्म कल्याण।
शाश्वत सुख की प्राप्ति हित करूँ भेद विज्ञान।।
जय जय पंच परम परमेष्ठी जिनवाणी जिन धर्म महान।
जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, नवदेवों को नित वन्दूं धर ध्यान।।
श्री अरहंत देव मंगलमय मोक्ष मार्ग के नेता हैं।
सकल ज्ञेय के ज्ञाता दृष्टा कर्म शिखर के भेत्ता हैं।।
हैं लोकाग्र शिखर पर सुस्थित सिद्धशिला पर सिद्धअनंत।
अष्टकर्म रज से विहीन प्रभु सकल सिद्धदाता भगवंत।।
हैं छत्तीस गुणों से शोभित श्री आचार्य देव भगवान।
चार संघ के नायक ऋषिवर करते सबको शान्ति प्रदान।।
ग्यारह अंग पूर्व चौदह के ज्ञाता उपाध्याय गुणवन्त।
जिन आगम का पठन और पाठन करते हैं महिमावन्त।।
अट्ठाईस मूलगूण पालक ऋषिमुनि साधु परम गुणवान।
मोक्षमार्ग के पथिक श्रमण करते जीवों को करुणादान।।
स्याद्वादमय द्वादशांग जिनवाणी है जग कल्याणी।
जो भी शरण प्राप्त करता है हो जाता केवलज्ञानी।।
जिनमंदिर जिन समवशरणसम इसकी महिमा अपरम्पार।
गंध कुटी में नाथ विराजे हैं अरहंत देव साकार।।
जिन प्रतिमा अरहंतों की नासाग्र दृष्टि निज ध्यानमयी।
जिन दर्शन से निज दर्शन हो जाता तत्क्षण ज्ञानमयी।।
श्री जिनधर्म महा मंगलमय जीव मात्र को सुख दाता।
इसकी छाया में जो आता हो जाता दृष्टा ज्ञाता।।

ये नवदेव परम उपकारी वीतरागता के सागर।
सम्यक्दर्शन ज्ञान चरित से भर देते सबकी गागर।।
मुझको भी रत्नत्रयनिधि दो मैं कर्मों का भार हरूँ।
क्षीणमोह जितराग जितेन्द्रिय हो भव सागर पार करूँ।।
सदा-सदा नवदेव शरण पा मैं अपना कल्याण करूँ।
जब तक सिद्ध स्वपद ना पाऊँ हे प्रभु पूजन ध्यान करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंतसिद्ध-आचार्योपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो अनर्घपद प्राप्ताय पर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मंगलोत्तम शरण हैं नव देवता महान।
भाव पूर्ण जिन भक्ति से होता दुख अवसान।।

इत्याशीर्वादः।

पूजन एक ऐसा मधुर एवं सहज धार्मिक कर्म है जिसमें सम्पूर्ण तत्त्वज्ञान भक्ति के संगीत में घुलकर बड़ा मधुर आस्वाद देता है। जहाँ तत्वज्ञान में मस्तिष्क की प्रधानता होती है वहीं पूजा में हृदय मुख्य होता है, इसलिए भक्ति का यह अंग यद्यपि तत्वज्ञान के बिना कार्यकारी नहीं होता फिर भी तत्वज्ञान का चिंतन भक्ति की कोमल भावधारा का उल्लंघन करके उदित नहीं होता।

–बाबू युगलजी

चैतन्य विहार 65–66

वीतराग पूजन

शुद्धातम में मगन हो, परमातम पद पाय।
भविजन को शुद्धातमा, उपादेय दरशाय।।
जाय बसे शिव लोक में, अहो अहो जिनराज।
वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, आयो पूजन काज।।

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देवाय ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्री वीतराग देवाय ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्री वीतराग देवाय ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

ज्ञानानुभूति ही परमामृत है, ज्ञानमयी मेरी काया,
है परम पारिणामिक निष्क्रिय, जिसमें कुछ स्वाँग न दिखलाया।
मैं देख स्वयं के वैभव को, प्रभुवर अति ही हर्षाया हूँ,
अपनी स्वाभाविक निर्मलता, अपने अंतर में पाया हूँ।
थिर रह न सका उपयोग प्रभो, बहुमान आपका आया है,
समता मय निर्मल जल ही प्रभु, पूजन के योग्य सुहाया है।

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देवाय जन्म-जरा-मृत्युरोग विनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

है सहज अकर्त्ता ज्ञायक प्रभु, ध्रुव रूप सदा ही रहता है,
सागर की लहरों सम जिसमें, परिणमन सु बाहर होता है।
हे शान्ति सिन्धु! अब बोधमयी, अद्भुत तृप्ति उपजाई है,
अब चाह दाह प्रभु शमित हुई, शीतलता निज में पाई है।
विभु! अशरण जग में शरण मिले, बहुमान आपका आया है,
अमल भाव मय चन्दन ही, पूजन के योग्य सुहाया है।

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देवाय संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अब भाव हुआ अक्षय पद का, क्षत्का अभिमान पलाया है,
प्रभु निष्कलंक निर्मल ज्ञायक, अविचल अखण्ड दिखलाया है।

जहाँ क्षायिक भाव भी भिन्न दिखे, फिर अन्य भाव की कौन कथा,
अक्षुण्ण आनन्द निज में विलसे, निःशेष हुई अब सर्वव्यथा।
अक्षय स्वरूप दातार नाथ, बहुमान आपका आया है,
निरपेक्ष भावमय अक्षत ही, पूजन के योग्य सुहाया है।

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देवाय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतम् निर्वपामीति स्वाहा।

परम ब्रह्म की अनुभूतिमय, ब्रह्मचर्य रस प्रगटाया,
भोगों की अब मिटी वासना, दुर्विकल्प भी नहीं आया।
भोगों के तो नाम मात्र से, भी कम्पित मन हो जाता,
मानो आयुध से लगते हैं, तब त्राण स्वयं मे ही पाता।
हे काम जयी निज में रम जाऊँ, यही भावना मन आनी,
श्रद्धा सुमन समर्पित जिनवर, काम बुद्धि सब विसरानी।

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देवाय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा।

अतीन्द्रिय निज आतम रस पीकर, तृप्त हुए त्रिभुवन स्वामी,
निज में ही सम्यक् तृप्ति की विधि, तुम से सीखी जगनामी।
अब कर्त्ता भोक्ता बुद्धि छोड़, ज्ञाता रह निज-रस पान करूँ,
इन्द्रिय विषयों की चाह मिटी, सर्वांग सहज आनंदित हूँ।
निज में ही ज्ञानानन्द मिला, बहुमान आपका आया है,
परम तृप्तिमय अकृत बोध ही, पूजन योग्य सुहाया है।

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देवाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहान्धकार में भटका था, सम्यक् प्रकाश निज में पाया,
प्रतिभासित होता हुआ स्वज्ञायक, सहज स्वानुभव में आया।
अतीन्द्रिय सहज, निरालम्बी प्रभु, सम्यग्ज्ञान ज्योति प्रगटी,
चिर की मोह अंधेरी जिनवर, तुम समीप क्षण में विघटी।

अस्थिरता जन्य दोष भगवन, बहुमान आपका आया है,
अविनाशी केवलज्ञान जगे, प्रभु ज्ञान प्रदीप जलाया है।

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देवाय मोहान्धकार विनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा।

निष्क्रिय निष्कर्म परम ज्ञायक, ध्रुव ध्येय स्वरूप अहो पाया,
जब ध्यान अग्नि प्रज्वलित हुई, विघटी पर परिणति की माया।
जागी प्रतीति अब स्वयं सिद्ध, भव भ्रमण भ्राँति सब दूर हुई,
असंयुक्त निर्बन्ध सुनिर्मल, धर्म परिणति प्रकट हुई।
अस्थिरता जन्म विकार मिटे, मैं शरण आपकी हूँ आया,
बहुमान भाव मय धूप स्वाहा, निष्कर्म तत्व मैंने पाया।

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देवाय अष्टकर्म विनाशनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा।

है परिपूर्ण सहज ही आतम, कमी नहीं कुछ दिखलावे।
गुण अनन्त सम्पन्न प्रभु, जिसकी दृष्टि में आ आवे।।
होय अयाची लक्ष्मीपति, फिर वाँछा ही नहीं उपजावे।
स्वात्मोपलब्धिमय मुक्ति दशा का सत्पुरुषार्थ सु प्रगटावे।।
अफल दृष्टि प्रगटी प्रभुवर, बहुमान आपका आया है।
निष्काम भाव मय पूजन का, विभू परम भाव फल पाया है।।

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देवाय मोक्षफल प्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

निज अविचल अनर्घ पद पाया, सहज प्रमोद हुआ भारी।
ले भावार्घ अर्चना करता, निज अनर्घ वैभव धारी।।
चक्री इन्द्रादिक के वैभव भी, नहीं आकर्षित कर सकते।
अखिल विश्व में रम्य भोग भी, मोह नहीं उपजा सकते।।
निजानन्द में तृप्तिमय ही, होवे काल अनन्त प्रभो।
ध्रुव अनुपम शिव पदवी प्रगटे, निश्चय ही भगवन्त अहो।।

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देवाय अनर्घपद प्राप्तये अर्घम् निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

प्रभो आपने एक ज्ञायक बताया।
तिहूँ लोक में नाथ, अनुपम जताया।।टेक।।
यही रूप मेरा, मुझे आज भाया।
महानन्द मैंने, स्वयं में ही पाया।।
भव-भव भटकते, बहुत काल बीता।
रहा आज तक मोह मदिरा ही पीता।।
फिर ढूंढ़ता सुख विषयों के माँहीं।
मिली किन्तु उनमें असह्य वेदना ही।।
महा भाग्य से आपको, देव पाया।
तिहूं लोक में नाथ, अनुपम जताया।।
कहाँ तक कहूँ नाथ, महिमा तुम्हारी।
निधि आत्मा की सु, दिखलाई भारी।।
निधि प्राप्ति की प्रभु, सहज विधि बताई।
अनादि की पामरता, बुद्धि पलाई।।
परम भाव मुझको, सहज ही दिखाया।
तिहूं लोक में नाथ, अनुपम जताया।।
विस्मय से प्रभुवर, था तुमको निरखता।
महामूढ़ दुखिया, स्वयं को समझता।।
स्वयं ही प्रभु हूँ, दिखे आज मुझको।
महाहर्ष मानो, मिला मोक्ष ही हो।।
मैं चिन्मात्र ज्ञायक हूँ, अनुभव में आया।
तिहूं लोक में नाथ, अनुपम जताया।।

अस्थिरता जन्य प्रभो, दोष भारी।
खटकती है रागादि, परिणति विकारी।।
विश्वास है शीघ्र, ये भी मिटेगी।
स्वभाव के सन्मुख, यह कैसे टिकेगी।।
नित्य निरन्जन का, अवलम्ब पाया।
तिहूं लोक में नाथ, अनुपम जताया।।
दृष्टि हुई आप सम, ही प्रभो जब।
परिणति भी होगी, तुम्हारे ही सम तब।।
नहीं मुझको चिन्ता, मैं निर्दोष ज्ञायक।
नहीं पर से सम्बन्ध, मैं ही ज्ञेय ज्ञायक।।
हुआ दुर्विकल्पों का, जिनवर सफाया।
तिहूं लोक में नाथ, अनुपम जताया।।
सर्वांग सुखमय, स्वयं सिद्ध निर्मल।
शक्ति अनन्तों मयी, एक अविचल।।
चिन्मूर्ति चिन्मूर्ति, भगवान आत्मा।
तिहूं जग में नमनीय, शाश्वत् चिदात्मा।।
हो अद्वैत वन्दन, प्रभो हर्ष छाया।
तिहूं लोक में नाथ, अनुपम जताया।।

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देवाय अनर्घपद प्राप्तये जयमालार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

आपहि ज्ञायक देव हैं, आप आपका ज्ञेय।
अखिल विश्व में आप ही, ध्येय ज्ञेय श्रद्धेय।।

इत्याशीर्वादः।

विद्यमान बीस तीर्थंकर पूजन - 1

(दोहा)

दीप अढ़ाई मेरु पन सब तीर्थंकर बीस।
तिन सबकी पूजा करूँ मन वच तन धरि सीस।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकराः ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकराः ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकराः ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

इन्द्र-फणीन्द्र-नरेन्द्र-वंद्य पद निर्मल धारी।
शोभनीक संसार सार गुण हैं अविकारी।।
क्षीरोदधि सम नीर सों(हो) पूजों तृषा निवार।
सीमन्धर जिन आदि दे बीस विदेह मँझार।।
श्री जिनराज हो भव-तारण-तरण जिहाज।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर-युगमन्धर-बाहु-सुबाहु-संजातक-स्वयंप्रभ-ऋषभानन - अनन्तवीर्य्य-सूरप्रभ-विशालकीर्ति-वज्रधर-चन्द्रानन-भद्रबाहु-भुजंगम-ईश्वर-नेमीप्रभ-वीरषेण-महाभद्र-देवयशोऽजितवीर्य्येति विद्यमान विंशति-तीर्थंकरेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

तीन लोक के जीव पाप-आताप सताये।
तिनको साता दाता शीतल वचन सुहाये।।
बावन चंदन सों जजूँ (हो) भ्रमन-तपन-निरवार।। सीमं.।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशति-तीर्थंकरेभ्यो भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

यह संसार अपार महासागर जिन स्वामी।
तातैं तारे बड़ी भक्ति - नौका जगनामी।।
तंदुल अमल सुगंध सों(हो) पूजों तुम गुणसार।। सीमं.।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशति-तीर्थंकरेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

भविक-सरोज-विकाश निंद्य -तमहर रवि से हो।
जति-श्रावक आचार कथन को तुम्हीं बड़े हो।।

फूल सुवास अनेक सों(हो) पूजों मदन-प्रहार।
सीमन्धर जिन आदि दे बीस विदेह मँझार।।
श्री जिनराज हो भव-तारण-तरण जिहाज।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशति-तीर्थंकरेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

काम-नाग विषधाम नाश को गरुड़ कहे हो।
क्षुधा महा दव-ज्वाल तास को मेघ लहे हो।।
नेवज बहुघृत मिष्ट सों(हो) पूजों भूख विडार।। सीमं.।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशति-तीर्थंकरेभ्यो क्षुधा-रोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उद्यम होन न देत सर्व जग माँही भर्यो है।
मोह-महातम घोर नाश परकाश कर्यो है।।
पूजों दीप प्रकाश सों(हो) ज्ञान-ज्योति करतार।। सीमं.।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशति-तीर्थंकरेभ्यो मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्म आठ सब काठ भार विस्तार निहारा।
ध्यान अगनि कर प्रकट सर्व कीनों निरवारा।।
धूप अनूपम खेवतें (हो) दुःख जलैं निरधार।। सीमं.।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशति-तीर्थंकरेभ्योऽष्टकर्म -विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

मिथ्यावादी दुष्ट लोभऽहंकार भरे हैं।
सबको छिन में जीत जैन के मेरू खड़े हैं।।
फल अति उत्तम सों जजों(हो)वांछित फल-दातार।। सीमं.।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशति-तीर्थंकरेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल-फल आठों दर्व अरघ कर प्रीति धरि है।
गणधर इन्द्रनि हू तैं थुति पूरि न करि है।।
'द्यानत' सेवक जानके (हो) जग तैं लेहु निकार।। सीमं.।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशति-तीर्थंकरेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(सोरठा)

ज्ञान-सुधाकर चन्द, भविक-खेत हित मेघ हो।
भ्रम-तम भान अमन्द, तीर्थंकर बीसों नमों।।

(चौपाई)

सीमन्धर सीमन्धर स्वामी, जुगमन्धर जुगमन्धर नामी।
बाहु बाहु जिन जग-जन तारे, करम सुबाहु बाहुबल दारे।।
जात सुजातं केवलज्ञानं, स्वयं प्रभु-प्रभु स्वयं प्रधानं।
ऋषभानन ऋषि भानन दोषं, अनंतवीरज वीरज कोषं।।
सौरीप्रभ सौरीगुणमालं, सुगुण विशाल विशाल दयालं।
वज्रधार भवगिरि वज्जर हैं, चन्द्रानन चन्द्रानन वर हैं।।
भद्रबाहु भद्रनि के करता, श्रीभुजंग भुजंगम हरता।
ईश्वर सबके ईश्वर छाजे, नेमिप्रभु जस नेमि विराजें।।
वीरसेन वीरं जग जानैं, महाभद्र महाभद्र बखानै।
नमों जसोधर जसधरकारी, नमों अजीत वीरज बलधारी।।
धनुष पाँचसैं काय विराजैं, आयु कोडि पूरब सब छाजैं।
समवसरण शोभित जिनराजा, भवजल-तारन-तरन जिहाजा।।
सम्यक् रत्नत्रय-निधि दानी, लोकालोक-प्रकाशक ज्ञानी।
शत-इन्द्रनि करि वंदित सोहैं, सुन-नर-पशु सबके मन मोंहैं।।

(सोरठा)

तुमको पूजें वन्दना, करैं धन्य नर सोय।
द्यानत सरधा मन धरैं, सो भी धर्मी होय।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशति-तीर्थंकरेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विद्यमान बीस तीर्थंकर पूजन - 2

सीमंधर, युगमंधर, बाहु, सुबाहु, सुजात स्वयंप्रभु देव।
ऋषभानन, अनन्तवीर्य, सौरीप्रभु विशाल कीर्ति सुदेव।।
श्री वज्रधर, चन्द्रानन प्रभु चन्द्रबाहु, भुजंगम ईश।
जयति ईश्वर जयतिनेम प्रभु वीरसेन महाभद्र महीश।।
पूज्य देवयश अजितवीर्य जिन बीस जिनेश्वर परम महान।
विचरण करते हैं विदेह में शाश्वत् तीर्थंकर भगवान।।
नहीं शक्ति जाने की स्वामी यहीं वन्दना करूँ प्रभो।
स्तुति पूजन अर्चन करके शुद्ध भाव उर भरूँ प्रभो।।

ॐ ह्रीं श्री विदेहक्षेत्रस्थित विद्यमान बीसतीर्थंकर जिन समूह अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री विदेहक्षेत्रस्थित विद्यमान बीसतीर्थंकर जिन समूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री विदेहक्षेत्रस्थित विद्यमान बीसतीर्थंकर जिन समूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

निर्मल सरिता का प्रासुक जल लेकर चरणों में आऊँ।
जन्म जरादिक क्षय करने को श्री जिनवर के गुण गाऊँ।।
सीमंधर, युगमंधर, आदिक, अजितवीर्य को नित ध्याऊँ।
विद्यमान बीसों तीर्थंकर की पूजन कर हर्षाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमान बीसतीर्थंकराय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शीतल चंदन दाह निकन्दन लेकर चरणों में आऊँ।
भव सन्ताप दाह हरने को श्री ज़िनवर के गुण गाऊँ।।सीमं.।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमान बीसतीर्थंकराय भवताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वच्छ अखण्डित उज्ज्वल तंदुल लेकर चरणों में आऊँ।
अनुपम अक्षय पद पाने को श्री जिनवर के गुण गाऊँ।।सीमं.।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमान बीसतीर्थंकराय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ्र शील के पुष्प मनोहर लेकर चरणों में आऊँ।
काम शत्रु का दर्प नशाने श्री जिनवर के गुण गाऊँ।।
सीमंधर, युगमंधर आदिक, अजितवीर्य को नित ध्याऊँ।
विद्यमान बीसों तीर्थंकर की पूजन कर हर्षाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमान बीसतीर्थंकराय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

परम शुद्ध नैवेद्य भाव उर लेकर चरणों में आऊँ।
क्षुधा रोग का मूल मिटाने श्री जिनवर के गुण गाऊँ।।सीमं.।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमान बीसतीर्थंकराय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जगमग अंतर दीप प्रज्ज्वलित लेकर चरणों में आऊँ।
मोह तिमिर अज्ञान हटाने श्री जिनवर के गुण गाऊँ।।सीमं.।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमान बीसतीर्थंकराय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्म प्रकृतियों का ईंधन अब लेकर चरणों में आऊँ।
ध्यान अग्नि में इसे जलाने श्री जिनवर के गुण गाऊँ।।सीमं.।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमान बीसतीर्थंकराय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्मल सरस विशुद्ध भाव फल लेकर चरणों में आऊँ।
परम मोक्षफल शिव सुख पाने श्रीजिनवर के गुण गाऊँ।।सीमं.।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमान बीसतीर्थंकराय मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ पुंज वैराग्य भाव का लेकर चरणों में आऊँ।
निज अनर्घ पदवी पाने को श्री जिनवर के गुण गाऊँ।।सीमं.।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमान बीसतीर्थंकराय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

मध्य लोक में असंख्यात सागर अरु असंख्यात है द्वीप।
जम्बूद्वीप धातकीखण्ड अरु पुष्करार्ध यह ढ़ाई द्वीप।।
ढ़ाई द्वीप में पंचमेरु हैं तीनों लोकों में अति ख्यात्।
मेरु सुदर्शन, विजय, अचल, मंदर विद्युन्माली विख्यात।।

एक एक में है बत्तीस विदेह क्षेत्र अतिशय सुन्दर।
एक शतक अरु साठ क्षेत्र हैं, चौथा काल जहाँ सुखकर।।
पाँच भरत अरु पंच ऐरावत कर्म भूमियाँ दस गिनकर।
एक साथ हो सकते हैं तीर्थंकर एक शतक सत्तर।।
किन्तु न्यूनतम बीस तीर्थंकर विदेह में होते हैं।
सदा शाश्वत विद्यमान सर्वज्ञ जिनेश्वर होते हैं।।
एक मेरु के चार विदेहों में रहते तीर्थंकर चार।
बीस विदेहों में तीर्थंकर बीस सदा ही मंगलकार।।
कोटि पूर्व की आयु पूर्ण कर होते पूर्ण सिद्ध भगवान।
तभी दूसरे इसी नाम के होते हैं अरहन्त महान।।
श्री जिनदेव महा मंगलमय वीतराग सर्वज्ञ प्रधान।
भक्ति भाव से पूजन करके मैं चाहूँ अपना कल्याण।।
विरहमान श्री बीस जिनेश्वर भाव सहित गुणगान करूँ।
जो विदेह में विद्यमान हैं उनका जय जय गान करूँ।।
सीमन्धर को वन्दन करके मैं अनादि मिथ्यात्व हरूँ।
जुगमन्दर की पूजन करके समकित अंगीकार करूँ।।
श्री बाहु का सुमिरण करके अविरत हर व्रत ग्रहण करूँ।
श्री सुबाहु पद अर्चन करके तेरह विधि चारित्र धरूँ।।
प्रभु सुजात के चरण पूजकर पंच प्रमाद अभाव करूँ।
देव स्वयंप्रभ को प्रणाम कर दुखमय सर्व विभाव हरूँ।।
ऋषभानन की स्तुति करके योग कषाय निवृत्ति करूँ।
पूज्य अनन्तवीर्य पद वन्दूँ पथ निर्ग्रन्थ प्रवृत्ति करूँ।।

देव सौरप्रभ चरणाम्बुज दर्शन कर पाँचों बन्ध हरूँ।
परम विशालकीर्ति की जय हो निज को पूर्ण अबन्ध करूँ।।
श्री वज्रधर सर्व दोष हर सब संकल्प विकल्प हरूँ।
चन्द्रानन के चरण चित्त धर निर्विकल्पता प्राप्त करूँ।।
चन्द्रबाहु को नमस्कार कर पाप-पुण्य सब नाश करूँ।
श्री भुजंग पद मस्तक धर कर निज चिद्रुप प्रकाश करूँ।।
ईश्वर प्रभु की महिमा गाऊँ आत्म द्रव्य का भान करूँ।
श्री नेमिप्रभु के चरणों में चिदानन्द का ध्यान धरूँ।।
वीरसेन के पद कमलों में उर चंचलता दूर करूँ।
महाभद्र की भव्य सुछवि लख कर्मघातिया चूर करूँ।।
श्री देवयश सुयश गान कर शुद्ध भावना हृदय धरूँ।
अजितवीर्य का ध्यान लगाकर गुण अनन्त निज प्रगट करूँ।।
बीस जिनेश्वर समवसरण लख मोहमयी संसार हरूँ।
निज स्वभाव साधन के द्वारा शीघ्र भवार्णव पार करूँ।।
स्वगुण अनन्त चतुष्टयधारी वीतराग को नमन करूँ।
सकल सिद्ध मंगल के दाता पूर्ण अर्घ के सुमन धरूँ।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमान बीसतीर्थंकरेभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो विदेह के बीस जिनेश्वर की महिमा उर में धरते।
भाव सहित प्रभु पूजन करते मोक्ष लक्ष्मी को वरते।।

इत्याशीर्वादः।

सिद्ध पूजन - 1

चिदानन्द स्वातमरसी, सत् शिव सुन्दर जान।
ज्ञाता-दृष्टा लोक के, परम सिद्ध भगवान।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपते ! सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपते ! सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपते ! सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

ज्यों-ज्यों प्रभुवर जल पान किया, त्यों-त्यों तृष्णा की आग जली।
थी आश की प्यास बुझेगी अब, पर यह सब मृगतृष्णा निकली।।
आशा-तृष्णा से जला हृदय, जल लेकर चरणों में आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

तन का उपचार किया अब तक, उस पर चंदन का लेप किया।
मल-मल कर खूब नहा करके, तन के मल का विक्षेप किया।।
अब आतम के उपचार हेतु, तुमको चन्दन सम है पाया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारताप विनाशनाय चदनं निर्वपामीति स्वाहा।

सचमुच तुम अक्षत हो प्रभुवर, तुम ही अखण्ड अविनाशी हो।
तुम निराकार अविचल निर्मल, स्वाधीन सफल संन्यासी हो।।
ले शालीकणों का अवलम्बन, अक्षयपद ! तुमको अपनाया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

जो शत्रु जगत का प्रबल काम, तुमने प्रभुवर उसको जीता।
हो हार जगत के वैरी की, क्यों नहिं आनन्द बढ़े सबका।।

प्रमुदित मन विकसित सुमन नाथ, मनसिज को ठुकराने आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाण विध्वंशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं समझ रहा था अब तक प्रभु, भोजन से जीवन चलता है।
भोजन बिन नरकों में जीवन, भरपेट मनुज क्यों मरता है।।
तुम भोजन बिन अक्षय सुखमय, यह समझ त्यागने हूँ आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आलोक ज्ञान का कारण है, इन्द्रिय से ज्ञान उपजता है।
यह मान रहा था पर क्यों कर, जड़ चेतन-सर्जन करता है।।
मेरा स्वभाव है ज्ञानमयी, यह भेदज्ञान पा हरषाया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

मेरा स्वभाव चेतनमय है, इसमें जड़ की कुछ गंध नहीं।
मैं हूँ अखण्ड चिद्पिण्ड चण्ड, पर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं।।
यह धूप नहीं, जड़-कर्मों की रज आज उड़ाने मैं आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्ट कर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ कर्मों का फल विषय-भोग, भोगों में मानस रमा रहा।
नित नई लालसायें जागीं, तन्मय हो उनमें समा रहा।।
रागादि विभाव किये जितने, आकुलता उनका फल पाया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफल प्राप्ताये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल पिया और चन्दन चरचा, मालायें सुरभित सुमनों की।
पहनीं तन्दुल सेये व्यंजन, दीपावलियाँ की रत्नों की।।
सुरभी धूपायन की फैली, शुभ-कर्मों का सब फल पाया।
आकुलता फिर भी बनी रही, क्या कारण जान नहीं पाया।।
जब दृष्टि पड़ी प्रभुजी तुम पर, मुझको स्वभाव का भान हुआ।
सुख नहीं विषय-भोगों में है, तुमको लख यह सद्ज्ञान हुआ।।
जल से फल तक का वैभव यह, मैं आज त्यागने हूँ आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

आलोकित हो लोक में, प्रभु परमात्म-प्रकाश।
आनन्दामृत पान कर, मिटे सभी की प्यास।।

(पद्धरि)

यह ज्ञान मात्र ज्ञायक स्वरूप, तुम हो अनन्त चैतन्य रूप।
तुम हो अखण्ड आनन्द पिण्ड, मोहारि दलन को तुम प्रचण्ड।।
रागादि विकारी भाव जार, तुम हुए निरामय निर्विकार।
निर्द्वन्द निराकुल निराधार, निर्मम निर्मल हो निराकार।।
नित करत रहतआनन्द रास, स्वाभाविक परिणति में विलास।
प्रभुशिव-रमणी के हृदय हार, नित करत रहत निज में विहार।।
प्रभु भवदधि यह गहरो अपार, बहते जाते सब निराधार।
निज परिणति का सत्यार्थ भान, शिवपद दाता जो तत्वज्ञान।।
पाया नहीं मैं उसको पिछान, उल्टा ही मैंने लिया मान।
चेतन को जड़मय लिया जान, तन में अपनापा लिया मान ।।

शुभ-अशुभ राग जो दुःखखान, उसमें माना आनन्द महान ।
प्रभु अशुभ कर्म को मान हेय, माना पर शुभ को उपादेय ।।
जो धर्म-ध्यान आनन्द रूप, उसको माना मैं दुःख स्वरूप ।
मनवांछित चाहे नित्य भोग, उनको ही माना है मनोग ।।
इच्छा-निरोध की नहीं चाह, कैसे मिटता भव-विषय-दाह ।
आकुलतामय संसार सुःख, जो निश्चय से है महा-दुःख ।।
उसकी ही निश-दिन करी आश, कैसे कटता संसार पाश ।
भव-दुःखका पर को हेतु जान, पर से ही सुख को लिया मान ।।
मैंदान दिया अभिमान ठान, उसके फल पर नहिं दिया ध्यान ।
पूजा कीनी वरदान माँग, कैसे मिटता संसार स्वाँग ।।
तेरा स्वरूप लख प्रभु आज, हो गये सफल सम्पूर्ण काज ।
मो उर प्रगट्यो प्रभु भेदज्ञान, मैंने तुम को लीना पिछान ।।
तुम पर के कर्त्ता नहीं नाथ, ज्ञाता हो सब के एक साथ ।
तुम भक्तों को कुछ नहीं देत, अपने समान बस बना लेत ।।
यह मैंने तेरी सुनी आन, जो लेवे तुम को बस पिछान ।
वह पाता है कैवल्यज्ञान, होता परिपूर्ण कला-निधान ।।
विपदामय परपद है निकाम, निजपद ही है आनन्द-धाम ।
मेरे मन में बस यही चाह, निजपद को पाऊँ हे जिनाह ।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपद प्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

पर का कुछ नहिं चाहता, चाहूँ अपना भाव।
निज-स्वभाव में थिर रहूँ, मेटो सकल विभाव ।।

(इति पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

सिद्ध पूजन - 2

स्थापना

(हरिगीतिका)

निज वज्र पौरुष से प्रभो! अन्तर-कलुष सब हर लिये,
प्रांजल[1] प्रदेश-प्रदेश में, पीयूष निर्झर झर गये।।
सर्वोच्च हो अतएव बसते लोक के उस शिखर रे!
तुमको हृदय में स्थाप, मणि-मुक्ता चरण को चूमते।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपते ! सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपते ! सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपते ! सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(वीरछन्द)

शुद्धातम सा परिशुद्ध प्रभो! यह निर्मल नीर चरण लाया।
मैं पीड़ित निर्मम ममता से, अब इसका अंतिम दिन आया।।
तुम तो प्रभु अंतर्लीन हुए, तोड़े कृत्रिम सम्बन्ध सभी।
मेरे जीवन-धन तुमको पा, मेरी पहली अनुभूति जगी।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मेरे चैतन्य सदन में प्रभु ! धू-धू क्रोधानल जलता है।
अज्ञान अमा[2] के अंचल में, जो छिपकर पल-पल पलता है।।
प्रभु! जहाँ क्रोध का स्पर्श नहीं, तुम बसो मलय की महकों में।
मैं इसीलिये मलयज लाया क्रोधासुर भागे पलकों में।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारताप विनाशनाय चदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अधिपति प्रभु! धवल भवन[3] के हो, और धवल तुम्हारा अन्तस्तल।
अंतर के क्षत सब विक्षत कर, उभरा स्वर्णिम सौंदर्य विमल।।

---

१. शुद्ध २. अमावस्या ३. सिद्धशिला

मैं महा मान से क्षत-विक्षत, हूँ खंड-खंड लोकान्त - विभो।
मेरे मिट्टी के जीवन में, प्रभु! अक्षत की गरिमा भरदो।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

चैतन्य-सुरभि की पुष्प वाटिका, में विहार नित करते हो।
माया की छाया रंच नहीं, हर बिन्दु सुधा की पीते हो।।
निष्काम प्रवाहित कर हिलोर, क्या काम काम की ज्वाला से।
प्रत्येक प्रदेश प्रमत्त हुआ, पाताल - मधु- मधुशाला[१] से।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाण विध्वंशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

यह क्षुधा देह का धर्म प्रभो! इसकी पहिचान कभी न हुई।
हर पल तन में ही तन्मयता, क्षत्-तृष्णा अविरल पीन[२] हुई।।
आक्रमण क्षुधा का सह्य नहीं, अतएव लिये हैं व्यंजन ये।
सत्वर[३] तृष्णा को तोड़ प्रभो! लो, हम आनन्द-भवन पहुँचे।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विज्ञान नगर के वैज्ञानिक, तेरी प्रयोगशाला विस्मय।
कैवल्य-कला में उमड़ पड़ा, सम्पूर्ण विश्व का ही वैभव।।
पर तुम तो उससे अति विरक्त, नित निरखा करते निज निधियाँ।
अतएव प्रतीक प्रदीप लिये, मैं मना रहा दीपावलियाँ[४]।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

तेरा प्रासाद महकता प्रभु! अति दिव्य दशांगी[५] धूपों से।
अतएव निकट नहिं आ पाते, कर्मों के कीट-पतंग अरे।।
यह धूप सुरभि - निर्झरणी, मेरा पर्यावरण[६] विशुद्ध हुआ।
छक गया योग-निद्रा[७] में प्रभु! सर्वांग अमी[८] है बरस रहा।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्ट कर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

---

१. शुध अन्तस्तत्व का आनन्द भवन २. पुष्ट ३. अविलम्ब ४. महोत्सव ५. दशधर्मों की ६. अन्तरंग प्रदूषण ७. आनन्द समाधि ८. अमृत

निज लीन परम स्वाधीन बसो, प्रभु! तुम सुरम्य शिव नगरी में।
प्रति पल बरसात गगन[१] से हो, रसपान करो शिव गगरी में।।
ये सुरतरुओं के फल साक्षी, यह भव-संतति का अंतिम क्षण।
प्रभु! मेरे मंडप में आओ, है आज मुक्ति का उद्घाटन।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफल प्राप्ताये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

तेरे विकीर्ण[२] गुण सारे प्रभु! मुक्ता-मोदक से सघन हुए।
अतएव रसास्वादन करते, रे! घनीभूति अनुभूति लिये।।
हे नाथ! मुझे भी अब प्रतिक्षण, निज अंतर-वैभव की मस्ती।
है आज अर्घ की सार्थकता, तेरी अस्ति मेरी बस्ती।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

चिन्मय हो, चिद्रूप प्रभु! ज्ञाता मात्र चिदेश।
शोध-प्रबन्ध चिदात्म के,[३] सृष्टा तुम ही एक।।

(रेखता)

जगाया तुमने कितनी बार! हुआ नहिं चिर-निद्रा का अन्त।
मदिर[४] सम्मोहन ममता का, अरे! बेचेत पड़ा मैं सन्त।।
घोर तम छाया चारों ओर, नहीं निज सत्ता की पहिचान।
निखिल जड़ता दिखती सप्राण, चेतना अपने से अनजान।।
ज्ञान की प्रति पल उठे तरंग, झांकता उसमें आतमराम।
अरे! आबाल सभी गोपाल, सुलभ सबको चिन्मय अभिराम।।
किंतु पर सत्ता में प्रतिबद्ध, कीर-मर्कट-सी[५] गहल अनन्त।
अरे! पाकर खोया भगवान, न देखा मैंने कभी बसंत।।

१. शून्य चैतन्य २. बिखरे हुये ३. आत्मा-के शुद्धि-विधान की शोध ४. मादक ५. तोता और बंदर जैसी

नहीं देखा निज शाश्वत देव, रही क्षणिका पर्यय की प्रीति।
क्षम्य कैसे हों ये अपराध? प्रकृति की यही सनातन रीति।।
अत: जड़ कर्मों की जंजीर, पड़ी मेरे सर्वात्म प्रदेश।
और फिर नरक निगोदों बीच, हुए सब निर्णय हे सर्वेश।।
घटा घन विपदा की बरसी, कि टूटी शंपा मेरे शीश।
नरक में पारद-सा तन टूक, निगोदों मध्य अनंती मीच।।
करें क्या स्वर्ग सुखों की बात, वहाँ की कैसी अद्भुत टेव।
अंत में बिलखे छह-छह मास, कहें हम कैसे उसको देव।।
दशा चारों गति की दयनीय, दया का किन्तु न यहाँ विधान।
शरण जो अपराधी को दे, अरे! अपराधी वह भगवान।।
अरे! मिट्टी की काया बीच, महकता चिन्मय भिन्न अतीव।
शुभाशुभ की जड़ता तो दूर, पराया ज्ञान वहाँ परकीय।।
अहो! 'चित्' परम अकर्तानाथ, अरे! वह निष्क्रिय तत्त्व विशेष।
अपरिमित अक्षय वैभव-कोष", सभी ज्ञानी का यह परिवेश[१]।।
बताये मर्म अरे! यह कौन, तुम्हारे बिन वैदेही नाथ?
विधाता शिव-पथ के तुम एक, पड़ा मैं तस्कर दल के हाथ।।
किया तुमने जीवन का शिल्प[२], खिरे सब मोह कर्म और गात[३]।
तुम्हारा पौरुष झंझावात[४], झड़ गये पीले - पीले पात।।
नहीं प्रज्ञा-आवर्त्तन[५] शेष, हुए सब आवागमन अशेष।
अरे प्रभु! चिर-समाधि में लीन, एक में बसते आप अनेक।।
तुम्हारा चित्-प्रकाश कैवल्य, कहें तुम ज्ञायक लोकालोक।
अहो! बस ज्ञान जहाँ हो लीन, वही है ज्ञेय, वही है भोग।।

१. अनुभूति २. सुन्दर रचना ३. शरीर ४. तूफान ५. ज्ञप्ति परिवर्तन

योग-चांचल्य[1] हुआ अवरुद्ध, सकल चैतन्य निकल निष्कंप।
अरे! ओ योग रहित योगीश! रहो यों काल अनंतानंत।।
जीव कारण-परमात्म त्रिकाल, वही है अंतस्तत्व अखण्ड।
तुम्हें प्रभु! रहा वही अवलम्ब, कार्य परमात्म हुए निर्बन्ध।।
अहो! निखरा कांचन चैतन्य, खिले सब आठों कमल[2] पुनीत।
अतीन्द्रिय सौख्य चिरंतन भोग, करो तुम धवल महल के बीच।।
उछलता मेरा पौरुष आज, त्वरित टूटेंगे बंधन नाथ।
अरे ! तेरी सुख सय्या बीच, होगा मेंरा प्रथम प्रभात।।
प्रभो! बीती विभावरी[3] आज, हुआ अरुणोदय शीतल छाँव।
झूमते शाँति-लता के कुंज, चलें प्रभु! अब अपने उस गाँव।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपद प्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

चिर-विलास चिद्‌ब्रह्म में, चिर-निमग्न भगवंत।
द्रव्य[4]-भाव[5] स्तुति से प्रभो! वंदन तुम्हें अनंत।।

(पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

पवित्रता प्राप्ति का उपाय

1. पवित्र तत्व की दृष्टि।
2. पवित्रता की भावना।
3. पवित्रता जिन्हें प्रगट हुयी उनके प्रति भक्ति।
4. पवित्रता को भूलकर, पवित्रता से च्युत हुये संसारी दुखी जीवों के प्रति करुणा भाव

१. आत्म प्रदेशों का कम्पन २. आठ गुण ३. रात ४. उत्कृष्ट भक्ति परिणाम ५. निज शुद्धात्म संवेदन

सिद्ध पूजन - 3

हे सिद्ध तुम्हारे वंदन से उर में निर्मलता आती है।
भव-भव के पातक कटते हैं पुण्यावलि शीश झुकाती है।।
तुम गुण चिन्तन से सहज देव होता स्वभाव का भान मुझे।
है सिद्ध समान स्वपद मेरा हो जाता निर्मल ज्ञान मुझे।।
इसलिये नाथ पूजन करता, कब तुम समान मैं बन जाऊँ।
जिस पथ पर चल तुम सिद्ध हुए, मैं भी चल सिद्ध स्वपद पाऊँ।।
ज्ञानावरणादिक अष्टकर्म को नष्ट करूँ ऐसा बल दो।
निज अष्ट स्वगुण प्रगटें मुझमें, सम्यक् पूजन का यह फल हो।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्ध परमेष्ठिन् अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्ध परमेष्ठिन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्ध परमेष्ठिन् अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

कर्म मलिन हूँ जन्म जरा मृतु को कैसे कर पाऊँ क्षय।
निर्मल आत्म ज्ञान जल दो प्रभु जन्म-मृत्यु पर पाऊँ जय।।
अजर, अमर, अविकलअविकारी अविनाशी अनंत गुणधाम।
नित्य निरंजन भव दुख भंजन ज्ञानस्वभावी सिद्ध प्रणाम।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्ध परमेष्ठिन् जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शीतल चंदन ताप मिटाता, किन्तु नहीं मिटता भव ताप।
निज स्वभाव का चंदन दो, प्रभु मिटे राग का सब संताप।।अजर.।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्ध परमेष्ठिन् संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

उलझा हूँ संसार चक्र में कैसे इससे हो उद्धार।
अक्षय तन्दुल रत्नत्रय दो हो जाऊँ भव सागर पार।।अजर.।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्ध परमेष्ठिन् अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

काम व्यथा से मैं घायल हूँ कैसे करूँ काम मद नाश।
विमलदृष्टि दो ज्ञानपुष्प दो, कामभाव हो पूर्ण विनाश।।अजर.।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्ध परमेष्ठिन् कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षुधा रोग के कारण मेरा तृप्त नहीं हो पाया मन।
शुद्धभाव नैवेद्य मुझे दो सफल करूँ प्रभु यह जीवन।।अजर.।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्ध परमेष्ठिन् क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहरूप मिथ्यात्व महातम अन्तर में छाया घनघोर।
ज्ञानदीप प्रज्वलित करो प्रभु प्रकटे समकित रवि का भोर।।अजर.।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्ध परमेष्ठिन् मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्म शत्रु निज सुख के घाता इनको कैसे नष्ट करूँ।
शुद्ध धूप दो ध्यान अग्नि में इन्हें जला भव कष्ट हरूँ।।अजर.।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्ध परमेष्ठिन् अष्टकर्मविध्वंशनायं धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निज चैतन्य स्वरूप न जाना, कैसे निज में आऊँगा।
भेदज्ञान फल दो हे स्वामी स्वयं मोक्ष फल पाऊँगा।।अजर.।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्ध परमेष्ठिन् महामोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्ट द्रव्य का अर्घ्य चढ़ाऊँ अष्टकर्म का हो संहार।
निजअनर्घ पद पाऊँ भगवन् सादि अनंत परम सुखकार।।अजर.।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्ध परमेष्ठिन् अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

मुक्तिकन्त भगवन्त सिद्ध को मनवच काया सहित प्रणाम।
अर्ध चन्द्र सम सिद्ध शिला पर आप विराजे आठों याम।।
ज्ञानावरण दर्शनावरणी, मोहनीय अन्तराय मिटा।
चार घातिया नष्ट हुए तो फिर अरहन्त रूप प्रगटा।।

वेदनीय अरु आयु नाम अरु गोत्र कर्म का नाश किया।
चऊ अघातिया नाश किये तो स्वयं स्वरूप प्रकाश किया।।
अष्टकर्म पर विजय प्राप्त कर अष्ट स्वगुण तुमने पाये।
जन्म-मृत्यु का नाश किया निज सिद्ध स्वरूप स्वगुण भाये।।
निज स्वभाव में लीन विमल चैतन्य स्वरूप अरूपी हो।
पूर्ण ज्ञान हो पूर्ण सुखी हो पूर्ण बली चिद्रूपी हो।।
वीतराग हो सर्व हितैषी राग-द्वेष का नाम नहीं।
चिदानन्द चैतन्य स्वभावी कृतकृत्य कुछ काम नहीं।।
स्वयं सिद्ध हो, स्वयं बुद्ध हो, स्वयं श्रेष्ठ समकित आगार।
गुण अनन्त दर्शन के स्वामी तुम अनन्त गुण के भण्डार।।
तुम अनन्त बल के हो धारी ज्ञान अनन्तानन्त अपार।
बाधा रहित सूक्ष्म हो भगवन् अगुरुलघु अवगाह उदार।।
सिद्ध स्वगुण के वर्णन तक की मुझ में प्रभुवर शक्ति नहीं।
चलूँ तुम्हारे पथ पर स्वामी ऐसी भी तो भक्ति नहीं।।
देव तुम्हारी पूजन करके हृदय कमल मुस्काया है।
भक्ति भाव उर में जागा है मेरा मन हर्षाया है।।
तुम गुण का चिन्तवन करे जो स्वयं सिद्ध बन जाता है।
हो निजात्म में लीन दुखों से छुटकारा पा जाता है।।
अविनश्वर अविकारी सुखमय सिद्ध स्वरूप विमल मेरा।
मुझमें है मुझसे ही प्रगटेगा स्वरूप अविकल मेरा।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्ध परमेष्ठिन् पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वभावी आत्मा निश्चय सिद्ध स्वरूप।
गुण अनन्तयुत ज्ञानमय है त्रिकाल शिवभूप।।

इत्याशीर्वादः।

अकृत्रिमचैत्यालय पूजा

आठ करोड़रु छप्पनलाख, सहस सत्याणव चतुशतभाख।
जोड़ इक्यासी जिनवर थान, तीन लोक आह्वान करान।।१।।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्य सम्बन्ध्यष्टकोटि-षट् पंचाशल्लक्ष-सप्तनवतिसहस्र चतु शतैकाशीति अकृत्रिम--जिन-चैत्यालयानि अत्र अवतर अवतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

क्षीरोदधिनीरं, उज्ज्वल सीरं, छान् सुचीरं, भरि झारी।
अति मधुर लखावन परमसुपावन, तृषाबुझावन गुणभारी।।
वसुकोटि सु छप्पन लाख सताणव, सहस चारशत इक्यासी।
जिनगेह अकीर्तिम तिहुं जग भीतर, पूजत पद लेऊ अविनाशी।।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्य सम्बन्ध्यष्टकोटि-षट्पंचाशल्लक्ष-सप्तनवतिसहस्र चतु शतैकाशीति अकृत्रिम--जिन-चैत्यालयेभ्यो जलं नि. ।

मलयागिरि पावन चंदन बावन, तापबुझावन घसि लीनो।
धरि कनककटोरी द्वैकर जोरी, तुमपदओरी चितदीनो। वसु...

ॐ ह्रीं त्रैलोक्य सम्बन्ध्यष्टकोटि-षट्पंचाशल्लक्ष-सप्तनवतिसहस्र चतु शतैकाशीति अकृत्रिम--जिन-चैत्यालयेभ्यो चन्दनं नि. ।

बहु भांति अनोखे तंदुल चोखे, लखि निरदोखे हम लीने।
धरि कंचन थाली तुमगुणमाली, पुंजविशाली कर दीने। वसु...

ॐ ह्रीं त्रैलोक्य सम्बन्ध्यष्टकोटि-षट्पंचाशल्लक्ष-सप्तनवतिसहस्र चतु शतैकाशीति अकृत्रिम--जिन-चैत्यालयेभ्यो अक्षतं नि. ।

शुभ पुष्पसुजाती है बहुभांति, अलि लिपटाती लेय वरं।
धरि कनक-रकेबी करगह लेवी, तुम पदजुगकी भेटधरं। वसु...

ॐ ह्रीं त्रैलोक्य सम्बन्ध्यष्टकोटि-षट्पंचाशल्लक्ष-सप्तनवतिसहस्र चतु शतैकाशीति अकृत्रिम--जिन-चैत्यालयेभ्यो पुष्पं नि. ।

खुरमा जु गिंदोडा बरफी पेड़ा, घेवर मोदक भरि थारी।
विधिपूर्वक कीने घृतमय भीने, खंड में लीने सुखकारी। वसु...

ॐ ह्रीं त्रैलोक्य सम्बन्ध्यष्टकोटि-षट्पंचाशल्लक्ष-सप्तनवतिसहस्र चतु शतैकाशीति अकृत्रिम--जिन-चैत्यालयेभ्यो नैवेद्यं नि.।

मिथ्यात महातम छाय रह्यो हम, निजभव परणति नहिं सूझै।
इह कारण पाकै दीप सजाकै, थाल भराकैं हम पूजें। वसु...

ॐ ह्रीं त्रैलोक्य सम्बन्ध्यष्टकोटि-षट्पंचाशल्लक्ष-सप्तनवतिसहस्र चतु शतैकाशीति अकृत्रिम--जिन-चैत्यालयेभ्यो दीपं नि.।

दशगंध कुटाके धूप बनाके, निजकर लेके धरि ज्वाला।
तसु धूम उड़ाई दशदिशि छाई, बहु महकाई अति आला। वसु...

ॐ ह्रीं त्रैलोक्य सम्बन्ध्यष्टकोटि-षट्पंचाशल्लक्ष-सप्तनवतिसहस्र चतु शतैकाशीति अकृत्रिम--जिन-चैत्यालयेभ्यो धूपं नि. ।

बादाम छुआरे श्रीफल धारे, पिस्ता प्यारे द्राख वरं।
इन आदि अनोखे लखि निरदोखे, थालसंजोखै भेट धरं। वसु..

ॐ ह्रीं त्रैलोक्य सम्बन्ध्यष्टकोटि-षट्पंचाशल्लक्ष-सप्तनवतिसहस्र चतु शतैकाशीति अकृत्रिम--जिन-चैत्यालयेभ्यो फलं नि. ।

जल चंदन तदुंल कुसुम रुनेवज, दीप धूप फल थाल रचौं।
जयघोष कराऊँ बीन बजाऊँ, अर्घ चढ़ाऊँ प्रभु खूब नचौं। वसु...

ॐ ह्रीं त्रैलोक्य सम्बन्ध्यष्टकोटि-षट्पंचाशल्लक्ष-सप्तनवतिसहस्र चतु शतैकाशीति अकृत्रिम--जिन-चैत्यालयेभ्यो अर्घ्य नि. ।

अधोलोक जिन आगम साख, सात कोड़ि अरु बहतर लाख।
श्री जिनभवन महा छवि देई, ते सब पूजौं वसुविधि लेई।।

ॐ ह्रीं अधोलोक सम्बन्धि सप्तकोटि-द्विसप्तति-क्षलाकृत्रिम श्रीजिन-चैत्यालयेभ्यो अर्घ्य नि. ।।

मध्यलोक जिन मंदिर ठाठ, साढैं चार शतक अरु आठ।
ते सब पूजों अर्घ चढ़ाय, मन वच तन त्रय जोगमिलाय।।

ॐ ह्रीं मध्यलोक सम्बन्धि चतु शताष्टपंचाशत श्रीजिन-चैत्यालयेभ्यो अर्घ्य नि. ।

ऊर्ध्वलोक के माहिं भवन जिन जानिये,
लाख चौरासी सहस सत्यानव मानिये।
तापे धरि तेईस जजों शिरनायकैं,
कंचन थालमझार जलादिक लायकैं।।

ॐ ह्रीं ऊर्ध्वलोक सम्बन्धि चतुरशीतिलक्ष सप्तनवतिसहस त्रयोविंशति श्रीजिन-चैत्यालयेभ्यो अर्घ्य।

वसुकोटि छप्पन लाख ऊपर, सहस सत्याणव मानिये।
शतच्यार पै गिनले इक्यासी, भवन जिनवर जानिये।
तिहुं लोक भीतर सासते, सुर-असुर-नर पूजा करैं।
तिन भवन को हम अर्घ लेकै, पूजि है जग दुख हरैं।।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्य सम्बन्ध्यष्टकोटि - षट्पंचाशल्लक्ष - सप्तनवतिसहस्र चतु शतैकाशीति अकृत्रिम -जिन-चैत्यालयेभ्यो पूर्णार्घ्यं नि.।

जयमाला

दोहा- अब वरणूं जय मालिका, सुनो भव्य चितलाय।
जिनमंदिर तिहुं लोक के, देहुं सकल दरशाय।।
जय अमल अनादि अनंतजान, अनिमितजु अकीर्तमअचल मान।
जय अजय अखण्ड अरूपधार, षट् द्रव्य नहीं दीसै लगार।।
जय निराकार अविकार होय, राजत अनंत परदेस सोय।
जय शुद्धसुगुण अवगाहपाय, दशदिशामाहिं इह विध लखाय।।
यह भेद अलोकाकाश जान, तामध्य लोक नभ तीन मान।
स्वयमेवबन्यौ अविचल अनन्त, अविनाशि अनादिजु कहत संत।।
पुरुषाकार ठाडो निहार, कटि हाथ धारि द्वैपग पसार।
दक्षिन - उत्तरदिशि सर्व ठौर, राजू जु सात भाख्यो निचोर।।

जय पूर्व अपरदिशि घाट बाधि, सुन कथन कहूं ताकोजु साधि।
लखि श्वभ्रतले राजू जु सात, मधिलोक एक राजु रहात।।
फिर ब्रह्मसुरग राजू जु पांच, भू सिद्ध एक राजू जु सांच।
दश चार ऊंच राजू गिनाय, षट्द्रव्य लये चतुकोण पाय।।
तसु वातवलय लपटाय तीन, इह निराधार लखियो प्रवीन।
त्रसनाडी तामधि जान खास, चतुकोन एक राजू जु व्यास।।
राजु उतंग चौदह प्रमान, लखि स्वयं सिद्ध रचना महान।
तामध्य जीव त्रस आदि देय, निज थान पाय तिष्ठे भलेय।।
लखि अधो भाग में श्वभ्रथान, गिन सात कहे आगम प्रमान।
षट् थानमाहिं नारकी बसेय, इक श्वभ्रभाग फिर तीन भेय।।
तसु अधोभाग नारकी रहाय, पुनिऊर्ध्वभाग द्वय थानपाय।
बस रहे भवन व्यंतरजु देव, पुर हर्म्य छजै रचना स्वमेव।।
तिहथान गेह जिनराजभाख, गिन सातकोटि बहत्तर जुलाख।
ते भवन नमों मनवचन काय, गतिश्वभ्रहरण हारे लखाय।।
पुनि मध्यलोक गोलाअकार, लखिदीप उदधि रचना विचार।
गिन असंख्यात भाखे जुसंत, लखि संभुरमन सबके जु अंत।।
इक राजूव्यास में सर्व जान, मधिलोक तनों इह कथन मान।
सब मध्य द्वीप जम्बू गिनेय, त्रयदशम रूचिकवर नाम लेय।।
इन तेरह में जिनधाम जान, शतचार अठावन है प्रमान।
खग देव असुर नरआय आय, पद पूज जाय शिर नायनाय।।
जय ऊर्ध्वलोक सुर कल्पवास, तिह थानछजे जिन भवन खास।
जय लाख चौरासी पैं लखेय, जय सहस सत्याणव और ठेय।।
जय बीसतीन पुनि जोड़देय, जिन भवन अकीर्तम जान लेय।
प्रतिभवन एक रचना कहाय, जिन बिंब एक शत आठ पाय।।

शतपंच धनुष उन्नत लसाय, पदमासनयुत वर ध्यान लाय।
शिरतीन छत्र शोभित विशाल, त्रयपादपीठ मणिजडितलाल।।
भामण्डल की छवि कौन गाय, पुनिचंवरढुरत चौंसठि लखाय।
जय दुन्दुभिरव अद्भुत सुनाय, जय पुष्पवृष्टि गंधोदकाय।।
जय तरुअशोक शोभा भलेय, मंगल विभूति राजत अमेय।
घटतूप छजे मणिमाल पाय, घटधूम्रधूम्र दिग सर्व छाय।।
जयकेतुपंक्ति सोहे महान, गन्धर्व देव गन करत गान।
सुर जन्मलेतलखि अवधिपाय, तिहँथान प्रथम पूजन कराय।।
जिनगेहतनो वरनन अपार, हम तुच्छबुद्धिकिम लहतपार।
जयदेव जिनेसुर जगतभूप, नमि 'नेम' मंगै निज देहुरूप।।
दोहा - तीनलोक में सासते, श्रीजिन भवन विचार।
मनवचतन करि शुद्धता, पूजों अरघ उतार।।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्य सम्बन्ध्यष्टकोटि षट्पंचाशल्लक्ष-सप्तनवतिसहस्र चतु शतैकाशीति अकृत्रिम श्रीजिन-चैत्यालयेभ्यो अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

तिहूं जगभीतर श्रीजिनमंदिर, बने अकीर्तम अति सुखदाय।
नर सुर खगकरि बंदनीक जे, तिनको भविजन पाठ कराय।।
धन-धान्यादिक सम्पति तिनके, पुत्र-पौत्र सुख होत भलाय।
चक्रीसुर खग इन्द्र होयके, करम नाश शिवपुर सुख थाय।।

इत्याशीर्वादः।

कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय पूजन

तीन लोक के कृत्रिम अकृत्रिम जिन चेत्यालय को वन्दन।
उर्ध्व मध्य पाताल लोक के जिन भवनों को करूं नमन।।
हैं अकृत्रिम आठ कोटि अरु छप्पन लाख परम पावन।
संतानवे सहस्त्र चार सौ इक्यासी गृह मन भावन।।
कृत्रिम अकृत्रिम जो असंख्य चैत्यालय हैं उनको वन्दन।
विनय भाव से भक्ति पूर्वक नित्य करूँ मैं जिन पूजन।।

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक संबंधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिन बिम्ब समूह अत्र अवतर अवतर संवौषट्। ॐ ह्रीं श्री तीन लोक संबंधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिन बिम्ब समूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। ॐ ह्रीं श्री तीन लोक संबंधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिन बिम्ब समूहअत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

सम्यक् जल की निर्मल उज्ज्वलता से जन्म जरा हरलूँ।
मूल धर्म का सम्यक् दर्शन हे प्रभु हृदयंगम कर लूँ।।
तीन लोक के कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय वन्दन करलूँ।
ज्ञान सूर्य की परम ज्योति पा भव सागर के दुख हर लूँ।।

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक संबंधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिन बिम्बेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

सम्यक् चन्दन पावन की शीतलता से भव भय हर लूँ।
वस्तु स्वभाव धर्म है सम्यक् ज्ञान आत्मा में भर लूँ।।तीन.।।

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक संबंधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिन बिम्बेभ्यो संसारतापविनाशनाय चदनं नि.।

सम्यक्चारित की अखंडता से अक्षयपद आदर लूँ।
साम्यभाव चारित्र धर्म पा वीतरागता को वर लूँ।।तीन.।।

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक संबंधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिन बिम्बेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

शील स्वभावी पुष्प प्राप्त कर काम शत्रु को क्षय करलूँ।
अणुव्रत शिक्षाव्रत गुणव्रत धर पंच महाव्रत आचरलूँ।।तीन.।।

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक संबंधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिन बिम्बेभ्यो कामबाण विध्वंशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

संतोषामृत के चरु लेकर क्षुधा व्याधि को जय करलूँ।
सत्य शौचतप त्याग क्षमा से भाव शुभाशुभ सब हरलूँ।।तीन.।।

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक संबंधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिन बिम्बेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान दीप के चिर प्रकाश से मोह ममत्व तिमिर हरलूँ।
रत्नत्रय का साधन लेकर यह संसार पार कर लूँ।।तीन.।।

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक संबंधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिन बिम्बेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ध्यान अग्नि में कर्म धूप धर अष्टकर्म अघ को हरलूँ।
धर्म श्रेष्ठ मंगल को पा शिवमय सिद्धत्व प्राप्त करलूँ।।तीन.।।

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक संबंधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिन बिम्बेभ्यो अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

भेद ज्ञान विज्ञान ज्ञान से केवलज्ञान प्राप्त करलूँ।
परमभाव सम्पदा सहजशिव महामोक्षफल को वरलूँ।।तीन.।।

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक संबंधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिन बिम्बेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

द्वादश विधितप अर्घ संजोकर जिनवर पद अनर्घ वरलूँ।
मिथ्या अविरति पंच प्रमाद कषाय योग बन्धन हरलूँ।।तीन.।।

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक संबंधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिन बिम्बेभ्यो अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

इस अनन्त आकाश बीच में, तीन लोक हैं पुरुषाकार।
तीनों वातवलय से वेष्टित, सिंधु बीच ज्यों बिन्दु प्रसार।।
उर्ध्व सात हैं, अधो सात हैं, मध्य एक राजु विस्तार।
चौदह राजु उतंग लोक हैं, त्रस नाड़ी त्रस का आधार।।
तीन लोक में भवन अकृत्रिम आठ कोटि अरुछप्पन लाख।
संतानवे सहस्त्र चार सौ इक्यासी जिन आगम साख।।
उर्ध्व लोक में कल्पवासियों के जिनगृह चौरासी लक्ष।
संतानवे सहस्त्र तेईस जिनालय हैं शाश्वत प्रत्यक्ष।।
अधोलोक में भवनवासि के लाख बहत्तर, करोड़ सात।
मध्यलोक के चार शतक अट्ठावन चैत्यालय विख्यात।।
जम्बूधातकी पुष्करार्ध में पंचमेरु के जिनगृह ख्यात।
जम्बूवृक्ष शाल्मलितरु अरु विजयार्ध के अति विख्यात।।
वक्षारों गजदतों इष्वाकारों के पावन जिनगेह।
सर्व कुलाचल मानुषोत्तर पर्वत के वन्दू धर नेह।।
नन्दीश्वर कुण्डलवर द्वीप रुचकवर के जिन चैत्यालय।
ज्योतिष व्यंतर स्वर्गलोक अरु भवनवासि के जिनआलय।।
एक एक में एक शतक अरु आठ आठ जिन मूर्ति प्रधान।
अष्ट प्रातिहार्यों वसु मंगल द्रव्यों से अति शोभावान।।
कुल प्रतिमा नौ सौ पच्चीस करोड़ तिरेपन लाख महान।
सत्ताइस सहस्त्र अरु नौ सौ अड़तालिस अकृत्रिम जान।।
उन्नत धनुष पांच सौ पद्मासन है रत्नमयी प्रतिमा।
वीतराग अर्हन्त मूर्ति की है पावन अचिन्त्य महिमा।।

असंख्यात संख्यात जिन भवन तीन लोक में शोभित हैं।
इन्द्रादिक सुर नर विद्याधर मुनि वन्दन कर मोहित हैं।।
देव रचित या मनुज रचित, हैं भव्यजनों द्वारा वंदित।
कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय को पूजन कर मैं हूँ हर्षित।।
ढाईद्वीप में भूत भविष्यत वर्तमान के तीर्थंकर।
पंचवर्ण के मुझे शक्ति दें मैं निज पद पाऊँ जिनवर।।
जिनगुण सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो परम समाधिमरण हो नाथ।
सकलकर्म क्षय हो प्रभु मेरे बोधिलाभ हो हे जिननाथ।।

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक संबंधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिन बिम्बेभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो निर्ग्रन्थ गुरुओं को नहीं मानता, उनकी पहचान और उपासना नहीं करता, उसको तो सूर्य उगे हुए भी अंधकार है। इसी प्रकार जो वीतरागी गुरुओं के द्वारा प्रकाशित सत् शास्त्रों का अभ्यास नहीं करता, उसके नैत्र होते हुए भी ज्ञानी उसको अंधा कहते हैं। विकथा पढ़ा करे और शास्त्र स्वाध्याय न करे, उसके नैत्र किस काम के? श्रीगुरु के पास रहकर जो शास्त्र नहीं सुनता और हृदय में ग्रहण नहीं करता, उस मनुष्य के कान तथा मन नहीं हैं– ऐसा कहा है।

–पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
श्रावक धर्म प्रकाश

कृत्रिम व अकृत्रिम चैत्यालयों के अर्घ

भूत भविष्यत् वर्तमान की तीस चौबीसी मैं ध्याऊँ।
चैत्य चैत्यालय कृत्रिमाकृत्रिम, तीन लोक के मन लाऊँ।।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्य सम्बन्धी तीस चौबीसी, त्रिलोक सम्बन्धी कृत्रिमाकृत्रिम चैत्याचैत्यालयेभ्य अर्घ्यं नि.

वसुकोटि छप्पन लाख ऊपर, सहस सत्याणव मानिये।
शतच्यार पै गिनले इक्यासी, भवन जिनवर जानिये।।
तिहुंलोक भीतर सासते, सुर असुर नर पूजा करें।
तिन भवन को हम अर्घ लेकै, पूजि है जग दुख हरैं।।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्य सम्बन्ध्यष्टकोटि-षट्पंचाशल्लक्ष-सप्तनवतिसहस्र चतु शतैकाशीति अकृत्रिम-जिन-चैत्यालयेभ्यो पूर्णार्घ्यं नि. ।।४।।

चैत्य भक्ति आलोचना चाहुं, कायोत्सर्ग अघ नासन हेत।
कृत्रिमाकृत्रिम तीन लोक में , राजत हैं जिन बिंब अनेक।।
चतुर्निकाय के देव जजैं, ले अष्ट द्रव्य निज कुटुम्ब समेत।
निज शक्ति अनुसार जजूं मैं, कर समाधि पाऊँ शिवखेत।।

पुष्पांजलि क्षेपण

पूर्व मध्य अपरान्ह की बेला, पूर्वाचार्यों के अनुसार।
देव वन्दना करूँ भाव से, सकल कर्म की नासनहार।।
पंच महा गुरु सुमिरन करके, कायोत्सर्ग करूं सुखकार।
सहज स्वभाव शुद्ध लख अपना, जाऊंगा मैं अब भव पार।।

(कायोत्सर्ग पूर्वक नौ बार णमोकार मंत्र की जाप्य करें।)

कृत्रिम व अकृत्रिम चैत्यालयों के अर्घ (संस्कृत)

कृत्याकृत्रिम-चारु-चैत्यानिलयान् नित्यं त्रिलोकीगतान्।
वन्दे भावनव्यंतरान् द्युतिवरान् स्वर्गामरावासगान्।।
सद्गन्धाक्षत-पुष्पदाम-चरुकैः, सद्दीप धूपैः फलैः।
द्रव्यैर्नीरिमुखैर्यजामि सततं दुष्कर्मणां शान्तये ।।१।।

ॐ ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिम चैत्यालय-संबंधि जिन बिम्बेभ्योऽर्घ्यं नि. ।

वर्षेषु वर्षान्तर-पर्वतेषु नन्दीश्वरे यानि च मन्दरेषु।
यावंति चैत्यायतनानि लोके, सर्वाणि वन्दे जिनपुंगवानां।।२।।

अवनि-तल-गतानां कृत्रिमाकृत्रिमाणां,
वन-भवन-गतानां दिव्य-वैमानिकानाम्।
इह मनुज-कृतानां देवराजार्चितानां,
जिनवर-निलयानां भावतोऽहं स्मरामि।।३।।

जम्बू-धातकि-पुष्करार्द्ध-वसुधा क्षेत्र त्रये ये भवाश्-
चन्द्रांभोज-शिखंडि-कण्ठ-कनक-प्रावृड्घनाभा-जिनाः।
सम्यग्ज्ञान-चरित्र-लक्षण-धराः दग्धाष्ट-कर्मेन्धनाः,
भूतानागत-वर्तमान-समये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः।।४।।

श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रजतगिरिवरे शाल्मलौ जम्बुवृक्षे,
वृक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकर-रुचिके कुण्डले मानुषां के।
इक्ष्वाकारेंऽजनाद्रो दधिमुख-शिखरे व्यन्तरे स्वर्गलोके,
ज्योतिर्लोकेऽभिवन्दे भवनमहितले यानि चैत्यालयानि।।५।।

द्वौ कुन्देन्दु-तुषार-हार-धवलौ द्वाविन्द्र-नील-प्रभौ।
द्वौ बन्धूक-सम-प्रभौ जिनवृषौ द्वौ च प्रियंगु प्रभौ।
शेषाः षोडश-जन्ममृत्युरहिताः सन्तप्तः हेम प्रभाः,
ते संज्ञानदिवाकराः सुरनुताः सिद्धिं प्रयच्छन्तु नः।।६।।

ॐ ह्रीं त्रिलोक-सम्बन्धित कृत्रिमाकृत्रिम चैत्यालयेभ्योऽर्घ्यं नि. ।

इच्छामि भंते चेइयभत्ति काओसग्गो कओ तस्सालोचेंओ। अहलोय तिरियलोय-उड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि

ताणि सव्वाणि तीसुवि लोयेसु भवण-वासिय-बाण-विन्तर-जोइसिय कप्पवासित्ति चउव्विहादेवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण फुफ्फेण दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुष्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ह्राणेण णिच्चकालं अच्चन्ति पुज्जन्ति वन्दन्ति णमस्संति। अहमवि इह संतो तत्थ सत्ताई णिच्चकालं अच्चेमि पुज्जेमि वन्दामि णमस्सामि। दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाओ सुगइगमणं समहिमरणं जिणगुणसंपत्ती होउ मज्झं।।

(इत्याशीर्वादः। पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

अथ पौर्वाह्णिक देववन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्मक्षयार्थ भाव पूजा-वन्दना स्तवसमेतंश्री सिद्धभक्ति-कायोत्सर्ग करोम्यहम्।

ताव कार्य पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।
णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आईरियाणं।
णमो उवज्जायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं।।

(नौ बार णमोकार मंत्र का जाप्य करना चाहिये।)

संयोग उदय के अनुसार मिलते हैं, परिणमन योग्यतानुसार होता है और सुख-दुख परिणामानुसार होते हैं अतः पर के दोष देखना मिथ्या है।

श्री चौबीस तीर्थंकर पूजा - 1

वृषभ अजित सम्भव अभिनन्दन, सुमति पद्म सुपार्श्व जिनराय।
चन्द पुहुप शीतल श्रेयांस जिन, वासुपूज्य पूजित सुरराय।।
विमल अनन्त धर्म जस-उज्ज्वल, शांति कुंथु अर मल्लि मनाय।
मुनिसुव्रत नमि नेमि पार्श्व प्रभु, वर्द्धमान पद पुष्प चढ़ाय।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरांत चतुर्विंशति जिनसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरांत चतुर्विंशति जिनसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरांत चतुर्विंशति जिनसमूह ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

मुनि-मन-सम उज्वल नीर, प्रासुक गन्ध भरा ।
भरि कनक-कटोरी धीर, दीनी धारा धरा ।।
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही ।
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही ।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरांतेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

गोशीर कपूर मिलाय, केशर रंग भरी।
जिन-चरनन देत चढ़ाय, भव-आताप हरी।।चौबीसों।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरांतेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति. स्वाहा।

तन्दुल सितसोम-समान सुन्दर अनियारे।
मुक्ता फल की उनमान पुन्ज धरों प्यारे।।चौबीसों।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरांतेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति. स्वाहा।

वर-कंज कदम्ब कुरण्ड, सुमन सुगन्ध भरे।
जिन-अग्र धरों गुन-मण्ड, काम-कलंक हरे ।।चौबीसों।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरांतेभ्यो काम-बाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति. स्वाहा।

मन-मोहन मोदक आदि, सुन्दर सद्य बने।
रस-पूरित प्रासुक स्वाद, जजत क्षुधादि हने ।।चौबीसों।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरांतेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति. स्वाहा।

तम-खण्डन दीप जगाय, धारों तुम आगै।
सब तिमिर मोहक्षय जाय, ज्ञान-कला जागे।।
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही।
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत-मोक्ष मही।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरांतेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति. स्वाहा।

दशगन्ध हुताशन माँहि, हे प्रभु! खेवत हों।
मिस-धूम करम जर जाँहि, तुम पद सेवत हों ।।चौबीसों।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरांतेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति. स्वाहा।

शुचि पक्व सुरस फल सार, सब ऋतु के ल्यायो।
देखत दृग-मनकों प्यार, पूजत सुख पायो।।चौबीसों।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरांतेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति. स्वाहा।

जल फल आठों शुचिसार, ताको अर्घ्य करों।
तुमको अरपों भवतार, भव तरि मोक्ष वरों।।चौबीसों।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरांतेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति. स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

श्रीमत तीरथनाथ-पद, माथ नाय हित हेत।
गाऊँ गुणमाला अबै, अजर-अमर पद देत।।

(त्रिभंगी)

जय भव-तम भंजन, जन-मन-कंजन, रंजन दिन-मणि, स्वच्छ करा।
शिव-मग-परकाशक, अरिगण-नाशक, चौबीसों जिनराज वरा।।

(पद्धरि)

जय ऋषभदेव ऋषि-गन नमन्त, जय अजित जीत वसु अरि तुरन्त।
जय सम्भव भव-भय करत चूर, जय अभिनन्दन आनन्द पूर।।
जय सुमति सुमति-दायक दयाल, जय पद्म पद्म दुतितनरसाल।
जय जय सुपास भव-पास नाश, जय चन्द, चन्द-तन दुति प्रकाश।।
जय पुष्पदन्त दुति-दन्त-सेत, जय शीतल शीतल-गुननिकेत।
जय श्रेयनाथ नुत-सहसभुज्ज, जय वासव-पूजित वासुपुज्ज।।
जय विमल विमल-पद देनहार, जय जय अनन्त गुन-गण अपार।
जय धर्म धर्म शिव शर्म देत, जय शान्ति शान्ति-पुष्टी करेत।।
जय कुन्थु कुन्थु-आदिक रखेय, जय अरजिन वसु-आरि छय करेय।
जय मल्लि मल्ल हत मोह-मल्ल, जय मुनिसुव्रत व्रत-शल्य-दल्ल।।
जय नमि नित वासव-नुत सपेम, जय नेमिनाथ वृष-चक्र नेम।
जय पारसनाथ अनाथ-नाथ, जय वर्धमान शिवनगर साथ।।

(त्रिभंगी)

चौबीस जिनन्दा, आनन्द कन्दा, पाप निकन्दा, सुखकारी।
तिन पद-जुग-चन्दा, उदय अमन्दा, वासव-वन्दा हितकारी।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरान्तचतुर्विंशतिजिनेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति. स्वाहा महार्घ्यं।

(सोरठा)

भुक्ति-मुक्ति दातार, चौबीसों जिनराजवर।
तिन पद मन-वच धार, जो पूजै सो शिव लहै।।

(इति पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्री चौबीस तीर्थंकर पूजा - 2

भरत क्षेत्र की वर्तमान जिन चौबीसी को करूँ नमन।
वृषभादिक श्री वीर जिनेश्वर के पद पंकज में वन्दन।।
भक्ति भाव से नमस्कार कर विनय सहित करता पूजन।
भव सागर से पार करो प्रभु यही प्रार्थना है भगवन।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि महावीर पर्यन्त चतुर्विंशति जिनसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री वृषभादि महावीर पर्यन्त चतुर्विंशति जिनसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री वृषभादि महावीर पर्यन्त चतुर्विंशति जिनसमूह ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

आत्मज्ञान वैभव के जल से यह भव तृषा बुझाऊँगा।
जन्मजरा हर चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जलाऊँगा।।
वृषभादिक चौबीस जिनेश्वर के नित चरण पखारूँगा।
पर द्रव्यों से दृष्टि हटाकर अपनी ओर निहारूँगा।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादि वीरांतेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

आत्मज्ञान वैभव के चन्दन से भवताप नशाऊँगा।
भवबाधा हर चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जलाऊँगा।।वृष.।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादि वीरांतेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति. स्वाहा।

आत्मज्ञान वैभव के अक्षत से अक्षय पद पाऊँगा।
भवसमुद्र तिर चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जलाऊँगा।।वृष.।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादि वीरांतेभ्यो अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतं निर्वपामीति. स्वाहा।

आत्मज्ञान वैभव के पुष्पों से मैं काम नशाऊँगा।
शिलोदधि पा चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जलाऊँगा।।वृष.।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादि वीरांतेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति. स्वाहा।

आत्मज्ञान वैभव के चरु ले क्षुधा व्याधि हर पाऊँगा।
पूर्ण तृप्ति पा चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जलाऊँगा।।वृष.।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादि वीरांतेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति. स्वाहा।

आत्मज्ञान वैभव दीपक से भेद ज्ञान प्रगटाऊँगा।
मोहतिमिर हर चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जलाऊँगा।।वृष.।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादि वीरांतेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति. स्वाहा।

आत्मज्ञान वैभव को निज में शुचिमय धूप चढ़ाऊँगा।
अष्टकर्म हर चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जलाऊँगा।।वृष.।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादि वीरांतेभ्यो अष्टकर्म विनाशनाय धूपं निर्वपामीति. स्वाहा।

आत्मज्ञान वैभव के फल से शुद्ध मोक्ष फल पाऊँगा।
राग-द्वेष हर चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जलाऊँगा।।वृष.।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादि वीरांतेभ्यो महामोक्ष फल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति. स्वाहा।

आत्मज्ञान वैभव का निर्मल अर्घ अपूर्व बनाऊँगा।
पा अनर्घ पद चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जलाऊँगा।।वृष.।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादि वीरांतेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति. स्वाहा।

जयमाला

भव्य दिगम्बर जिन प्रतिमा नासाग्र दृष्टि निज ध्यानमयी।
जिन दर्शन पूजन अघ नाशक भव-भव में कल्याणमयी।।
वृषभदेव के चरण पखारूँ मिथ्या तिमिर विनाश करूँ।
अजितनाथ पद वन्दन करके पंच पाप मल नाश करूँ।।
सम्भव जिन का दर्शन करके सम्यक्दर्शन प्राप्त करूँ।
अभिनन्दन प्रभु पद अर्चन कर सम्यक्ज्ञान प्रकाश करूँ।।
सुमतिनाथ का सुमिरण करके सम्यकचारित हृदय धरूँ।
श्री पदम प्रभु का पूजन कर रत्नत्रय का वरण करूँ।।
श्री सुपार्श्व की स्तुति करके मैं मोह ममत्व अभाव करूँ।
चन्दाप्रभु के चरण चित्त धर चार कषाय अभाव करूँ।।

पुष्पदंत के पद कमलों में बारम्बार प्रणाम करूँ।
शीतल जिनका सुयशगान कर शाश्वत शीतल धाम वरूँ।।
प्रभु श्रेयांसनाथ को बन्दू श्रेयस पद की प्राप्ति करूँ।
वासुपूज्य के चरण पूज कर मैं अनादि की भ्रांति हरूँ।।
विमल जिनेश मोक्षपद दाता पंच महाव्रत ग्रहण करूँ।
श्री अनन्तप्रभु के पद बन्दू पर परणति का हरण करूँ।।
धर्मनाथ पद मस्तक धर कर निज स्वरूप का ध्यान करूँ।
शांतिनाथ की शांत मूर्ति लख परमशांत रस पान करूँ।।
कुंथनाथ को नमस्कार कर शुद्ध स्वरूप प्रकाश करूँ।
अरहनाथ प्रभु सर्वदोष हर अष्टकर्म अरि नाश करूँ।।
मल्लिनाथ की महिमा गाऊँ मोह मल्ल को चूर करूँ।
मुनिसुव्रत को नित प्रति ध्याऊँ दोष अठारह दूर करूँ।।
नमि जिनेश को नमन करूँ मैं निजपरिणति में रमण करूँ।
नेमिनाथ का नित्य ध्यान धर भाव शुभा-शुभ शमन करूँ।।
पार्श्वनाथ प्रभु के चरणाम्बुज दर्शन कर भव भार हरूँ।
महावीर के पथ पर चलकर मैं भव सागर पार करूँ।।
चौबीसों तीर्थंकर प्रभु का भाव सहित गुणगान करूँ।
तुम समान निज पद पाने को शुद्धातम का ध्यान करूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति. स्वाहा।

श्री चौबीस जिनेश के चरण कमल उर धार ।
मन, वच, तन, जो पूजते वे होते भव पार।।

इत्याशीर्वादः

श्री चौबीस तीर्थंकर पूजा - 3

भव भोगों से होकर विरक्त, प्रभु हुए स्वयं तुम आत्ममगन,
प्रगटा तब केवलज्ञान सूर्य, फिर रहे नहीं विधि के बंधन।
तीर्थंकर हो जग त्राण किया, तुमने पाया नव अभिनन्दन,
ऋषभादि चतुर्विंशति जिनवर, शतशतप्रणाम शतशतवंदन।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति जिनसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति जिनसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति जिनसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

भवभव में भटक रहा भगवन, जीवन भारी दुःखदायी है,
कर दर्शन नाथ तुम्हारा यह, मुझको मेरी सुधि आई है।
मिट जाये मेरा जन्म मरण, जल से करता हूँ मैं अर्चन,
ऋषभादि चतुर्विंशति जिनवर, आदर्श रहो मेरे प्रतिछन।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादि चतुर्विंशति जिनेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भवताप कहूँ क्या प्रभु तुमसे, मुझसे न सहन अब होता है,
इसलिए शरण में आया हूँ, तब पूजन भव दुःख खोता है।
जग का संताप मिटे मेरा, चंदन से करता हूँ अर्चन,
ऋषभादि चतुर्विंशति जिनवर, आदर्श रहो मेरे प्रतिछन।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादि चतुर्विंशति जिनेभ्यो संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षय न यहाँ कुछ बसुधा पर, जो कुछ है सब क्षय हो जाता,
इसदुःख से बहुत व्यथित व्याकुल, मैं त्राण नहीं किंचित पाता।
अक्षय पद मैं अब पा जाऊँ, अक्षत से करता हूँ अर्चन,
ऋषभादि चतुर्विंशति जिनवर, आदर्श रहो मेरे प्रतिछन।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादि चतुर्विंशति जिनेभ्यो अक्षयपद प्राप्तयें अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

यह काम बड़ा बलशाली है, तन-मन को आकुल कर देता,
विषयों के वश में पर प्राणी, उसकी बुद्धि को हर लेता।
तुम कामजयी हो इसीलिए, पुष्पों से करता हूँ अर्चन,
ऋषभादि चतुर्विंशति जिनवर, आदर्श रहो मेरे प्रतिछन।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादि चतुर्विंशति जिनेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

है क्षुधा जगत में महारोग, जिसका न अन्त हो पाया है,
युग-युग से इसके वश होकर, मैंने अखाद्य सब खाया है।
तुम इस पर विजयी हुए नाथ, नैवेद्य चढ़ा करता अर्चन,
ऋषभादि चतुर्विंशति जिनवर, आदर्श रहो मेरे प्रतिछन।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादि चतुर्विंशति जिनेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कुछ सरल बात है नहीं मोहतम, प्राणों से यह कढ़ जाये,
तुम सा वैरागी बनकर ही, अपने स्वरूप को पा जाये।
तुम वीतराग हो निर्मोही, मैं दीपक से करता अर्चन,
ऋषभादि चतुर्विंशति जिनवर, आदर्श रहो मेरे प्रतिछन।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादि चतुर्विंशति जिनेभ्यो मोहाँधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

यह कर्मों की माया सारी भव भव में इसने भरमाया,
कुछ शुभ संयोग मिला मुझको, मैं शरण तुम्हारी हूँ आया।
तुमने कर्मों को जीत लिया, मैं धूप चढ़ा करता अर्चन,
ऋषभादि चतुर्विंशति जिनवर, आदर्श रहो मेरे प्रतिछन।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादि चतुर्विंशति जिनेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

जीवन की उलझन ने मुझको, उलझन में इतना उलझाया,
सुलझा न सका उसकोअब तक, कब शिवफल तुमसा प्रभु पाया।

तुम मुक्त हुए इस उलझन से, फल से करता हूँ मैं अर्चन,
ऋषभादि चतुर्विंशति जिनवर, आदर्श रहो मेरे प्रतिछन।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादि चतुर्विंशति जिनेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

मिट जावे मेरा जन्म मरण, संताप न हो अक्षय पद हो,
निष्काम रहूँ न विभुक्षा हो, ना मोह न यह विधि भयप्रद हो।
बन जाऊँ जीवनमुक्त नाथ, यह अर्घ्य चढ़ा करता अर्चन,
ऋषभादि चतुर्विंशति जिनवर, आदर्श रहो मेरे प्रतिछन।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादि चतुर्विंशति जिनेभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

मैं उर में लेकर भक्ति भाव से, प्रभुवर करता हूँ प्रणाम,
मिथ्यातम से मैं दूर रहूँ, बन जाऊँ सम्यक् ज्योति धाम।
तुम दर्शन पूजन से भगवन्, हो जाये निज दर्शन ललाम,
तुम सा बन जाऊँ इसीलिए, करता हूँ मैं सादर प्रणाम।
हे ऋषभनाथ हे आदिनाथ, मुझ पर अब तो करुणा कर दो,
प्रभु अजितनाथ मेरे उर का, चिर संचित सब संशय हर दो।
सम्भव जिन मुझ पर हो दयालु, सब काम असंभव बन जावे,
भज अभिनन्दन प्रभु को निश दिन, नवजीवन अभिनन्दन पावे।
श्री सुमति सुमति मेरी कर दो, मिथ्यामति हो न कभी मेरी,
भव पार करो प्रभु पदमप्रभु, अब और न हो पावे देरी।
भगवन् सुपार्श्व मेरे भव के, सब पाप नाश कर दो सत्वर,
चन्द्रप्रभु मेरे इस उर का, सब शाप-ताप हरलो अघहर।
श्री सुविधि नाथ दो सुविधि बता, मेरे टूटे सब विधि बंधन,
संतप्त हृदय शीतल करदो, शीतल जिन मेरा सुन क्रन्दन।

हे श्रेयनाथ दो मुझे श्रेय, भव बाधा का कर दूँ भंजन,
मेरे उर के दृग खुल जावें, हे वासुपूज्य दो वह अंजन।
श्री विमल विमल पद दो मुझको, युग-युग से भूला भटका हूँ,
करदो अनन्त सब कष्ट अन्त, भव भव में आकर अटका हूँ।
पथ धर्मनाथ अब बतलादो, शाश्वत सुख मुझको मिल जाये,
प्रभु शांतिनाथ मेरे उर में, आ शान्ति निराकुल छा जाये।
हे कुन्थुनाथ होकर कृपालु, मुझपर भी तनिक कृपा करदो,
श्री अरहनाथ अब तो मेरे, वसु अरि का बल विक्रम हर दो।
मेरे मन से यह मोह मल्ल, हे मल्लिनाथ अब दूर करो,
मुनि सुव्रतनाथ सुनो विनती, तृष्णा मेरी चकचूर करो।
नमिनाथ तुम्हारे चरणों में, मैं नमन कर रहा दुखियारा,
हे नेमिनाथ अब बाँह गहो, उद्धार करो मैं हूँ हारा।
तुम नाथ अनाथों के अपने ही, पारसनाथ सुनो मेरी,
शिव धाम मुझे दो वर्द्धमान, मेटो मेरी भव भव फेरी।
'कुमरेश' तुम्हारा दास प्रभो, अब तो मुझ पर करुणा करदो,
बन जाये यह जीवन सुखमय, मुझको प्रभुवर ऐसा वर दो।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादि चतुर्विंशति जिनेभ्यो अनर्घपद प्राप्तये जयमालार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रेरणा

जो भक्ति भाव से प्रेरित हो, पूजन करता है जिनवर की,
उसको सुधि आ जाती अपनी, ममता विसरा जाती परकी।
जग का जंजाल न भाता है, तृष्णा मिट जाती है उर की,
वह मंजिल अपनी पा जाता, या गैल यहाँ शिवपुर की।

इत्याशीर्वादः

श्री त्रिकाल चौबीसी जिन पूजन

श्री निर्वाण आदि तीर्थंकर भूतकाल के तुम्हें नमन।
श्री वृषभादिक वीर जिनेश्वर वर्तमान के तुम्हें नमन।।
महापद्म अनंतवीर्य तीर्थंकर भावी तुम्हें नमन।
भूत भविष्यत् वर्तमान की चौबीसी को करूँ नमन।।

ॐ ह्रीं भरत क्षेत्र संबंधि भूत भविष्य वर्तमान जिनतीर्थंकर समूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं भूत भविष्य वर्तमान जिनतीर्थंकर समूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं भूत भविष्य वर्तमान जिनतीर्थंकर समूह ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

सात तत्व श्रद्धा के जल से मिथ्या मल को दूर करूँ।
जन्म जरा भय मरण नाश हित पर विभाव चकचूर करूँ।।
भूत भविष्यत् वर्तमान की चौबीसी को नमन करूँ।
क्रोध लोभ मद माया हर कर मोह क्षोभ को शमन करूँ।।भूत.।।

ॐ ह्रीं भूत, भविष्य वर्तमान जिनतीर्थंकरेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

नव पदार्थ को ज्यों का त्यों लख वस्तु तत्त्व पहचान करूँ।
भव आताप नशाऊँ मैं निज गुण चंदन बहुमान करूँ।।भूत.।।

ॐ ह्रीं भूत, भविष्य वर्तमान जिनतीर्थंकरेभ्यो संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

षट्द्रव्यों से पूर्ण विश्व में आत्म द्रव्य का ज्ञान करूँ।
अक्षय पद पाने को अक्षत गुण से निज कल्याण करूँ।।भूत.।।

ॐ ह्रीं भूत, भविष्य वर्तमान जिनतीर्थंकरेभ्यो अक्षयपद प्राप्तयें अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

जानूँ मैं पंचास्ति काय को पंच महाव्रत शील धरूँ।
काम व्याधि का नाश करूँ निज आत्म पुष्प की सुरभि वरूँ।।भूत.।।

ॐ ह्रीं भूत, भविष्य वर्तमान जिनतीर्थंकरेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध भाव नैवेद्य ग्रहण कर क्षुधा रोग को विजय करूँ।
तीन लोक चौदह राजु ऊँचे में मोहित अब न फिरूँ।।भूत.।।

ॐ ह्रीं भूत, भविष्य वर्तमान जिनतीर्थंकरेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान दीप की विमल ज्योति से मोह तिमिर क्षय कर मानूँ।
त्रिकालवर्ती सर्व द्रव्य गुण पर्यायें युगपत जानूँ।।भूत.।।

ॐ ह्रीं भूत, भविष्य वर्तमान जिनतीर्थंकरेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

निज समान सब जीव जानकर षट कायक रक्षा पालूँ।
शुक्ल ध्यान की शुद्ध धूप से अष्ट कर्म क्षय कर डालूँ।।भूत.।।

ॐ ह्रीं भूत, भविष्य वर्तमान जिनतीर्थंकरेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच समिति त्रय गुप्ति पंच इन्द्रिय निरोध व्रत पंचाचार।
अट्ठाईस मूल गूण पालूँ पंच लब्धि फल मोक्ष अपार।।भूत.।।

ॐ ह्रीं भूत, भविष्य वर्तमान जिनतीर्थंकरेभ्यो मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

छियालीस गुण सहित दोष अष्टादश रहित बनूँ अरहन्त।
गुण अनन्त सिद्धों के पाकर लूँ अनर्घ पद हे भगवन्त।।भूत.।।

ॐ ह्रीं भूत, भविष्य वर्तमान जिनतीर्थंकरेभ्यो अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री भूतकाल चौबीसी

जय निर्वाण, जयति सागर, जय महासाधु, जय विमल, प्रभो।
जय शुद्धाभ, देव जय श्रीधर, श्रीदत्त सिद्धाभ, विभो।।
जयति अमल प्रभु, जय उद्धार, देव जय अग्नि देव संयम।
जय शिवगण, पुष्पांजलि, जय उत्साह, जयति परमेश्वर नम।।
जय ज्ञानेश्वर, जय विमलेश्वर, जयति यशोधर, प्रभु जय जय।
जयति कृष्णमति, जयति ज्ञानमति, जयति शुद्धमति जय जय जय।।
जय श्रीभद्र, अनंतवीर्य जय भूतकाल चौबीसी जय।
जंबूद्वीप सुभरत क्षेत्र के जिन तीर्थंकर की जय जय ।।

ॐ ह्रीं भरत क्षेत्र संबंधि भूतकाल चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री वर्तमान काल चौबीसी

ऋषभदेव, जय अजितनाथ, प्रभु संभव स्वामी, अभिनन्दन।
सुमतिनाथ, जय जयति पद्मप्रभु, जय सुपार्श्व, चंदा प्रभु जिन।।
पुष्पदंत, शीतल, जिन स्वामी जय श्रेयांस नाथ भगवान।
वासुपूज्य, प्रभु विमल, अनंत, सु धर्मनाथ, जिन शांति महान।।
कुन्थुनाथ अरनाथ, मल्लि, प्रभु मुनिसुव्रत, नमिनाथ, जिनेश।
नेमिनाथ, प्रभु पार्श्वनाथ, प्रभु महावीर, प्रभु महा महेश।।
पूज्य पंच कल्याण विभूषित वर्तमान चौबीसी जय।
जंबूद्वीप सुभरत क्षेत्र के तीर्थंकरेभ्यो प्रभु की जय जय।।

ॐ ह्रीं भरत क्षेत्र संबंधि वर्तमान चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री भविष्य काल चौबीसी

जय प्रभु महापद्म सुरप्रभ, जय सुप्रभ, जयति स्वयंप्रभु, नाथ।
सर्वायुध, जयदेव, उदयप्रभ, प्रभादेव, जय उदंक नाथ।।
प्रश्नकीर्ति, जयकीर्ति जयति जय पूर्ण बुद्धि, निःकषाय जिनेश।
जयति विमल प्रभु जयति बहुल प्रभु, निर्मल, चित्र गुप्ति, परमेश।।
जयति समाधि गुप्ति, जय स्वयंभू, जय कंदर्प, देव जयनाथ।
जयति विमल, जय दिव्यवाद, जय जयति अनंतवीर्य, जगन्नाथ।।
जंबूद्वीप सुभरत क्षेत्र के तीर्थंकरेभ्यो प्रभु की जय जय।
भूत, भविष्यत् वर्तमान त्रय चौबीसी की जय जय जय ।।

ॐ ह्रीं भरत क्षेत्र संबंधि भविष्यकाल चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

तीनकाल त्रय चौबीसी के नमूँ बहत्तर तीर्थंकर।
विनयभक्ति से श्रद्धापूर्वक पाऊँ निज पद प्रभु सत्वर।।
मैंने काल अनादि गंवाया पर पदार्थ में रच पचकर।
पर भावों में मग्न रहा मैं निज भावों से बच बचकर।।
इसीलिये चारों गतियों के कष्ट अनंत सहे मैंने।
धर्म मार्ग पर दृष्टि न डाली कर्म कुपंथ गहे मैंने।।
आज पुण्य संयोग मिला प्रभु शरण आपकी मैं आया।
भव भव के अघ नष्ट हो गये मानों चिंतामणि पाया।।
हे प्रभु मुझको विमल ज्ञान दो सम्यक् पथ पर आ जाऊँ।
रत्नत्रय की धर्म नाव चढ़ भव सागर से तर जाऊँ।।
सम्यक् दर्शन अष्ट अंग सह अष्टभेद सह सम्यक् ज्ञान।
तेरह विध चारित्र धारलूँ द्वादश तप भावना प्रधान।।
हे जिनवर आशीर्वाद दो निज स्वरूप में रम जाऊँ।
निज स्वभाव अवलम्बन द्वारा शाश्वत निज पद प्रगटाऊँ।।

ॐ ह्रीं भरत क्षेत्र संबंधि भूत, भविष्य, वर्तमान जिनतिर्थंकरेभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तीन काल की त्रय चौबीसी की महिमा है अपरम्पार।
मन-वच-तन जो ध्यान लगाते वे हो जाते भव से पार।।

इत्याशीर्वादः

श्री अनंत तीर्थंकर पूजन

ढाई द्वीप के भूतकाल में हुए अनंतों तीर्थंकर।
वर्तमान में भी होते हैं ढाई द्वीप में तीर्थंकर।।
अरु भविष्य में भी अनंत तीर्थंकर होंगे मंगलकर।
इन सबको वन्दन करता हूँ विनयभाव उर में धर कर।।
भक्तिभाव से अनन्त तीर्थंकर की करता हूँ पूजन।
सकल तीर्थंकर वन्दन कर पाऊँ प्रभु सम्यक् दर्शन।।

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती अनन्त तीर्थंकर जिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती अनन्त तीर्थंकर जिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती अनन्त तीर्थंकर जिनेन्द्र अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक

वीरछंद

रत्नत्रय रूपी सम्यक् जल की धारा उर लाऊँ आज।
जन्म जरा मरणादि रोग हर मैं भी पाऊँ निज पदराज।।
भूत विद्य भावी कालों के तीर्थंकर भगवन्त अनन्त।
विनय भक्ति से वन्दन करता दुखदायी भव का हो अन्त।।

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती अनन्त तीर्थंकर जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय रूपी सम्यक् चंदन का तिलक लगाऊँ आज।
भवातापज्वर पूर्ण नाश कर मैं भी पाऊँ निज पद राज।।
भूत विद्य भावी कालों के तीर्थंकर भगवन्त अनन्त।
विनय भक्ति से वन्दन करता दुखदायी भव का हो अन्त।।

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती अनन्त तीर्थंकर जिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय रूपी सम्यक् अक्षत् प्रभु चरण चढ़ाऊँ आज।
अक्षयपद की प्राप्ति करूँ प्रभु मैं भी पाऊँ निज पदराज।।

भूत विद्य भावी कालों के तीर्थंकर भगवन्त अनन्त।
विनय भक्ति से वन्दन करता दुखदायी भव का हो अन्त।।

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती अनन्त तीर्थंकर जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तयें अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रयरूपी गुण पुष्पों से निज हृदय सजाऊँ आज।
कामबाण की व्यथा विनाशूँ मैं भी पाऊँ निज पदराज।।
भूत विद्य भावी कालों के तीर्थंकर भगवन्त अनन्त।
विनय भक्ति से वन्दन करता दुखदायी भव का हो अन्त।।

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती अनन्त तीर्थंकर जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रयरूपी अनुभव रसमय चरू चरण चढ़ाऊँ आज।
अनाहार सुख प्राप्त करूँ प्रभु मैं भी पाऊँ निज पदराज।।
भूत विद्य भावी कालों के तीर्थंकर भगवन्त अनन्त।
विनय भक्ति से वन्दन करता दुखदायी भव का हो अन्त।।

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती अनन्त तीर्थंकर जिनेन्द्राय क्षुदा रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रयरूपी दीपक की जग मग ज्योति जगाऊँ आज।
मोह तिमिर मिथ्यात्व नष्ट कर मैं भी पाऊँ निज पदराज।।
भूत विद्य भावी कालों के तीर्थंकर भगवन्त अनन्त।
विनय भक्ति से वन्दन करता दुखदायी भव का हो अन्त।।

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती अनन्त तीर्थंकर जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रयरूपी स्वध्यानमय धूप हृदय में लाऊँ आज।
अष्टकर्म सम्पूर्ण नष्ट कर मैं भी पाऊँ निज पदराज।।
भूत विद्य भावी कालों के तीर्थंकर भगवन्त अनन्त।
विनय भक्ति से वन्दन करता दुखदायी भव का हो अन्त।।

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती अनन्त तीर्थंकर जिनेन्द्राय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रयरूपी तरु के फल ज्ञान शक्ति से लाऊँ आज।
पूर्ण मोक्षफल प्राप्त करूँ प्रभु मैं भी पाऊँ निज पदराज।।
भूत विद्य भावी कालों के तीर्थंकर भगवन्त अनन्त।
विनय भक्ति से वन्दन करता दुखदायी भव का हो अन्त।।

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती अनन्त तीर्थंकर जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रयरूपी गुण अर्घ्य बनाऊँ प्रभु निज हित के काज।
पद अनर्ध्य प्रगटाऊँ शाश्वत मैं भी पाऊँ निज पदराज।।
भूत विद्य भावी कालों के तीर्थंकर भगवन्त अनन्त।
विनय भक्ति से वन्दन करता दुखदायी भव का हो अन्त।।

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती अनन्त तीर्थंकर जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महाअर्घ्य

वीरछंद

तीन लोक में मध्य लोक है मध्य लोक में जम्बू द्वीप।
द्वितीय धातकीखंड द्वीप है जो भव्यों के सदा समीप।।
तीजे पुष्कर का है आधा पुष्करार्ध नाम विख्यात।
ये ही ढ़ाई द्वीप कहाते पंचमेरू इनमें प्रख्यात।।

मेरु सुदर्शन, विजय, अचल, मंदर, विद्युन्माली क्रमक्रम।
इनके दक्षिण भरत तथा उत्तर में ऐरावत अनुपम।।
इन पाँचों के पूरब पश्चिम नाम विदेह क्षेत्र विख्यात।
इन सबमें त ीर्थंकर होते कर्म भूमि हैं ये प्रख्यात।।

इन सब में पाँचों कल्याणक वाले तीर्थंकर होते।
गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, मोक्ष कल्याण ये पाँचों होते।।
पर विदेह में तीन कल्याणक वाले भी प्रभु होते हैं।
तप अरु ज्ञान, मोक्ष कल्याणक वाले जिनवर होते हैं।।

दो कल्याणक वाले तीर्थंकर भी इनमें होते हैं।
ज्ञान और मोक्ष कल्याणक पवित्र इनके होते हैं।।
अरु भविष्य में भी अनंत तीर्थंकर होंगे इसी प्रकार।
स्वयं तिरेंगे अन्यों को भी तारेंगे ले जा भव पार।।
त्रिकालवर्ती अनंत तीर्थंकर प्रभुओं को है विनय प्रणाम।
नाम अनंतानंत आपके कैसे जपूँ आपके नाम।।
तीन लोक के सकल तीर्थंकर पूजन का जागा भाव।
पूजन का फल यही चाहता मैं भी दुख का करूँ अभाव।।

दोहा

महा अर्घ्य अर्पण करूँ, तीर्थंकर जिनराज।
नमूँ अनंतानंत प्रभु त्रिकालवर्ती आज।।

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती अनन्त तीर्थंकर जिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

छंद-दिग्वधू

रागों की हवेली में रहते आये हो तुम।
अतएव अनंते दुख सहते आये हो तुम।।

मिथ्या भ्रम मद पीकर चहुँगति में भ्रमण किया।
भव पीड़ा हरने को निज ज्ञान न हृदय लिया।।
भवदुख धारा में ही बहते आये हो तुम।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम।।

सुख पाना चाहो तो सत्पथ पर आ जाओ।
तत्वाभ्यास करके निज निर्णय उर लाओ।।
भव ज्वाला के भीतर जलते आये हो तुम।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम।।

पहिले समकित धन लो उर भेद ज्ञान करके।
मिथ्यात्व मोह नाशो अज्ञान सर्व हर के ।।
शुभ अशुभ जाल में ही जलते आए हो तुम।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम।।

फिर अविरति जय करके अणुव्रत धारण करना।
फिर तीन चौकडी हर संयम निज उर धरना।।
बिन व्रत खोटी गति में जाते आये हो तुम।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम।।

अब दुष्ट प्रमाद नहीं आयेगा जीवन भर।
मिल जायेगा तुमको अनुभव रस का सागर।।
निज अनुभव बिन जग में थमते आए हो तुम।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम।।

झट धर्म ध्यान उर धर आगे बढ़ते जाना।
उर शुक्ल ध्यान लेकर श्रेणी पर चढ़ जाना।।
कर भाव मरण प्रतिपल मरते आये हो तुम।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम।।

फिर यथाख्यात लेकर घातिया नाश करना।
कैवल्य ज्ञान रवि पा सर्वज्ञ स्वपद वरना।।
निज ज्ञान बिना सुध बुध खोते आए हो तुम।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम।।

फिर अघातिया क्षय हित योगों को विनशाना।
कर शेष कर्म सब क्षय सिद्धत्व स्वगुण पाना।।

ध्रुवध्यान बिना भव में भ्रमते आये हो तुम।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम।।

इस विधि से ही चेतन निज शिव सुख पाओगे।
शिव पथ खुलते ही झट शिवपुर में जाओगे।।
पर घर में रह बहुदुख पाते आये हो तुम।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम।।

निज मुक्ति वधु के संग परिणय होगा पावन।
पाओगे सौख्य अतुल तुम मोक्ष मध्य प्रतिक्षण।।
शिवसुख भी भव जल में धोते आये हो तुम।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम।।

लौटोगे फिर न कभी ध्रुव सिद्ध शिला पाकर।
ध्रुवधाम राज्य पाकर हो जाओगे शिवकर।।
अपने अनंत गुण बिन रोते आये हो तुम।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम।।

आनन्द अतीन्द्रिय की धारा है महामनोज्ञ।
सिद्धों समान सब ही प्राणी हैं पूरे योग्य।।
अपना स्वरूप भूले क्यों बौराये हो तुम।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम।।

निज ज्ञान क्रिया से ही मिलता है सिद्ध स्वपद।
सब ही त्रिकालवर्ती जिन तजते सकल अपद।।
निज पद तज पर पद ही भजते आये हो तुम।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम।।

जितने तीर्थेश हुए सबने पर पद त्यागे।
अपने स्वभाव में ही प्रतिपल प्रतिक्षण लागे।।
अब तक आस्रव को ही ध्याते आये हो तुम।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम।।

अवसर अपूर्व पाया निज का चिन्तन करलो।
तीर्थंकर दर्शन कर सारे बन्धन हरलो।।
जब भी अवसर आया खोते आये हो तुम।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम।।

मैं बार - बार वन्दूँ तीर्थेश अनंतानंत।
चहुँगति दुख हर पाऊँ पंचमगति सुख भगवंत।।
पर के ही गीत सदा गाते आये हो तुम।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम।।

सदगुरु की सीख सुनो फिर कभी न उलझोगे।
बोलो कब चेतोगे कब तक तुम सुलझोगे।।
कब से कल कल कल कल कहते आये हो तुम।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम।।

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती अनन्त तीर्थंकर जिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आशीर्वाद

वीरछंद

ढ़ाईद्वीप के मध्य हुए हो रहे तथा होंगे जिनराज।
भूत विद्य भावी अनंत तीर्थंकर मैंने पूजे आज।।
तीर्थंकर प्रभु के चरणों में प्रभु पाऊँ सम्यक् दर्शन।
रत्नत्रय को धारण करके नाश करूँ भव के बंधन।।

इत्याशीर्वादः

श्री आदिनाथ जिन पूजन - 1

नाभिराय मरुदेवी के नन्दन, आदिनाथ स्वामी महाराज।
सर्वार्थसिद्धितैं आप पधारे, मध्यलोक माहीं जिनराज।।
इन्द्रदेव सब मिलकर आये, जन्म महोत्सव करने काज।
आह्वानन सब विधि मिल करके, अपने कर पूजें प्रभु आज।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

क्षीरोदधि का उज्ज्वल जल ले, श्री जिनवर पद पूजन जाय।
जन्म जरा दुख मेटन कारन, ल्याय चढ़ाऊँ प्रभु के पांय।।
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि-बलि जाऊँ मनवचकाय।
हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पांय।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलयागिरि चन्दन दाह निकन्दन, कंचन झारी में भर ल्याय।
श्रीजी के चरण चढ़ाओ भविजन, भव आताप तुरत मिट जाय।।श्री।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभशालि अखंडित सौरभमंडित, प्रासुक जलसों धोकर ल्याय।
श्रीजी के चरण चढ़ाओ भविजन, अक्षय पद को तुरत उपाय।।श्री।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तयें अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

कमल केतकी बेल चमेली, श्रीगुलाब के पुष्प मंगाय।
श्रीजी के चरण चढ़ाओ भविजन, कामबाण तुरत नसि जाय।।श्री।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज लीना षट्-रस भीना, श्री जिनवर आगे धरवाय।
थाल भराऊँ क्षुधा नसाऊँ, ल्याऊँ प्रभु के मंगल गाय।।श्री।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जगमग-जगमग होत दशों दिश, ज्योति रही मंदिर में छाय।
श्रीजी के सन्मुख करत आरती, मोहतिमिर नासै दुःखदाय।।श्री।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अगर कपूर सुगन्ध मनोहर चन्दन कूट सुगन्ध मिलाय।
श्रीजी के सन्मुख खेय धुपायन, कर्म जरें चहुँगति मिटि जाय।।श्री।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल और बादाम सुपारी, केला आदि छुआरा ल्याय।
महा मोक्षफल पावन कारन, ल्याय चढ़ाऊँ प्रभु के पांय।।श्री।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुचि निर्मल नीरं गन्ध सुअक्षत, पुष्प चरू ले मन हरषाय।
दीप धूप फल अर्घ्य सुलेकर, नाचत ताल मृदंग बजाय।।श्री।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच कल्याणक

दोहा

सर्वार्थ सिद्धि तैं चये, मरुदेवी उर आय।
दोज असित आषाढ़ की, जजूँ तिहारे पांय।।

ॐ ह्रीं श्रीआषाढ़कृष्णद्वितीयायां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चैतवदी नौमी दिना, जन्म्या श्री भगवान।
सुरपति उत्सव अति कर्या, मैं पूजौं धर ध्यान।।

ॐ ह्रीं श्री चैत्रकृष्णनवम्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तृणवत्ऋद्धि सब छांड़ि के, तप धार्यो वन जाय।
नौमी चैत्र असेत की, जजूँ तिहारे पांय।।

ॐ ह्रीं श्री चैत्रकृष्णनवम्यां तपःकल्याणकप्राप्ताय श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

फागुन वदि एकादशी, उपज्यो केवल ज्ञान।
इन्द्र आय पूजा करी, मैं पूजों इह थान।।

ॐ ह्रीं श्रीफाल्गुनकृष्णएकादश्यां ज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

माघ चतुर्दशि कृष्ण की, मोक्ष गये भगवान।
भवि जीवों को बोधिके, पहुँचे शिवपुर थान।।

ॐ ह्रीं श्री माघकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षकल्याणकप्राप्ताय श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

आदीश्वर महाराज मैं विनती तुमसे करूँ।
चारों गति के मांही मैं दुख पायो सो सुनो।।

अष्टकर्म मैं हूँ एकलो, यह दुष्ट महादुख देत हो।
कबहूँ इतर निगोद में मोकूँ, पटकत करत अचेत हो।।
म्हारी दीनतणी सुन वीनती।।टेक।।
प्रभु कबहूँक पटक्यो नरक में, जठै जीव महादुख पाय हो।
नित उठि निरदई नारकी, जठै करै परस्पर घात हो।।म्हारी.।।
प्रभु नरक तणां दुःख अब कहूँ, जठै करै परस्पर घात हो।
कोइयक बांध्यो खंभसों, पापी दे मुदगर की मार हो।।म्हारी.।।
कोइयक काटे करोतसों, पापी अंगतणी दोय फाड़ हो।
प्रभु यह विधि दुःख भुगत्या घणा, फिर गति पाई तिरयंच हो।।म्हारी.।।
हिरणा बकरा बाछला, पशु दीन गरीब अनाथ हो।
प्रभु मैं ऊँट बलद भैंसो भयो, जापैं लदियो भार अपार हो।।म्हारी.।।
नहि चाल्यौ जठै गिर पर्‌यो, पापी दे सोटन की मारहो।
प्रभु कोईयक पुण्य संजोगसूँ, मैं तो पायो स्वर्ग निवास हो।।म्हारी.।।

देवांगना संग रमि रह्यो जठै भोगनिको परिपात हो।
प्रभु संग अप्सरा रमि रह्यो, करकर अति अनुराग हो।म्हारी.।।
कबहुँक नंदनवन विषैं प्रभु, कबहुँक वन गृह माँही हो।
प्रभु यह विधिकाल गमायकैं, फिर माला गई मुरझाय हो।म्हारी.।।
देव तिथि सब घट गई, फिर उपज्यो सोच अपार हो।
सोच करत तनखिर पड्यो, फिर उपज्यो गरभ में जाय हो।म्हारी.।।
प्रभु गर्भतणा दुःख अब कहुँ, जठै संकड़ाई की ठौर हो।
हलन चलन नहीं कर सक्यो, जठै सघन कीच घनघोर हो।म्हारी.।।
माता खावे चरपरो, फिर लागै तन संताप हो।
प्रभु ज्यों जननी तातो भखै, फिर उपजे तन संताप हो।म्हारी.।।
औंधे मुख झूल्यो रह्यो, फेर निकसन कौन उपाय हों।
कठिन-कठिनकर नींसर्‌यो, जैसे निसरै जंती में तार हो।म्हारी.।।
प्रभु फिर निकसत ही धरत्यां पड्‌यो, फिर लागी भूख अपार हो।
रोय रोय बिलख्यो घणों, दुःख वेदन को नहीं पार हो।म्हारी.।।
प्रभु दुख मेटन समरथ धनी, यांतैं लागूँ तिहारे पाँय हो।
सेवक अरज करै प्रभु मोकूँ, भवदधि पार उतार हो।म्हारी.।।

दोहा

श्रीजी की महिमा अगम है, कोई न पावे पार।
मैं मति अल्प अज्ञान हों, कौन करै विस्तार।।

ॐ ह्रीं श्री श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये जयमाला महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विनती ऋषभ जिनेश की, जो पढ़सी मनलाय।
स्वर्गों में संशय नहीं, निहचै शिवपुर जाय।।

(पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्री आदिनाथ जिन पूजन - 2

दोहा

नमूँ जिनेश्वर देव मैं, परम सुखी भगवान,
आराधूं शुद्धात्मा, पाऊँ पद निर्वाण।

हे धर्म पिता सर्वज्ञ जिनेश्वर, चेतन मूर्ति आदि जिनं,
मेरा ज्ञायक रूप दिखाने, दर्पण सम प्रभु आदि जिनं।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण पा, सहज सुधारस आप पिया,
मुक्ति मार्ग दर्शा कर स्वामी, भव्यों प्रति उपकार किया।

दोहा साधक शिवपद का अहो, आया प्रभु के द्वार,
सहज शुद्धातम भावना, जिन पूजा का सार।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

चेतनमय है सुख सरोवर, श्रद्धा पुष्प सुशोभित है,
आनन्द मोती चुगते हंस, सुकेलि करें सुख पावत हैं।
स्वानुभूति के कलश कनकमय, भरि-भरि प्रभु को पूजें हैं,
ऐसे धर्मी निर्मल जल से, मोह मैल को धोते हैं।

अथाह सरवर आत्मा, आनन्द रस छलकाय,
आत्म शान्त रस पान से, जन्म मरण मिट जाय।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मग्न प्रभु चेतन सागर में, शान्ति जल से न्हाय रहे,
मोह मैल को दूर हटाकर, भवाताप से रहित भये।
तृप्त हो रहा मोह ताप से, सम्यक् रस में स्नान करूँ,
समरस चन्दन से पूजूं अरु, तेरा पथ अनुसरण करूँ।

चेतन रस को घोलकर, चारित्र सुगन्ध मिलाय,
भाव सहित पूजा करूँ, शीतलता प्रगटाय।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्ष अगोचर प्रभो आप, पर अक्षत से मैं पूजा करूँ,
अक्षातरित ज्ञान को करके, अक्षत पद को प्राप्त करूँ।
अन्तर्लक्षी ज्ञान के द्वारा, प्रभुवर का सम्मान करूँ,
पूजूँ जिनवर परमभाव से, निज सुख का आस्वाद करूँ।

अक्षय सुख का स्वाद लूँ, इन्द्रिय मन के पार,
सिद्ध प्रभु सुख मगन ज्यों, तिष्ठे मोक्ष मंझार।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

निष्काम अतीन्द्रिय देव! अहो पूजूँ मैं श्रद्धा सुमन चढ़ा,
कृतकृत्य निष्काम हुआ, तब मुक्ति मार्ग में कदम बढ़ा।
गुण अनंतमय पुष्प सुगन्धित, विकस रहे हैं आतम में,
कभी नहीं मुरझावे, परमानन्द पाया शुद्धातम में।

रत्नत्रय के पुष्प शुभ, खिले आत्म उद्यान,
सहजभाव से पूजते हर्षित हूँ भगवान।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

तृप्त क्षुधा से रहित जिनेश्वर, क्या नैवेद्य से पूजा करूँ?
अनुभव रसमय नैवेद्य सांचा, तुम चरणों में प्राप्त करूँ।
चाह नहीं किंचित भी स्वामी, स्वयं स्वयं में तृप्त रहूँ,
सादि अनंत मुक्ति पद जिनवर, आत्मध्यान से प्रकट लहूँ।

जग का झूठा स्वाद ये, चाख्यो बार अनंत,
वीतराग निज स्वाद लूँ, होवे भव का अन्त।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अगणित दीपों का प्रकाश भी, दूर नहीं अज्ञान करे,
आत्मज्ञान की एक किरण ही, मोहतिमिर को तुरत हरे।
अहो ज्ञान की अद्भुत महिमा, मोही नहिं पहिचान सकें,
आत्मज्ञान का दीप जलाकर, साधक तेरी पूजा करें।
स्वानुभूति प्रकाश में भासे आत्म स्वरूप,
राग पवन लागे नहीं, केवल ज्योति अनूप।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

द्वेष भाव तो नहीं रहा, रागांश मात्र निःशेष हुआ,
ध्यान अग्नि प्रगटी ऐसी, तहाँ कर्मेन्धन सब भस्म हुआ।
अहो आत्मशुद्धि अद्भुत है, धर्म सुगन्धी फैल रही,
दशलक्षण की प्राप्ती करने, प्रभु चरणों की शरण गही।
स्व सन्मुख हो अनुभवूँ, ज्ञानानन्द स्वभाव,
निज में ही हो लीनता, विनसै सर्व विभाव।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक् दर्शन मूल अहो, चारित्र वृक्ष पल्लवित हुआ,
स्वानुभूति मय अमृतफल, आस्वादूँ अति ही तृप्त हुआ।
मोक्ष महाफल भी आवेगा, निश्चय ही विश्वास अहो,
निर्विकल्प हो पूर्ण लीनता, फल पूजा का प्रभु फल हो।
निर्वांछिक आनन्दमय, चाह न रही लगार,
भेद न पूजक पूज्य का, फल पूजा का सार।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक् तत्त्व स्वरूप न जाना, नहीं यथार्थतः पूज सका,
राग भाव को रहा पोषता, वीतरागता से चूका।

काल लब्धि जागी अंतर में , भास रहा है सत्य स्वरूप,
पाऊँगा निज सम्यक् प्रभुता, भास रही निज माँही अनूप।
सेवा सत्य स्वरूप की, ये ही प्रभु की सेव,
जिन सेवा व्यवहार से, निश्चय आतम देव।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच कल्याणक अर्घ

द्वितीया कृष्ण असाढ़, मरु देवी के गर्भ में,
आय बसे प्रभु आप, सर्वार्थ सिद्धि विमान तैं।
गर्भवास दुख रूप तहाँ भी प्रभु आनन्दमय,
माँ को भी नहीं कष्ट, रत्न पिटारे ज्यों रहे।

ॐ ह्रीं श्री आषाढ़कृष्णद्वितीयायां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नवमी कृष्णा चैत, भयो जन्म कल्याण मय,
नरकों में भी नाथ, इक क्षण को साता भई।
इन्द्रादिक भी आय, कियो महोत्सव जन्म को,
मेरू पर अभिषेक, क्षीरोदधि जल तैं भयो।

ॐ ह्रीं श्री चैत्रकृष्णनवम्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भासो जगत असार, देख निधन नीलांजना,
नवमी कृष्णा चैत्र परम दिगम्बर पद धरो।
चिदानन्द पद सार, ध्यावन को मुनि पद धरो,
लौकान्तिक सुर आय, अनुमोदा वैराग्य को।

ॐ ह्रीं श्री चैत्रकृष्णनवम्यां तपःकल्याणकप्राप्ताय श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रगट्यो केवल ज्ञान, फाल्गुन कृष्ण एकादशी,
धर्म तीर्थ सुखकार, हुआ प्रवर्तित आप से।

समझो तत्त्व स्वरूप, दिव्य देशना श्रवण कर,
पाई मुक्ति अनूप, भव्यन निज पुरुषार्थ में।

ॐ ह्रीं श्रीफाल्गुनकृष्णएकादश्यां ज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पायो अविचल थान, चौदश कृष्णा माघ दिन,
गिरि कैलाश महान, तीर्थ प्रगट जग में भयो।
सहज मुक्ति अविकार, शुद्धातम की भावना,
वर्ते प्रभु सुखकार, मैं भी तिष्ठूँ आप ढ़िग।

ॐ ह्रीं श्री माघकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षकल्याणकप्राप्ताय श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

आदीश्वर वन्दूं सदा, चिदानन्द छलकाय,
चरण शरण में आपकी, मुक्ति सहज दिखलाय।

धन्य ध्यान में आप विराजे, देख रहे प्रभु आतमराम,
ज्ञाता द्रष्टा अहो जिनेश्वर, परम ज्योतिमय आनन्दधाम।
रत्नत्रय आभूषण सांचे, जड़ आभूषण का क्या काम,
रागद्वेष निःशेष हुए हैं, वस्त्र-शस्त्र का लेश न नाम।
तीनलोक के स्वयं मुकुट हो, स्वर्ण मुकुट का है क्या काम,
प्रभु त्रिलोक के नाथ कहाओ, फिर भी निज में ही विश्राम।
भव्य निहारें अहो आपको, आप निहारें अपनी ओर,
धन्य आपकी वीतरागता, प्रभु प्रभुता का ओर न छोर।
आप नहीं देते कुछ भी पर भक्त आपसे ले लेते,
दर्शन कर उपदेश श्रवण कर, तत्वज्ञान को पा लेते।

भेदज्ञान अरु स्वानुभूति कर शिव पथ में लग जाते हैं,
अहो आप सम स्वाश्रय द्वारा, निज प्रभुता प्रगटाते हैं।
जब तक मुक्ति नहीं होती, प्रभु पुण्य सातिशय होने से,
चक्री इन्द्रादिक के वैभव मिलें अन्न संग के तुष से।
पर उनको चाहे नहीं ज्ञानी, मिलें किन्तु आसक्त न हो,
निजानन्द अमृत रस पीते, विष फल चाहे कौन अहो।
भावैं नित वैराग्य भावना, क्षण में छोड़ चले जाते,
मुनि दीक्षा ले परम तपस्वी, निज में ही रमते जाते।
घोर परीषह उपसर्गों में मन सुमेरु नहीं कम्पित हो,
क्षण-क्षण आनन्दरस वृद्धिगंत, क्षपक श्रेणि आरोहण हो।
शुक्ल ध्यान बल घाति विनष्टे, अर्हंत् दशा प्रगट होती,
अल्पकाल में सर्व कर्ममल, वर्जित मुक्ति सहज होती।
परमानन्द मय दर्श आपका, मंगल उत्तम शरण ललाम,
निरावरण निर्लेप परम प्रभु, सम्यक् भावे सहज प्रणाम।
ज्ञान माँहि स्थापन कीना, स्व सन्मुख होकर अभिराम,
स्वयं सिद्ध सर्वज्ञ स्वभावी, प्रत्यक्ष निहारूँ आतमराम।

प्रभु नन्दन मैं आपका, हूँ प्रभुता सम्पन्न,
अल्पकाल में आपके, तिष्ठुँगा आसन्न।

ॐ ह्रीं श्री श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दर्शन ज्ञान स्वभाव मय, सुख अनंत की खान,
जाके आश्रय प्रगटता, अविचल पद निर्वान।

।। इत्याशीर्वाद ।।

श्री ऋषभदेव जिन पूजन - 3

जय आदिनाथ जिनेन्द्र जय जय प्रथम जिन तीर्थंकरम्।
जय नाभि सुत मरुदेवी नन्दन ऋषभप्रभु जगदीश्वरम्।।
जय जयति त्रिभुवन तिलक चूड़ामणि वृषभ विश्वेश्वरम्।
देवाधि देव जिनेश जय जय, महाप्रभु परमेश्वरम्।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

समकित जल दो प्रभु आदि निर्मल भाव धरूँ।
दुख जन्म मरण मिट जाय जल से धार करूँ।।
जय ऋषभदेव जिनराज शिव सुख के दाता।
तुम सम हो जाता है स्वयं को जो ध्याता।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

समकित चंदन दो नाथ भव संताप हरूँ।
चरणों में मलय सुगन्ध हे प्रभु भेंट करूँ।। जय ऋषभदेव।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

समकित तंदुल की चाह मन में मोद भरे।
अक्षत से पूजूं देव अक्षय पद संवरे।। जय ऋषभदेव।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तयें अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

समकित के पुष्प सुरम्य दे दो हे स्वामी।
यह काम भाव मिट जाय हे अन्तर्यामी ।। जय ऋषभदेव।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

समकित चरु करो प्रदान मेरी भूख मिटे।
भव भव की तृष्णा ज्वाल उर से दूर हटे।। जय ऋषभदेव।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समकित दीपक की ज्योति मिथ्यातम भागे।
देखूं निज सहज स्वरूप निज परिणति जागे।।जय ऋषभदेव।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

समकित की धूप अनूप कर्म विनाश करे।
निज ध्यान अग्नि के बीच आठों कर्म जरे।।जय ऋषभदेव।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

समकित फल मोक्ष महान पाऊँ आदि प्रभो।
हो जाऊँ सिद्ध समान सुखमय ऋषभ विभो।।जय ऋषभदेव।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय महामोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

वसु द्रव्य अर्घ जिनदेव चरणों में अर्पित।
पाऊँ अनर्घपद नाथ अविकल सुख गर्भित।। जय ऋषभदेव।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच कल्याणक

शुभ आषाढ़ कृष्ण द्वितीया को मरुदेवी उर में आये।
देवों ने छह मास पूर्व से रत्न अयोध्या बरसाये।।
कर्म भूमि के प्रथम जिनेश्वर तज सर्वार्थसिद्ध आये।
जय जय ऋषभनाथ तीर्थंकर तीन लोक ने सुख पाये।।

ॐ ह्रीं श्री आषाढ़कृष्णद्वितीया दिनेगर्भमंगल प्राप्ताय ऋषभदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चैत्र कृष्ण नवमी को राजा नाभिराय गृह जन्म लिया।
इन्द्रादिक ने गिरि सुमेरु पर क्षीरोदधि अभिषेक किया।।
नरक त्रियंच सभी जीवों ने सुख अन्तर्मुहुर्त पाया।
जय जय ऋषभनाथ तीर्थंकर जग में पूर्ण हर्ष छाया।।

ॐ ह्रीं श्री चैत्रकृष्णनवमीदिने जन्ममंगल प्राप्ताय ऋषभदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चैत्र कृष्ण नवमी को ही वैराग्य भाव उर छाया था।
लौकान्तिक सुर इन्द्रादिक ने तप कल्याण मनाया था।।
पंच महाव्रत धारण करके पंच मुष्टि कच लोच किया।
जय जय ऋषभनाथ तीर्थंकर तुमने मुनि पद धार लिया।।

ॐ ह्रीं श्री चैत्रकृष्णनवमीदिने तपमंगल प्राप्ताय ऋषभदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एकादशी कृष्ण फागुन को कर्म घातिया नष्ट हुए।
केवलज्ञान प्राप्त कर स्वामी वीतराग भगवन्त हुए।।
दर्शन, ज्ञान, अनन्तवीर्य, सुख पूर्ण चतुष्टय को पाया।
जय प्रभु ऋषभदेव जगती ने समवशरण लख सुख पाया।।

ॐ ह्रीं श्री फाल्गुनवदी एकादशदिने ज्ञानमंगल प्राप्ताय ऋषभदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

माघ वदी की चतुर्दशी को गिरि कैलाश हुआ पावन।
आठों कर्म विनाशे पाया परम सिद्ध पद मन भावन।।
मोक्ष लक्ष्मी पाई गिरि कैलाश शिखर, निर्वाण हुआ।
जय जय ऋषभनाथ तीर्थंकर भव्य मोक्ष कल्याण हुआ।।

ॐ ह्रीं श्री माघवदी चतुर्दश्याम् महामोक्षमंगल प्राप्ताय ऋषभदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

जम्बूद्वीप सु भरतक्षेत्र में नगर अयोध्यापुरी विशाल।
नाभिराय चौदहवें कुलकर के सुत मरुदेवी के लाल।।
सोलह स्वप्न हुए माता को पन्द्रह मास रत्न बरसे।
तुम आये सर्वार्थसिद्धि से माता उर मंगल सरसे।।
मति श्रुत अवधिज्ञान के धारी जन्मे हुए जन्म कल्याण।
इन्द्रसुरों ने हर्षित हो पाण्डुक शिला किया अभिषेक महान।।

राज्य अवस्था में तुमने जन जन के कष्ट मिटाये थे।
असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प, विद्या षट्कर्म सिखाये थे।।
एक दिवस जब नृत्यलीन सुरि नीलांजना विलीन हुई।
है पर्याय अनित्य आयु उसकी पल भर में क्षीण हुई।।
तुमने वस्तु स्वरूप विचारा जागा उर वैराग्य अपार।
कर चिंतवन भावना द्वादश त्यागा राज्य और परिवार।।
लौकान्तिक देवों ने आकर किया आपका जय जयकार।
आस्रव हेय जानकर तुमने लिया हृदय में संवर धार।।
वन सिद्धार्थ गये वट तरु नीचे वस्त्रों को त्याग दिया।
ॐ नमः सिद्धेभ्यः कहकर मौन हुए तप ग्रहण किया।।
स्वयं बुद्ध बन कर्मभूमि में प्रथम सुजिन दीक्षा धारी।
ज्ञान मनःपर्यय पाया धर पंच महाव्रत सुख कारी।।
धन्य हस्तिनापुर के राजा श्रेयांस ने दान दिया।
एक वर्ष पश्चात् इक्षुरस से तुमने पारणा किया।।
एक सहस्त्र वर्ष तप कर प्रभु शुक्ल ध्यान में हो तल्लीन।
पाप पुण्य आस्रव विनाश कर हुए आत्मरस में लवलीन।।
चार घातिया कर्म विनाशे पाया अनुपम केवलज्ञान।
दिव्य ध्वनि के द्वारा तुमने किया सकलजग का कल्याण।।
चौरासी गणधर थे प्रभु के पहले वृषभसेन गणधर।
मुख्य आर्यिका श्री ब्राम्ही श्रोता मुख्य भरत नृपवर।।
भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में नाथ आपका हुआ विहार।
धर्मचक्र का हुआ प्रवर्तन सुखी हुआ सारा संसार।।
अष्टापद कैलाश धन्य हो गया तुम्हारा कर गुणगान।
बने अयोगी कर्म अघातिया नाश किये पाया निर्वाण।।

आज तुम्हारे दर्शन करके मेरे मन आनन्द हुआ।
जीवन सफल हुआ है स्वामी नष्ट पाप दुख द्वन्द हुआ।।
यही प्रार्थना करता हूँ प्रभु उर में ज्ञान प्रकाश भरो।
चारों गतियों के भव संकट का, हे जिनवर नाश करो।।
तुम सम पद पा जाऊँ मैं भी यही भावना भाता हूँ।
इसीलिए यह पूर्ण अर्घ चरणों में नाथ चढ़ाता हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री श्रीऋषभदेव जिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वृषभ चिन्ह शोभित चरण ऋषभदेव उर धार।
मन वच तन जो पूजते वे होते भव पार।।

।। इत्याशीर्वाद ।।

देखोजी आदीश्वर स्वामी.....

देखोजी आदीश्वर स्वामी, कैसा ध्यान लगाया है।
कर ऊपर कर सुभग विराजै, आसन थिर ठहराया है।।टेक।।
जगत विभूति भूति सम तजकर, निजानन्द पद ध्याया है।
सुरभित श्वासा आशा वासा, नासा दृष्टि सुहाया है।।1 ।।
कंचन वरन चले मन रंच न सुर-गिरि ज्यों थिर थाया है।
जास पास अहि मोर मृगी हरि, जाति विरोध नशाया है।।2।।
शुध उपयोग हुताशन में जिन, वसुविधि समिध जलाया है।
श्यामलि अलकावलि सिर सोहे, मानो धुआँ उड़ाया है।।3।।
जीवन-मरण अलाभ-लाभ जिन सबको नाश बनाया है।
सुर नर नाग नमहिं पद जाके "दोल" तास जस गाया है।।4।।

श्री पद्मप्रभ जिन पूजन

जय जय पद्म जिनेश पद्मप्रभ पावन पद्माकर परमेश।
वीतराग सर्वज्ञ हितंकर पद्मनाथ प्रभु पूज्य महेश।।
भवदुख हर्ता मंगलकर्ता षष्टम तीर्थंकर पद्मेश।
हरो अमंगल प्रभु अनादि का पूजन का है यह उद्देश्य।।

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

शुद्ध भाव का धवल नीर लेकर जिन चरणों में आऊँ।
जन्म मरण की व्याधि मिटाऊँ नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ।।
परम पूज्य पावन परमेश्वर पदमनाथ प्रभु को ध्याऊँ।
रोग शोक संताप क्लेश हर मंगलमय शिव पद पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध भाव का शीतल चंदन ले प्रभु चरणों में आऊँ।
भव आताप व्याधि को नाशूँ नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ।। परम पूज्य।।

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध भाव के उज्ज्वल अक्षत ले जिन चरणों में आऊँ।
अक्षय पद अखंड मैं पाऊँ नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ।। परम पूज्य।।

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तयें अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध भाव के पुष्प सुरभिमय ले प्रभु चरणों में आऊँ।
कामबाण की व्याधिनशाऊँ नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ।। परम पूज्य।।

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध भाव के पावन चरु लेकर प्रभु चरणों में आऊँ।
क्षुधा व्याधि का बीज मिटाऊँ नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ।।परम पूज्य।।

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध भाव की ज्ञान ज्योति लेकर प्रभु चरणों में आऊँ।
मोहनीय भ्रम तिमिर नशाऊँ नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ।।परम पूज्य।।

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध भाव की धूप सुगन्धित ले प्रभु चरणों में आऊँ।
अष्टकर्म विध्वंस करूँ मैं नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ।। परम पूज्य।।

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध भाव सम्यक्त्व सुफल पाने प्रभु चरणों में आऊँ।
शिवमय महामोक्ष फल पाऊँ नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ।।परम पूज्य।।

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्राय महामोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध भाव का अर्घ अष्टविध ले प्रभु चरणों में आऊँ।
शाश्वत निज अनर्घपद पाऊँ नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ।।परम पूज्य।।

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच कल्याणक

शुभदिन माघ कृष्ण षष्ठी को मात सुसीमा हर्षाए।
उपरिम ग्रैवेयक विमान प्रीतिंकर तज उर में आए।।
नव बारह योजन नगरी रच रत्न इन्द्र ने बरसाये।
जय श्री पद्मनाथ तीर्थंकर जगती ने मंगल गाए।।

ॐ ह्रीं श्री माघकृष्णषष्ठीदिने गर्भमंगल प्राप्ताय श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी को कौशाम्बी में जन्म लिया।
गिरि सुमेरु पर इन्द्रादिक ने क्षीरोदधि ने नव्हन किया।।
राजा धरणराज आंगन में सुर सुरपति से नृत्य किया।
जय जय पद्मनाथ तीर्थंकर जग ने जय जय नाद किया।।

ॐ ह्रीं श्री कार्तिककृष्णत्रयोदश्यां जन्ममंगल प्राप्ताय श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी को तुमको जाति स्मरण हुआ।
जागा उर वैराग्य तभी लौकान्तिक सुर आगमन हुआ।।
तरु प्रियंगु मन हर वन में दीक्षा धारी तप ग्रहण हुआ।
जय जय पद्मनाथ तीर्थंकर अनुपम तप कल्याण हुआ।।

ॐ ह्रीं श्री कार्तिककृष्णत्रयोदश्यां तपोमंगल प्राप्ताय श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चैत्र शुक्ल पूर्णिमा मनोहर कर्म घाति अवसान किया।
कौशाम्बी वन शुक्ल ध्यान धर निर्मल केवलज्ञान लिया।।
समवसरण में द्वादश सभा जुड़ी अनुपम उपदेश दिया।
जय जय पद्मनाथ तीर्थंकर जग को शिव संदेश दिया।।

ॐ ह्रीं श्री चैत्रशुक्लपूर्णिमायां ज्ञानमंगल प्राप्ताय श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहन कूट शिखर सम्मेदाचल से योग विनाश किया।
फाल्गुन कृष्ण चतुर्थी को प्रभु भवबंधन का नाश किया।।
अष्टकर्म हर ऊर्ध्व गमन कर सिद्ध लोक आवास लिया।
जयति पद्मप्रभु जिनतीर्थेश्वर शाश्वत आत्मविकास किया।।

ॐ ह्रीं श्री फाल्गुनकृष्णचतुर्थ्यां मोक्षमंगल प्राप्ताय श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

परम श्रेष्ठ पावन परमेष्ठी पुरुषोत्तम प्रभु परमानन्द।
परमध्यानरत परमब्रह्ममय प्रशान्तात्मा पद्मानन्द।।
जय जय पद्मनाथ तीर्थंकर जय जय जय कल्याणमयी।
नित्य निरंजन जनमन रंजन प्रभु अनंत गुण ज्ञानमयी।।
राजपाट अतुलित वैभव को तुमने क्षण में ठुकराया।
निज स्वभाव का अवलम्बन ले परम शुद्ध पद को पाया।।
भव्य जनों को समवसरण में वस्तुतत्त्व विज्ञान दिया।
चिदानन्द चैतन्य आत्मा परमात्मा का ज्ञान दिया।।
गणधर एक शतक ग्यारह थे मुख्य वज्रचामर ऋषिवर।
प्रमुख रात्रिषेणा सुआर्या श्रोता पशु नर सुर मुनिवर।।

सात तत्व छह द्रव्य बंताए मोक्ष मार्ग सन्देश दिया।
तीन लोक के भूले भटके जीवों को उपदेश दिया।।
निःशंकादिक अष्ट अंग सम्यक्दर्शन के बतलाये।
अष्ट प्रकार ज्ञान सम्यक् बिन मोक्ष मार्ग ना मिल पाये।।
तेरह विधि सम्यक् चारित का सत्स्वरूप है दिखलाया।
रत्नत्रय ही पावन शिवपथ सिद्ध स्वपद को दर्शाया।।
हे प्रभु यह उपदेश ग्रहण कर मैं निज का कल्याण करूँ।
निज स्वरूप की सहज प्राप्ति कर पद निर्ग्रन्थ महान वरूँ।।
इष्ट अनिष्ट संयोगों में भी कभी न हर्ष विषाद करूँ।
साम्यभाव धर उर अन्तर में भव का वाद विवाद हरूँ।।
तीन लोक में सार स्वयं के आत्म द्रव्य का भान करूँ।
पर पदार्थ की महिमा त्यागूं सुखमय भेद विज्ञान करूँ।।
द्रव्य भाव पूजन करके मैं आत्म चिंतवन मनन करूँ।
नित्य भावना द्वादश भाऊँ राग द्वेष का हनन करूँ।।
तुम पूजन से पुण्यसातिशय हो भव-भव तुमको पाऊँ।
जब तक मुक्ति स्वपद ना पाऊँ तब तक चरणों में आऊँ।।
संवर और निर्जरा द्वारा पाप पुण्य सब नाश करूँ।
प्रभु नव केवल लब्धि रमा पा आठों कर्म विनाश करूँ।।
तुम प्रसाद से मोक्ष लक्ष्मी पाऊँ निज कल्याण करूँ।
सादि अनन्त सिद्ध पद पाऊँ परम शुद्ध निर्वाण वरूँ।।

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्राय गर्भजन्मतपज्ञानमोक्ष, पंचकल्याण प्राप्ताय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कमल चिन्ह शोभित चरण, पद्मनाथ उर धार।
मन वच तन जो पूजते वे होते भव पार।।

।। इत्याशीर्वाद ।।

श्री चन्द्रप्रभ पूजन - 1

(छप्पय)

चारुचरन आचरन, चरन चित-हरन-चिन्हचर,
चन्दचन्दतनचरित, चंदथल चहत चतुर नर।
चतुक चंडचक चूरि, चारि चिद्चक्र गुनाकर,
चंचल चलित-सुरेश, चूलनुत चक्र धनुरहर।।
चर-अचर-हितु तारनतरन, सुनत चहकि चिरनंद शुचि।
जिन-चंद-चरन चरच्योचहत, चितचकोर नचि रचि रुचि।।

(दोहा)

धनुष डेढ़ सौ तुंग तन, महासेन नृप-नन्द।
मातु लछमना उर जये, थापों चन्द-जिनन्द।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

गंगा-ह्रद निरमल नीर, हाटक भृंग-भरा,
तुम चरन जजों वर वीर, मेटो जनमजरा।
श्री चन्दनाथ दुति चन्द, चरनन चंद लगे,
मनवचतन जजत अमंद, आतमजोति जगे।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री खण्ड कपूर सुचंग, केशर रंगभरी।
घसि प्रासुक जल के संग, भव-आताप हरी।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

तन्दुल सित सोम समान, सम ले अनियारे।
दिय पुंज मनोहर आन, तुम पदतर प्यारे।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

सुरद्रुम के सुमन सुरंग, गन्धित अलि आवै।
तासों पद पूजत चंग, काम-बिथा जावै ।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पंनिर्वपामीति स्वाहा।

नेवज नाना परकार, इन्द्रिय बलकारी।
सो लै पद पूजों सार, आकुलता-हारी।। श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तम भंजन दीप संवार, तुम ढिंग धारतु हों ।
मम तिमिर-मोह निरवार, यह गुन धारतु हों।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशगंध हुतासन माहिं, हे प्रभु खेवतु हौं।
ममकरम दुष्ट जरि जाहिं, यांते सेवतु हौं।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अति उत्तम फल सुमंगाय तुम गुन गावतु हौं।
पूजों तनमन हरषाय, विघन नशावतु हौं।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

सजि आठों दरब पुनीत, आठों अंग नमों।
पूजों अष्टम जिन मीत, अष्टम अवनि गमों।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच कल्याणक

कलि पंचम चैत सुहात अली, गरभागम मंगल मोद भली।
हरि हर्षित पूजत मातु पिता, हम ध्यावत पावत शर्मसिता।।

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णपंचम्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कलि पौष इकादशि जन्म लयो, तबलोकविषे सुख थोक भयो।
सुर-ईश जजें गिर-शीश तबै, हम पूजत हैं नुतशीष अबैं।।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तप दुद्धर श्रीधर आप धरा, कलि पौष इग्यारसी पर्व वरा।
निज ध्यानविषैं लवलीन भये, धनि सो दिन पूजत विघ्न गये।।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां तपकल्याणकप्राप्ताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वर केवलभानु उद्योत कियो, तिहुँ लोक तणों भ्रम मेट दियो।
कलि फाल्गुन सप्तमी इन्द्र जजे, हम पूजहिं सर्व कलंक भजे।।

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णसप्तम्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सित फाल्गुण सप्तमि मुक्त गये, गुणवन्त अनन्त अबाध भये।
हरि आय जजें तित मोद धरे, हम पूजत ही सब पाप हरे।।

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णसप्तम्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

हे मृगांकअंकित चरण, तुम गुण अगम अपार।
गणधरसे नहिं पार लहिं, तौ को वरनत सार।।
पै तुम भगति हिये मम, प्रेरैं अति उमगाय।
तातैं गाऊँ सुगुण तुम, तुम ही होउ सहाय।।

(पद्धरि छंद)

जय चन्द्र जिनेन्द्र दया निधान, भव कानन हानन दव प्रमान।
जय गरभ जनम मंगल दिनन्द, भवि जीव विकाशन शर्मकन्द।।
दशलक्ष पूर्व की आयु पाय, मनवांछित सुख भोगे जिनाय।
लखि कारण है जगतैं उदास, चिन्त्यो अनुप्रेक्षा सुखनिवास।।
तित लौकांतिक बोध्यो नियोग, हरि शिविका सजि धरियो अभोग।
तापै तुम चढि जिन चन्दराय, ता छिनकी शोभा को कहाय।।
जिन अंग सेत सित चमर ढार, सित छत्र शीस गल-गुलकहार।
सित रतन जड़ित भूषण विचित्र, सित चन्द्र-चरण चरचैं पवित्र।।

सित तन द्युति नाकाधीश आप, सित शिविका कांधे धरि सुचाप।
सित सुजस सुरेश नरेश सर्व, सित चित में चिन्तित जात पर्व।।
सित चन्द नगर तें निकसि नाथ, सित वन में पहुँचे सकल साथ।
सितशिला शिरोमणि स्वच्छ छांह, सित तप तित धार्यो तुम जिनांह।।
सित पय को पारण परम-सार, सित चन्द्रदत्त दीनों उदार।
सित कर में सो पयधार देत, मानो बाँधत भव सिंधु सेत।।
मानो सुपुण्य-धारा प्रतच्छ, तित अचरज पनसुर किय ततच्छ।
फिर जाय गहन सित तप करंत, सित केवलज्योति जग्यों अनंत।।
लहि समवसरण रचना महान, जाके देखत सब पाप-हान।
जहं तरु अशोक शौभे उत्तंग, सब शोक तनो चूरैं प्रसंग।।
सुर सुमन वृष्टि नभतैं सुहात, मनु मन्मथ तज हथियार जात।
बानी जिन मुखसौं खिरत सार, मनु तत्त्व प्रकाशन मुकुरधार।।
जहँ चौसठ चमर अमर ढुरंत, मनु सुजसमेघ झरि लगिय तन्त।
सिंहासन है जहँ कमलजुक्त, मनु शिवसरवर को कमलशुक्त।।
दुंदुभि जित बाजत मधुर सार, मनु करमजीत को है नगार।
सिर छत्र फिरै त्रय श्वेतवर्ण, मनु रतन तीन त्रयताप हर्ण।।
तन प्रभातनों मण्डल सुहात, भवि देखत निज भव सात सात।
मनु दर्पणद्युति यह जगमगाय, भविजन भव दुख देखत सुआय।।
इत्यादि विभूति अनेक जान, बाहिज दीसत महिमा महान।
ताको वरणत नहिं लहत पार, तौ अन्तरंग को कहै सार।।
अनअन्त गुण-निजुत करि विहार, धरमोपदेश दे भव्य तार।
फिर जोगनिरोधि अघाति हान, सम्मेदथकी लिय मुकति-थान।।
'वृन्दावन' वन्दत शीश नाय, तुम जानत हो मम उर जु भाय।
तातैं का कहौं सु बार-बार, मनवांछित कारज सार-सार।।

(छन्द घत्तानन्द)

जय चन्द जिनंदा आनंद-कंदा, भव भय भंजन राजै हैं।
रागादिक द्वन्दा हरि सब फन्दा, मुकतिमांहि थिति साजै हैं।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय महाअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(छन्द चौबोला)

आठों दरव मिलाय गाय गुण, जो भविजन जिनचन्द जजैं।
ताके भव भव के अघ भाजैं, मुक्ति सारसुख ताहि सजैं।।
जमके त्रास मिटैं सब ताके, सकल अमंगल दूर भजैं।
'वृन्दावन' ऐसो लखि पूजत, जातैं शिवपुर राज रजैं।।

।। पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।।

धन्य! आज का दिन!!

चैतन्य की मस्ती में मस्त मुनि को देखते हुए गृहस्थ को ऐसा भाव आता है कि अहा! रत्नत्रय साधने वाले संत को शरीर की अनुकूलता रहे– ऐसा आहार–औषध देऊँ, जिससे यह रत्नत्रय को निर्विघ्न साधें, इसमें मोक्षमार्ग का बहुमान हैं। अहो! धन्य ये सन्त और धन्य आज का दिन कि मेरे आँगन में मोक्षमार्गी मुनिराज के चरण पड़े..... आज तो मेरे आँगन में साक्षात् मोक्षमार्ग आया....। वाह! धन्य ऐसे मोक्षमार्गी मुनियों को जिन्हें देखते ही श्रावक का हृदय बहुमान से उछल जाता है। जिसे धर्मी के प्रति भक्ति नहीं, आदर नहीं; उसे धर्म का भी प्रेम नहीं।

–पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
श्रावक धर्म प्रकाश

श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजन - 2

महासेन नृपनंद चंद्रप्रभ चंद्रनाथ जिनवर स्वामी।
मात लक्ष्मणा के प्रियनन्दन जगउद्धारक प्रभु नामी।।
निज आत्मानुभूति से पाई मोक्ष लक्ष्मी सुखधामी।
वीतराग सर्वज्ञ हितैषी करुणामय शिव पुरगामी।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

तन की प्यास बुझाने वाला यह निर्मल जल लाया हूँ।
आत्मज्ञान की प्यास बुझाने प्रभु चरणों में आया हूँ।।
चंद्र जिनेश्वर चंद्र नाथ चंद्रेश्वर चन्दा प्रभु स्वामी।
राग द्वेष परिणति के नाशक मंगलमय अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

तन का ताप मिटाने वाला शीतल चंदन लाया हूँ।
राग आग की दाह मिटाने प्रभु चरणों में आया हूँ।।चन्द्र.।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

परम शुद्ध अक्षय पद पाने उज्ज्वल अक्षत लाया हूँ।
भव समुद्र से पार उतरने प्रभु चरणों में आया हूँ।।चन्द्र.।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

कामबाण से घायल होकर पुष्प मनोहर लाया हूँ।
महाशील शीलेश्वर बनने प्रभु चरणों में आया हूँ।।चन्द्र.।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पर द्रव्यों से भूख न मिट पाई तो प्रभु चरु लाया हूँ।
आत्म तत्त्व की भूख मिटाने प्रभु चरणों में आया हूँ।।चन्द्र.।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अन्धकार तप हरने वाला दीप प्रभामय लाया हूँ।
आत्म दीप की ज्योति जलाने प्रभु चरणों में आया हूँ।।चन्द्र.।।
ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

पर परिणति का धुआं उड़ाने धूप सुगन्धित लाया हूँ।
अष्टकर्म अरि पर जय पाने प्रभु चरणों में आया हूँ।।चन्द्र.।।
ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पर विभाव फल से पीड़ित होकर नूतन फल लाया हूँ।
अपना सिद्ध स्वपद पाने को प्रभु चरणों में आया हूँ।।चन्द्र.।।
ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय महामोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्ट द्रव्य का अर्घ मनोरम हर्षित होकर लाया हूँ।
चिदानन्द चिन्मय पद पाने प्रभु चरणों में आया हूँ।।चन्द्र.।।
ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री पंच कल्याणक

चैत्र कृष्ण पंचमी मात उर वैजयंत तज कर आए।
सोलह स्वप्न हुए माता को रत्न सुरों ने बरसाये।।
मात लक्ष्मणा स्वप्न फलों को जान हृदय में हर्षाये।
हुआ गर्भ कल्याण महोत्सव घर घर में आनन्द छाये।।
ॐ ह्रीं श्री चैत्रकृष्णपंचम्यां गर्भमंगल प्राप्ताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पौष कृष्ण एकादशम् को चन्द्रनाथ का जन्म हुआ।
मेरु सुदर्शन पर मंगल उत्सव कर सुरपति धन्य हुआ।।
चन्द्रपुरी में बजी बधाई तीन लोक में सुख छाया।
महासेन राजा के गृह में देवों ने मंगल गाया।।
ॐ ह्रीं श्री पौषकृष्णएकादश्यां जन्ममंगल प्राप्ताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पौष कृष्ण एकादशी को राज्य आदि सब छोड़ दिया।
यह संसार असार जानकर तप से नाता जोड़ दिया।।
पंच महाव्रत धारण करके वस्त्राभूषण त्याग दिये।
तप कल्याण मनाया देवों ने जिनवर अनुराग लिए।।

ॐ ह्रीं श्री पौषकृष्णएकादश्यां तप कल्याणप्राप्ताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तीन मास छद्मस्थ रहे प्रभु उग्र तपस्या में हो लीन।
प्रतिमा योग धार चन्दा प्रभु शुक्ल ध्यान में हुए स्वलीन।।
ध्यान अग्नि से त्रेसठ कर्म प्रकृतियों का बल नाश किया।
फाल्गुन कृष्ण सप्तमी के दिन केवलज्ञान प्रकाश लिया।।

ॐ ह्रीं श्री पौषकृष्णसप्तम्यां केवलज्ञान प्राप्ताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शेष प्रकृति पिच्यासी का भी अन्त समय अवसान किया।
फाल्गुन शुक्ल सप्तमी के दिन प्रभु ने पद निर्वाण लिया।।
ललितकूट सम्मेदशिखर से चन्दा प्रभु जिनमुक्त हुए।
ऊर्ध्वगमन कर सिद्ध लोक में मुक्ति रमा से युक्त हुए।।

ॐ ह्रीं श्री फाल्गुनशुक्लसप्तम्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

चन्द्र चिन्ह चित्रित चरण चन्द्रनाथ चित धार।
चिन्तामणि श्री चन्द्रप्रभ चन्द्रामृत दातार।।

चन्द्रपुरी के न्यायवान श्री महासेन राजा बलवान।
देवी लक्ष्मणा रानी उर से जन्में चन्द्रनाथ भगवान।।
इन्द्र शची सुर किन्नर यक्ष सभी ने गाये मंगल गान।
तीर्थंकर का जन्म जानकर धरती में भी आए प्राण।।

बड़े हुए प्रभु राज काज में न्याय पूर्वक लीन हुए।
जग के भौतिक भोग भोगते सिंहासन आसीन हुए।।
इक दिन नभ में बिजली चमकी, नष्ट हुई तो किया विचार।
नाशवान पर्याय जान छाया, तत्क्षण वैराग्य अपार।।
वन सर्वार्थं नागतरु नीचे परिजन परिकर धन सब त्याग।
पंच मुष्टि से केश लोंचकर किया महाव्रत से अनुराग।।
हुए तपस्या लीन आत्मा का ही प्रतिपल करते ध्यान।
शाश्वत् निजस्वरूप आश्रय ले पाया तुमने केवलज्ञान।।
थे तिरानवै गणधर जिनमें प्रमुख दत्त स्वामी ऋषिवर।
मुख्य आर्यिका वरुणा, श्रोता दानवीर्य आदिक सुरनर।।
समवसरण में तुमने प्रभुवर वस्तु तत्त्व उपदेश दिया।
उपादेय है एक आत्मा यह अनुपम सन्देश दिया।।
ज्ञाता दृष्टा बने जीव तो राग-द्वेष मिट जाता है।
जो निजात्मा में रहता है वही परम पद पाता है।।
हो अयोग केवली आपने हे स्वामी पाया निर्वाण।
अर्द्ध चन्द्र सम सिद्ध शिला पर पहुँचे चन्दा प्रभु भगवान।।
अर्ध चन्द्र शोभित चरणों में अष्टम तीर्थंकर स्वामी।
जन्म मरण का चक्र मिटाने आया हूँ अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दा प्रभु के पद कमल भाव सहित उर धार।
मन वच तन जो पूजते वे होते भव पार।।

।। इत्याशीर्वाद ।।

श्री वासुपूज्य पूजन - 1

श्रीमन् वासुपूज्य जिनवर पद, पूजन हेत हिये उमगाय।
थापों मनवचतन शुचि करिकै, जिनकी पाटल-देव्या माय।।
महिष चिन्ह पद लसै मनोहर, लाल-वरन तन समतादाय।
सोकरना-निधि कृपा-दृष्टिकरि, तिष्ठहु सुपरितिष्ठ यहँ आय।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

गंगाजल भरि कनक कुम्भ में प्रासुक गन्ध मिलाई।
करम कलंक विनाशन-कारन, धार देत हरषाई।।
वासुपूज्य वसुपूज तनुज पद, वासव सेवत आई।
बालब्रह्मचारी लखि जिनको, शिवतिय सन्मुख धाई।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

कृष्णागरु मलयागिरि चंदन, केशर संग घसाई।
भव आताप विनाशनकारन, पूजों पद चित लाई।।वासु०।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

देवजीरे सुखदास शुद्ध वर, सुवरन थार भराई।
पुँज धरत तुम चरनन आगैं, तुरित अखय पद पाई।।वासु०।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पारिजात संतानकल्पतरु-जनित सुमन बहुलाई।
मीनकेतु मनभंजनकारन, तुम पदपद्म चढ़ाई।।वासु०।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नव्यगंव्य आदिक रसपूरित, नेवज तुरित उपाई।
क्षुधा-रोग निवारन कारन, तुम्हें जजों शिर नाई।।वासु०।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीपकजोत उदोत होत वर, दशदिशमें छबि छाई।
तिमिर-मोह-नाशक तुमको लखि, जजों चरन हरषाई।।वासु०।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशविध गन्ध मनोहर लेकर, वातहोत्र में डाई।
अष्टकरम ये दुष्ट जरतु हैं, धूम सुधूम उड़ाई।। वासु०।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सुरस सुपक्व सुपावन फल लै, कंचन-थार भराई।
मोक्ष महाफल दायक लखि प्रभु, भेंट धरों गुन गाई।। वासु०।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जलफल दरब मिलाय गाय गुन, आठों अंग नमाई।
शिवपदराज हेत हे श्रीपति! निकट धरों यह लाई।। वासु०।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच कल्याणक

(छन्द पाईता मात्रा १४)

कलि छट्ट अषाढ़ सुहायो, गरभागम मंगल पायो।
दश में दिवितें इत आये, शतइन्द्र जजें सिर नाये।।

ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णषष्ठयां गर्भमंगलमंडिताय वासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कलि चौदश फागुन जानों, जनमे जगदीश महानों।
हरि मेर जजे तब जाई, हम पूजत हैं चित लाई।।

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां जन्ममंगलमंडिताय वासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तिथि चौदस फागुन श्यामा, धरियो तप श्री अभिरामा।
नृप सुन्दर के पय पायो, हम पूजत अति सुख थायो।।

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां तपोमंगलमंडिताय वासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुदि माह दोइज सोहै, लहि केवल आतम जो है।
अनअन्त गुनाकर स्वामी, नित वन्दों त्रिभुवन नामी।।

ॐ ह्रीं माहशुक्लद्वितीयायां ज्ञानमंगलमंडिताय वासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सितभादव चौदशि लीनों, निरवान सुथान प्रवीनों।
चम्पापुरथानक सेती, हम पूजत निज हित हेती।।

ॐ ह्रीं भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यां मोक्षमंगलमंडिताय वासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

चम्पापुर में पंचवर, कल्याणक तुम पाय।
सत्तर धनु तन शोभनों, जय जय जय जिनराय।।

(छन्द मोतियादाम)

महासुख सागर आगर ज्ञान, अनन्त सुखामृत भुक्त महान।
महाबल मंडित खण्डित काम, रमा-शिव-संग सदा विसराम।।
सुरिन्द फनिन्द खगिन्द नरिन्द, मुनिन्द जजैं नित पादरविंद।
प्रभु तुव अन्तर भाव विराग, सुबालहिं तें व्रतशील सों राग।।
कियो नहिं राज उदास स्वरूप सुभावन भावत आतमरूप।
अनित्य शरीर प्रपंच समस्त, चिदातम नित्य सुखाश्रित वस्त।।
अशर्न नहीं कोउ शर्न सहाय, जहाँ जिय भोगत कर्मविपाय।
निजातम के परमेसुर शर्न, नहीं इनके बिन आपद हर्न।।
जगत्त जथा जलबुदबुद येव, सदा जिय एक लहै फल मेव।
अनेक प्रकार धरी यह देह, भ्रमें भवकानन आन न नेह।।
अपावन सात कुधात भरीय, चिदातम शुद्धसुभाव धरीय।
धरैं इनसों जब नेह तबैव, सुआवत कर्म तबै वसुभेव।।

ज़बै तनभोग-जगत्त उदास, धरै तब संवर निर्जर आस।
करै जब कर्म कलंक विनाश, लहै तब मोक्ष महासुखराश।।
तथा यह लोक नराकृत नित्त, विलोकियते षट्द्रव्य विचित्त।
सु आतम-जानन बोधविहीन, धरै किन तत्त्व प्रतीत प्रवीन।।
जिनागम-ज्ञानरु संजम-भाव, सबै निज ज्ञान बिना बिरसाव।
सुदुर्लभ द्रव्य सुक्षेत्र सुकाल, सुभाव सबै जिहंतें शिव हाल।।
लयो सब जोग सुपुन्य वशाय, कहो किमि दीजिये ताहिगंवाय।
विचारत यों लवकान्तिक आय, नमें पदपंकज पुष्प चढ़ाय।।
कह्यो प्रभु धन्य किया सुविचार, प्रबोधि सुयेम कियो जु विहार।
तबै सौधर्म तनों हरि आय, रच्यो शिविका चढ़ि आप जिनाय।।
धरे तप पाय सुकेवलबोध, दियो उपदेश सुभव्य संबोध।
लियो फिर मोक्ष महासुख राश, नमैं नित भक्त सोई सुख आश।।

(घत्ताछन्द)

नित वासववन्दत, पापनिकन्दत, वासपूज्य व्रत ब्रह्म-पती।
भवसंकटखंदित आनन्दमण्डित, जै जै जै जैवन्त जती।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

वासुपूज पद सार, जजो दरबविधि भावसों।
सो पावै सुखसार, भुक्ति मुक्ति को जो परम।।

(पुष्पांजलिम् क्षिपेत्, इत्याशीर्वादः)

श्री वासुपूज्य नाथ जिन पूजन - 2

जय श्री वासुपूज्य तीर्थंकर सुर नर मुनि पूजित जिनदेव।
ध्रुव स्वभाव निज का अवलंबन लेकर सिद्ध हुए स्वयमेव।।
घाति अघाति कर्म सब नाशे तीर्थंकर द्वादशम् सुदेव।
पूजन करता हूँ अनादि की मेटो प्रभु मिथ्यात्व कुटेव।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यदेव जिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यदेव जिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यदेव जिनेन्द्र अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

जल से तन बार-बार धोया पर शुचिता कभी नहीं आई।
इस हाड़-मांस मय चर्म-देह का जन्म मरण अति दुखदाई।।
त्रिभुवन पति वासुपूज्य स्वामी प्रभु मेरी भव बाधा हरलो।
चारों गतियों के संकट हर हे प्रभु मुझको निज सम करलो।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

गुण शीतलता पाने को मैं चन्दन चर्चित करता आया।
भव चक्र एक भी घटानहीं संताप न कुछ कम होपाया।।त्रिभु.।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

मुक्ता सम उज्ज्वल तंदुल से नित देह पुष्ट करता आया।
तन की जर्जरता रुकी नहीं भवकष्ट व्यर्थ भरता आया।।त्रिभु.।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्पों की सुरभि सुहाई प्रभु पर निज की सुरभि नहीं भाई।
कंदर्प दर्प की चिरपीड़ा अबतक न शमन प्रभु हो पाई।।त्रिभु.।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

षट् रस मय विविध विविध व्यंजन जी भर भर कर मैंने खाये।
पर भूख तृप्त न हो पाई दुख क्षुधा रोग के नित पाये।।त्रिभु.।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीपक निज ही प्रज्ज्वलित किये अन्तरतम अब तक मिटा नहीं।
मोहान्धकार भी गया नहीं अज्ञान तिमिर भी हटा नहीं।।त्रिभु.।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ अशुभ कर्म बन्धन भाया संवर का तत्त्व कभी न मिला।
निर्जरित कर्म कैसे हो जब दुखमय आस्रव का द्वार खुला।।त्रिभु.।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

भौतिक सुख की इच्छाओं का मैनें अब तक सम्मान किया।
निर्वाणमुक्ति फलपाने को मैंने न कभी निज ध्यान किया।।त्रिभु.।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जब तक अनर्घ पद मिले नहीं तब तक मैं अर्घ चढ़ाऊँगा।
निजपद मिलते ही हे स्वामी फिर कभी नहीं मैं आऊँगा।।त्रिभु.।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच कल्याणक

त्यागा महा शुक्र का वैभव, माँ विजया उर में आये।
शुभ अषाढ़ कृष्ण षष्ठी को देवों ने मंगल गाये।।
चम्पापुर नगरी की कर रचना, नव बारह योजन विस्तृत।
वासुपूज्य के गर्भोत्सव पर हुए नगरवासी हर्षित।।

ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णषष्ठयां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

फागुन कृष्णा चतुर्दशी को नाथ आपने जन्म लिया।
नृप वसुपूज्य पिता हर्षाये भरतक्षेत्र को धन्य किया।।
गिरि सुमेरु पर पाण्डुक वन में हुआ जन्म कल्याण महान।
वासुपूज्य का क्षीरोदधि से हुआ दिव्य अभिषेक प्रधान।।

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

फागुन कृष्णा चतुर्दशी को वन की ओर प्रयाण किया।
लौकान्तिक देवर्षि सुरों ने आकर तप कल्याण किया।।

तब नमः सिद्धेभ्यः कहकर प्रभु ने इच्छाओं का दमन किया।
वासुपूज्य ने ध्यान लीन हो इच्छाओं का दमन किया।।

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

माघ शुक्ल की दोज मनोरम प्रभु को केवलज्ञान हुआ।
समवसरण में खिरी दिव्यध्वनि जीवों का कल्याण हुआ।।
नाश किये घन घाति कर्म सब केवलज्ञान प्रकाश हुआ।
भव्यजनों के हृदय कमल का प्रभु से पूर्ण विकाश हुआ।।

ॐ ह्रीं माघशुक्लद्वितीयायां केवलज्ञान प्राप्ताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अंतिम शुक्ल ध्यानधर प्रभु ने कर्म अघाति किये चकचूर।
मुक्ति वधु के कंत हो गये योग मात्र कर निज से दूर।।
भादव शुक्ला चतुर्दशी के दिन चम्पापुर से निर्वाण हुआ।
मोक्ष लक्ष्मी वासुपूज्य ने पाई जय जय गान हुआ।।

ॐ ह्रीं भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

वासुपूज्य विद्या निधि विघ्न विनाशक वागीश्वर विश्वेश।
विश्वविजेता विश्वज्योति विज्ञानी विश्वदेव विविधेश।।
चम्पापुर के महाराज वसुपूज्य पिता विजया माता।
तुमको पाकर धन्य हुए हे वासुपूज्य मंगल दाता।।
अष्ट वर्ष की अल्प आयु में तुमने अणुव्रत धार लिया।
यौवन वय में ब्रह्मचर्य आजीवन अंगीकार किया।।
पंच मुष्टि कचलोच किया सब वस्त्राभूषण त्याग दिये।
विमल भावना द्वादश भाई पंच महाव्रत ग्रहण किये।।
स्वयं बुद्ध हो नमः सिद्ध कह पावन संयम अपनाया।
मति, श्रुति, अवधि जन्म से था अब ज्ञान मनः पर्यय पाया।।

एक वर्ष छद्मस्थ मौन रह आत्म साधना की तुमने।
उग्र तपश्या के द्वारा ही कर्म निर्जरा की तुमने।।
श्रेणीक्षपक चढ़े तुम स्वामी मोहनीय का नाश किया।
पूर्ण अनन्त चतुष्टय पाया पद अरहंत महान लिया।।
विचरण करके देश-देश में मोक्ष-मार्ग उपदेश दिया।
जो स्वभाव का साधन साधे, सिद्ध बने, संदेश दिया।।
प्रभु के छयासठ गणधर जिनमें प्रमुख श्रीमंदिर ऋषिवर।
मुख्य आर्यिका वरसेना थीं नृपति स्वयंभू श्रोतावर।।
प्रायश्चित व्युत्सर्ग, विनय, वैय्यावृत स्वाध्याय अरुध्यान।
अन्तरंग तप छह प्रकार का तुमने बतलाया भगवान।।
कहा वाह्य तप छह प्रकार उनोदर कायक्लेश अनशन।
रस परित्यागसुव्रत परिसंख्या, विविक्त शय्यासन पावन।।
ये द्वादश तप जिन मुनियों को पालन करना बतलाया।
अणुव्रत शिक्षाव्रत गुणव्रत द्वादशव्रत श्रावक का गाया।।
चम्पापुर में हुए पंचकल्याण आपके मंगलमय।
गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, मोक्ष, कल्याण भव्यजन को सुखमय।।
परमपूज्य चम्पापुर की पावन भू को शत्-शत् वन्दन।
वर्तमान चौबीसी के द्वादशम् जिनेश्वर नित्य नमन।।
मैं अनादि से दुखी, मुझे भी निज बल दो भववास हरूँ।
निज स्वरूप का अवलम्बन ले अष्टकर्म अरि नाश करूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान मोक्षकल्याणप्राप्ताय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महिष चिंह शोभित चरण, वासुपूज्य उर धार।
मन वच तन जो पूजते वे होते भव पार।।

इत्याशीर्वादः

श्री शान्तिनाथ पूजन - 1

या भवकानन में चतुरानन, पापपनासन घेरी हमेरी।
आतमजान न मान न ठान न, बान न होन दई शठ मेरी।।
तामद भानन आपहि हो, यह छान न आन न आनन टेरी।
आन गही शरनागत को अब श्रीपतजी पत राखहु मेरी।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

(छन्द त्रिभंगी)

हिमगिरितगगंगा, धार अभंगा प्रासुक संगा भरि भृंगा।
जरजनममृतंगा, नाशि अघंगा, पूजि पदंगा मृदुहिंगा।।
श्री शान्तिजिनेशं, नुतशक्रेशं, वृषचक्रेशं चक्रेशं।
हनि अरिचक्रेशं हे गुनधेशं, दयामृतेशं मक्रेशं।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

वर बावन चंदन, कदली नंदन, घन आनंदन सहित घसों।
भवतापनिकंदन, ऐरानन्दन, वंदि अमंदन, चरन वसों।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

हिमकर लज्जत, मलय सुसज्जत, अच्छत जज्जत भरि थारी।
दुखदारिद गज्जत, सदपदसज्जत, भवभवभज्जत अति भारी।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

मन्दार सरोजं, कदली जोजं, पुंज भरोजं मलय भरं।
भरि कंचनथारी, तुम ढिग धारी, मदनविदारी, धीर धरं।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पकवान नवीने पावन कीने, षट्रस भीने सुखदाई।
मनमोदन हारे, छुदा विदारे, आगैं धारे गुन गाई।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तुम ज्ञान प्रकाशे, भ्रमतमनाशे, ज्ञेयविकाशे सुखराशे।
दीपक उजियारा यातैं धारा, मोह निवारा, निज भासे।।श्री.।।
ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन करपूरं, करि वर चूरं, पावक भूरं, माँही जुरं।
तसु धूम उड़ावे, नाचत जावै, अलि गुंजावै, मधुर स्वरं।।श्री.।।
ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बादाम खजूरं, दाड़िम पूरं, निम्बुक भूरं लै आयो।
तासों पद जज्जों, शिवफल सज्जों, निजरसरज्जो उमगायो।।श्री.।।
ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

वसु द्रव्य संवारी, तुम ढिग धारी, आनन्दकारी दृग प्यारी।
तुम हो भवतारी, करुनाधारी, यातैं थारी शरनारी।।श्री.।।
ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच कल्याणक

(छन्द सुन्दरी तथा द्रुतविलम्बित)

असित सातें भादव जानिये, गरभमंगल ता दिन मानिये।
शचि किया जननी पद चर्चनं, हम करें इत ये पद अर्चनं।।
ॐ ह्रीं भाद्रप्रदकृष्णसप्तम्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जनम जेठ चतुर्दशी श्याम हैं, सकल इन्द्रसु आगत धाम हैं।
गजपूरै गज साजि सबै तबै, गिरि जजे इत मैं जजि हौं अबै।।
ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भव शरीर सुभोग असार हैं, इमि विचार तबै तप धार हैं।
भ्रमर चौदस जेठ सुहावनी, धरममेह जजों गुन पावनी।।
ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुकल पौष दशैं सुखरास है, परम केवलज्ञान प्रकाश है।
भव समुद्र-उधारन देवकी, हम करैं नित मंगल सेवकी।।

ॐ ह्रीं पौषशुक्लदशम्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

असित चौदशि जेठ हनें अरि, गिरिसमेदथकी शिवतिय वरी।
सकल इन्द्र जजैं तित आइकैं, हम जजैं इत मस्तक नाइकैं।।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(छन्द रथोद्धता, चंद्रवत्स तथा चंद्रवर्त्म)

शान्ति शान्तिगुन मंडिते सदा, जाहि ध्यावत सुपंडिते सदा।
मैं तिनहें भगतमंडिते सदा, पूजिहों कलुषहंडिते सदा।।
मोच्छहेततुम ही दयाल हो, हे जिनेश गुन रत्नमाल हो।
मैं अबै सुगुनदाम ही धरों, ध्यावतें तुरित मुक्ति-ती वरों।।

(पद्धरि छन्द)

जय शान्तिनाथ चिद्रुपराज, भवसागर में अद्‌भुत जहाज।
तुम तजि सरवारथसिद्ध थान, सरवारथ जुत गजपुर महान।।
तित जन्म लियौ आनंद धार, हरि ततछिन आयो राजद्वार।
इन्द्रानी जाय प्रसूत-थान, तुमको कर में ले हरष मान।।
हरि गोद देय सो मोदधार, सिर चमर अमर ढ़ोरत अपार।
गिरिराज जाय तित शिला पाँडु, तापैथाप्यो अभिषेक माँडु।।
तित पंचम उदधितनों सुवार, सुर कर कर करि ल्याये उदार।
तब इन्द्र सहसकर करि अनन्द, तुम सर धारा ढार्‌यो सुमन्द।।
अघघघ घघघघ धुनि होत घोर, भभभभ भभ धध धध कलश शोर।
दृम दृम दृमदृम बाजत मृदंग, झन नन नन नन नन नूपुरंग।।

तन नन नन नन नन तनन तान, घन नन नन घंटा करत ध्वान।
ताथेई थेई थेई थेई थेई सुचाल, जुत नाचत नावत तुमहिं भाल।।
चट चट चट अटपट नटत नाट, झट झट झट हट नट शट विराट।
इमि नाचत राचत भगत रंग, सुर लेत जहाँ आनंद संग।।
इत्यादि अतुल मंगल सुठाट, तित बन्यो जहाँ सुरगिरि विराट।
पुनि करि नियोग पितुसदन आय, हरि सौंप्यौ तुम तित वृद्ध थाय।।
तुनि राजमाँहिं लहि चक्ररत्न, भोग्यौ छहखंड करि धरम जत्न।
पुनि तप धरि केवलरिद्धि पाय, भविजीवन को शिवमग बताय।।
शिवपुर पहुँचे तुम हे दिनेश, गुनमण्डित अतुल अनंत भेष।
मैं ध्यावतु हौं निज शीश नाय, हमरी भवबाधा हरि जिनाय।।
सेवक अपनो निज जान जान, करुना किर भौभय भान भान।
यह विघन मूल तरु खण्ड खण्ड, चितचिन्तत आनन्द मंड मंड।।

(छन्द घत्तानन्द)

श्री शान्ति महंता शिवतियकंता, सुगुन अनन्ता भगवन्ता।
भवभ्रमन हनंता, सौख्य अनन्ता, दातारं तारनवन्ता।।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(छन्द रूपक)

शान्तिनाथ जिनके पद पंकज, जो भवि पूजै मनवचकाय।
जनम जनम के पातक ताके, ततछिन तजिकैं जाय पलाय।।
मनवाँछित सुख पावै सौ नर, बाँचै भगतिभाव अतिलाय।
तातैं 'वृन्दावन' नित बन्दै, जातैं शिवपुरराज कराय।।

(पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्री शान्तिनाथ जिन पूजन - 2

शांति जिनेश्वर हे परमेश्वर परमशान्त मुद्रा अभिराम।
पंचम चक्री शान्ति सिन्धु सोलहवें तीर्थंकर सुखधाम।।
निजानन्द में लीन शांति नायक जग गुरु निश्चल निष्काम।
श्री जिन दर्शन पूजन अर्चन वंदन नित प्रति करुं प्रणाम।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

जल स्वभाव शीतल मलहारी आत्म स्वभाव शुद्ध निर्मल।
जन्म मरण मिट जाये प्रभु जब जागे निजस्वभाव का बल।।
परम शांति सुखदायक शांतिविधायक शांतिनाथ भगवान।
शाश्वत सुख की मुझे प्राप्ति हो श्री जिनवर दो यह वरदान।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शीतल चंदन गुण सुगन्धमय निज स्वभाव हो अति ही शीतल।
पर विभाव का ताप मिटाता निज स्वरूप का अंतर्बल।।परम.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

भव अटवी से निकल न पाया पर पदार्थ में अटका मन।
यह संसार पार करने का निज स्वभाव ही है साधन।।परम.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

कोमल पुष्प मनोरम जिनमें राग आग की दाह प्रबल।
निज स्वरूप की महाशक्ति से काम व्यथा होती निर्बल।।परम.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

उर की क्षुधा मिटाने वाला यह चरु तो दुखदायक है।
इच्छाओं की भूख मिटाता निज स्वभाव सुखदायक है।।परम.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अन्धकार में भ्रमते-भ्रमते भव-भव में दुख पाया है।
निजस्वरूप के ज्ञानभानु का उदय न अब तक आया है।।परम.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

इष्ट-अनिष्ट संयोगों में ही अब तक सुख दुख माना है।
पूर्णत्रिकाली ध्रुवस्वभाव का बल न कभी पहचाना है।।परम.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धभाव पीयूष त्यागकर पर को अपना मान लिया।
पुण्य फलों में रूचि करके अब तक मैनें विषपान किया।।परम.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अविनश्वर अनुपम अनर्घपद सिद्ध स्वरूप महा सुखकार।
मोक्ष भवन निर्माता निज चैतन्य राग नाशक अधहार।परम.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच कल्याणक

भादव कृष्ण सप्तमी के दिन तज सर्वार्थ सिद्धि आये।
माता ऐरा धन्य हो गयी विश्वसेन नृप हरषाये।।
छप्पन दिक्कुमारियों ने नित नवल गीत मंगल गाये।
शांतिनाथ के गर्भोत्सव पर रत्न इन्द्र ने बरसाये।।

ॐ ह्रीं भाद्रप्रदकृष्णसप्तम्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नगर हस्तिनापुर में जन्में त्रिभुवन में आनन्द हुआ।
ज्येष्ठ कृष्ण की चतुर्दशी को सुरगिरि पर अभिषेक हुआ।।
मंगल वाद्य नृत्य गीतों से गूंज उठा था पाण्डुक वन।
हुआ जन्म कल्याण महोत्सव शांतिनाथ प्रभु का शुभ दिन।।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मेघ विलय लख इस जग की अनित्यता का प्रभुभान लिया।
लौकांतिक देवों ने आकर धन्य धन्य जयगान किया।।
कृष्ण चतुर्दशी ज्येष्ठ मास की अतुलित वैभव त्याग दिया।
शांतिनाथ ने मुनिव्रत धारा शुद्धातम अनुराग किया।।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पौष शुक्ल दशमी को चारों घातिकर्म चकचूर किये।
पाया केवलज्ञान जगत के सारे संकट दूर किये।।
समवशरण रचकर देवों ने किया ज्ञान कल्याण महान।
शांतिनाथ प्रभु की महिमा का गूंजा जग में जयजयगान।।

ॐ ह्रीं पोषशुक्लदशम्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्येष्ठ कृष्ण की चतुर्दशी को प्राप्त किया सिद्धत्व महान।
कूट कुन्दप्रभु गिरि सम्मेद शिखर से पाया पद निर्वाण।।
सादि अनन्त सिद्ध पद को प्रगटाया प्रभु ने धरनिजध्यान।
जयजयशांतिनाथ जगदीश्वर अनुपम हुआमोक्षकल्याण।।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

शान्तिनाथ शिवनायक शांति विधायक शुचिमय शुद्धात्मा।
शुभ्र मूर्ति शरणागत वत्सल शील स्वभावी शांतात्मा।।
नगर हस्तिनापुर के अधिपति विश्वसेन नृप के नन्दन।
माँ ऐरा के राज दुलारे सुर नर मुनि करते वन्दन।।
कामदेव बारहवें पंचम चक्री तीन ज्ञान धारी।
बचपन में अणुव्रत धर यौवन में पाया वैभव भारी।।
भरतक्षेत्र के षट खण्डों को जयकर हुए चक्रवर्ती।
नव निधि चौदह रत्न प्राप्त कर शासक हुए न्यायवर्ती।।

इस जग के उत्कृष्ट भोग भोगते बहुत जीवन बीता।
एक दिवस नभ में घन का परिवर्तन लख निज मन रीता।।
यह संसार असार जानकर तप धारण का किया विचार।
लौकांतिक देवर्षि सुरों ने किया हर्ष से जय जयकार।।
वन में जाकर दीक्षा धारी पंच मुष्टि कचलोच किया।
चक्रवर्ती की अतुल सम्पदा क्षण में त्याग विराग लिया।।
मन्दिरपुर के नृप सुमित्र ने भक्तिपूर्वक दान दिया।
प्रभुकर में पय धारा दे भव सिंधु सेतु निर्माण किया।।
उग्र तपश्या से तुमने कर्मों की कर निर्जरा महान।
सोलह वर्ष मौन तप करके ध्याया शुद्धातम का ध्यान।।
श्रेणी क्षपक चढ़े स्वामी केवलज्ञानी सर्वज्ञ हुए।
दिव्यध्वनि से जीवों को उपदेश दिया विश्वज्ञ हुए।।
गणधर थे छत्तीस आपके चक्रायुद्ध पहले गणधर।
मुख्य आर्यिका हरिषेणा थी श्रोता पशु नर सुर मुनिवर।।
कर विहार जग में जगती के जीवों का कल्याण किया।
उपादेय है शुद्ध आत्मा यह सन्देश महान दिया।।
पाप-पुण्य शुभ-अशुभ आस्रव जग में भ्रमण कराते हैं।
जो संवर धारण करते हैं परम मोक्ष पद पाते हैं।।
सात तत्व की श्रद्धा करके जो भी समकित धरते हैं।
रत्नत्रय का अवलम्बन ले मुक्तिवधु को वरते हैं।।
सम्मेदाचल के पावन पर्वत पर आप हुए आसीन।
कूट कुन्दप्रभ से अघातिया कर्मों से भी हुए विहीन।।

महामोक्ष निर्वाण प्राप्तकर गुण अनन्त से युक्त हुए।
शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध सिद्ध पद पाया भव से मुक्त हुए।।
हे प्रभु शांतिनाथ मंगलमय मुझको भी ऐसा वर दो।
शुद्ध आत्मा की प्रतीति मेरे उर में जाग्रत कर दो।।
पाप ताप संताप नष्ट हो जाये सिद्ध स्वपद पाऊँ।
पूर्ण शांतिमयशिव सुख पाकर फिर न लौट भव में आऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चरणों में मृग चिन्ह सुशोभित शांति जिनेश्वर का पूजन।
भक्ति भाव से जो करते हैं वे पाते हैं मुक्ति गगन।।

इत्याशीर्वादः

भाई! तुझे पुण्योदय से लक्ष्मी मिली और महाभाग्य से जैन धर्म के सच्चे देव–गुरु महारत्न मिले। अब यदि तू धर्म प्रसंग में लक्ष्मी का उपयोग करने के बदले स्त्री–पुत्र तथा विषय–कषाय के पापभाव में ही धन का उपयोग करता है तो हाथ में आया हुआ रत्न समुद्र में फेंक देने जैसा तेरा कार्य है। धर्म का जिसे प्रेम होता है, वह तो धर्म की वृद्धि किस प्रकार हो, धर्मात्मा कैसे आगे बढ़ें, साधर्मियों को कोई भी प्रतिकूलता हो तो वह कैसे दूर हो –ऐसे प्रसंग विचार–कर उनके लिये उत्साह से धन खर्च करता है।

–पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
श्रावक धर्म प्रकाश

श्री नेमिनाथ पूजन - 1

(छन्द लक्ष्मी तथा अर्द्धलक्ष्मीधरा)

जैति जै जैति जै जैति जै नेमकी,
धर्म अवतार दातार शिव चैन की।
श्री शिवानन्द भौफन्द निःकन्द की,
ध्यावै जिन्हैं इन्द्र नागेन्द्र ओ मैनकी।।
पर्म कल्याणके देनहारे तुम्हीं,
देव हो एव तातैं करौ ऐनकी।
थापि हो वार त्रैं शुद्ध उच्चार कैं,
शुद्धताधार भौ पारकूँ लेनकी।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

(चाल होली ताल जत्त)

दाता मोक्ष के, श्री नेमिनाथ जिनराय, दाता मोक्ष के।।टेक।।
निगम नदी जल प्रासुक लरनौं, कंचनभ्रंग भराय।
मनवचतनतैं धार देत ही सकल कलंक नसाय।।
दाता मोक्ष के, श्री नेमिनाथ जिनराय।। दाता.।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

हरिचन्दनयुत कदलीनन्दन, कुंकुमसंग घसाय।
विघनतापनाशन के कारन, जजों तिहारे पाय।। दाता.।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

पुण्यराशि तुम यशसम उज्ज्वल, तन्दुल शुद्ध मंगाय।
अखयसौख्य भोगनके कारन, पुंज धरूँ गुनगाय।। दाता.।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुण्डरीकतृणद्रुम को आदिक, सुमन सुगन्ध मिलाय।
दर्प्पकमनमथ भंजन कारन, जजहुँ चरन लवलाय।।दाता.।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

घेवर बावर खाजे साजे, ताजे तुरित मँगाय।
क्षुधावेदनी नाश करन को, जजहुँ चरन उमगाय।।दाता.।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कनकदीप नवनीत पूरकर, उज्ज्वल ज्योति जगाय।
तिमिरमोहनाशक तुमको लखि,जजहुँ चरन हुलसाय।।दाता.।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशविधि गन्ध मंगाय मनोहर, गुंजत अलिगन आय।
दशोंबन्ध जारनके कारन, खेवो तुम ढिग लाय।।दाता.।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सुरसवरन रसना-मनभावन, पावन फल सु मंगाय।
मोक्ष महाफल कारन पूजों, हे जिनवर तुम पाय।।दाता.।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जलफल आदि साज शुचि लीने, आठों दरब मिलाय।
अष्टम छिथि के राजकरनकों जजों अंग वसुनाय।।दाता.।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच कल्याणक

(छन्द पाईता)

सित कातिक छट्ठ अमन्दा, गरभागम आनन्दकन्दा।
शचिसेय शिवापद आई, हम पूजत मनवचकाई।।

ॐ ह्रीं कार्तिकशुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सित सावन छट्ठ अमन्दा, जनमे त्रिभुवन के चन्दा।
पितु समुद महासुख पायो, हम पूजत विघन नशायो।।

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लषष्ठ्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तजि राजमति व्रत लीनो, सितसावन छट्ठ प्रवीनों।
शिवनारी तबै हरषाई, मैं पूजैं पद शिरनाई।।

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लषष्ठ्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सित आश्विन एकम चूरे, चारों घाती अति कूरे।
लहि केवल महिमा सारा, हम पूजैं अष्ट प्रकारा।।

ॐ ह्रीं आश्विनशुक्लप्रतिपदि ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सितषाढ़ अष्टमी चूरे, चारों अघातिया कूरे।
शिव उर्ज्जयन्तें पाई, हम पूजैं ध्यान लगाई।।

ॐ ह्रीं आषाढ़शुक्लअष्टम्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

श्याम छबी तन चाप दश, उन्नत गुननिधिधाम।
शंख चिन्ह पद में निरखि, पुनि-पुनिकरूं प्रणाम।।

(छन्द पद्धरी)

जै जै जै नेमि जिनन्द चन्द, पितु समुदमन आनन्दकन्द।
शिवमात कुमुद मनमोददाय, भविवृन्द चकोर सुखी कराय।।
जय देव अपूरव मारतंड, तुमकीन ब्रह्म सुत सहस खंड।
शिवतिय मुख जलज विकाशनेश, नहीं रही सृष्टि में तम अशेष।।
भविभीत कोक कीनों अशोक, शिवमग दरशायो शर्मथोक।
जै जै जै जै तुम गुन गम्भीर, तुम आगम निपुण पुनित धीर।।
तुम केवल जोति विराजमान, जै जै जै जै करुनानिधान।
तुम समवसरन में तत्त्वभेद, दरशायो जातें नशत खेद।।
तित तुमको हरि आनन्द धार, पूजत भगतीजुत बहु प्रकार।
पुनि गद्य-पद्य मय सुजस गाय, जै बल अनन्त गुणवन्तराय।।

जै शिवशंकर ब्रह्मा महेश, जय बुद्धि विधाता विष्णुवेस।
जय कुमतिमतंगनको मृगेन्द्र, जय मदनध्वांतकों रवि जिनेन्द्र।।
जय कृपासिन्धु अविरुद्ध बुद्ध, जय रिद्ध सिद्ध दाता प्रबुद्ध।
जय जगजनमनरंजन महान, जय भवसागरमहं सुष्टु यान।।
तब भगति करै ते धन्य जीव, ते पावैं दिव शिवपद सदीव।
तुमरो गुन देव विविध प्रकार, गावत नित किन्नर की जु नार।।
वर भगति माहिं लवलीन होय, नीचैं ताथेई थेई थेई बहोय।
तुम करुणासागर सृष्टिपाल, अब मोको वेगि करो निहाल।।
मैं दुःख अनन्त वसु करम जोग, भोगे सदीव नहिं और रोग।
तुमको जग में जान्यो दयाल, हो वीतराग गुन रतनमाल।।
तातें शरना अब गही आय, प्रभु करो वेगि मेरी सहाय।
यह विघन करम मम खण्ड-खण्ड, मनवांछित कारज मंड-मंड।।
संसार कष्ट चक चूर चूर, सहजानन्द मम उर पूर पूर।
निज पर प्रकाशबुधि देह देह, तजि के विलम्ब सुधि लेह लेह।।
हम जांचत हैं यह बार बार, भव सागर तें मो तार तार।
नहिं सह्यो जात यह जगत दुःख, तातें विनबो हे सुगुनमुक्ख।।

(छन्द घत्तानन्द)

श्री नेमिकुमारं जितमदमारं, शीलागारं सुखकारं।
भवभय हरतारं, शिवकरतारं, दातारं धर्माधारं।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(मालिनी)

सुख धन जस सिद्धि पुत्र-पौत्रादि वृद्धि।
सकल मनसि सिद्धि होतु है ताहि रिद्धि।।
जजत हरषधारी नेमि को जो आगारी।
अनुक्रम अरि जारि सो वरे मोक्ष नारी।।

(पुष्पांजलिम् क्षिपेत्)

श्री नेमिनाथ जिन पूजन - 2

जय श्री नेमीनाथ तीर्थंकर बाल ब्रह्मचारी भगवान।
हे जिनराज परम उपकारी करुणा सागर दया निधान।।
दिव्यध्वनि के द्वारा हे प्रभु तुमने किया जगतकल्याण।
श्री गिरनार शिखर से पाया तुमने सिद्ध स्वरूप निर्वाण।।
आज तुम्हारे दर्शन करके निज स्वरूप का आया ध्यान।
मेरा सिद्ध समान सदा पद यह दृढ़ निश्चय हुआ महान।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

समकित जल की धारा से तो मिथ्याभ्रम धुल जाता है।
तत्त्वों का श्रद्धान स्वयं को शाश्वत मंगल दाता है।।
नेमिनाथ स्वामी तुम पद पंकज की करता हूँ पूजन।
वीतराग तीर्थंकर तुमको कोटि कोटि मेरा वन्दन।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय मिथ्यात्वमलविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक् श्रद्धा का पावन चन्दन भव ताप मिटाता है।
क्रोधकषाय नष्ट होती है निज की अरुचि हटाता है।।नेमी.।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय क्रोधकषायविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

भाव शुभाशुभ का अभिमानी मान कषाय बढ़ाता है।
वस्तु स्वभाव जान जाता तो मान कषाय मिटाता है।।नेमी.।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय मानकषायविनाशनाय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

चेतन छल से पर भावों का माया जाल बिछाता है।
भव भव की माया कषाय को समकित पुष्प मिटाता है।।नेमी.।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय मायाकषायविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

तृष्णा की ज्वाला से लोभी कभी नहीं सुख पाता है।
सम्यक् चरु से लोभ नाशकर यह शुचिमय हो जाता है।।नेमी.।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय लोभकषायविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अन्धकार अज्ञान जगत में भव भव भ्रमण कराता है।
समकित दीप प्रकाशित हो तो ज्ञाननेत्र खुल जाता है।।नेमी.।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

पर विभाव परिणति में फंसकर निज का धुआँ उड़ाता है।
निज स्वरूप की गन्ध मिले तो पर की गन्ध जलाता है।।नेमी.।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय विभावपरिणति विनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निज स्वभाव फल पाकर चेतन महामोक्ष फल पाता है।
चहुँगति के बंधन कटते हैं सिद्ध स्वरूप पा जाता है।।नेमी.।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय महामोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल फलादि वसु द्रव्य अर्घ से लाभ न कुछ हो पाता है।
जब तक निज स्वभाव में चेतन मग्न नहीं हो जाता है।।नेमी.।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच कल्याणक

कार्तिक शुक्ला षष्ठी के दिन शिव देवी उर धन्य हुआ।
अपराजित विमान से चयकर आये मोद अनन्य हुआ।।
स्वप्न फलों को जान सभी के मन में अति आनन्द हुआ।
नेमिनाथ स्वामी का गर्भोत्सव मंगल सम्पन्न हुआ।।

ॐ ह्रीं कार्तिकशुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रावण शुक्ला षष्ठी के दिन शौर्यपुरी में जन्म हुआ।
नृपति समुद्रविजय आँगन में सुर सुरपति का नृत्य हुआ।।
मेरु सुदर्शन पर क्षीरोदधि जल से शुभ अभिषेक हुआ।
जन्म महोत्सव नेमिनाथ का परम हर्ष अतिरेक हुआ।।

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लषष्ठ्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रावण शुक्ल षष्ठी को प्रभु पशुओं पर करुणा आई।
राजमती तज सहस्त्राम्र वन में जा जिन दीक्षा पाई।।
इन्द्रादिक ने उठा पालिकी हर्षित मंगलचार किया।
नेमिनाथ प्रभु के तपकल्याणक पर जय जयकार किया।।

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लषष्ठ्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आश्विन शुक्ला एकम को प्रभु हुआ ज्ञान कल्याण महान।
उर्जयंत पर समवशरण में दिया भव्य उपदेश प्रधान।।
ज्ञानावरण, दर्शनावरणी मोहनीय का नाश किया।
नेमिनाथ ने अन्तराय क्षयकर कैवल्य प्रकाश लिया ।।

ॐ ह्रीं आश्विनशुक्लप्रतिपदा ज्ञानमंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री गिरनार क्षेत्र पर्वत से महामोक्ष पद को पाया।
जगती ने आषाढ़ शुक्ल सप्तमी दिवस मंगल गाया।।
वेदनीय अरु आयु नाम अरु गोत्र कर्म अवसान किया।
अष्टकर्म हर नेमिनाथ ने परम पूर्ण निर्वाण लिया।।

ॐ ह्रीं आषाढ़शुक्लसप्तम्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

जय नेमिनाथ नित्यादित जिन, जय नित्यानन्द नित्य चिन्मय।
जय निर्विकल्प निश्चल निर्मल, जय निर्विकार नीरज निर्भय।।
नृपराज समुद्र विजय के सुत माता शिवा देवी के नन्दन।
आनन्द शौर्यपुरी में छाया जय जय से गूंजा पाण्डुक वन।।
बालकपन में क्रीड़ा करते तुमने धारे अणुव्रत सुखमय।
द्वारिकापुरी में रहे अवस्था पाई सुन्दर यौवन वय।।

आमोद-प्रमोद तुम्हारे लख पूरा यादवकुल हर्षाता।
तब श्री कृष्ण नारायण ने जूनागढ़ से जोड़ा नाता।।
राजुल से परिणय करने को जूनागढ़ पहुँचे वर बनकर।
जीवों की करुणा पुकार सुनी जागा उर में वैराग्य प्रखर।।
पशुओं को बन्धन मुक्त किया कंगन विवाह का तोड़ दिया।
राजुल के द्वारे आकर भी स्वर्णिम रथ पीछे मोड़ लिया।।
रथत्याग चढ़े गिरनारी पर जा पहुँचे सहस्त्राम्र वन में।
वस्त्राभूषण सब त्याग दिये जिन दीक्षाधारी तनमन में।।
फिर उग्र तपश्या के द्वारा निश्चय स्वरूप मर्मज्ञ हुए।
घातिया कर्म चारों नाशे छप्पन दिन में सर्वज्ञ हुए।।
तीर्थंकर प्रकृति उदय आई सुरहर्षित समवशरण रचकर।
प्रभु गंधकुटि में अंतरीक्ष आसीन हुए पद्मासन धर।।
ग्यारह गणधर में थे पहले गणधर वरदत्त महाऋषिवर।
श्री मुख्य आर्यिका राजमती श्रोता थे अगणित भव्यप्रवर।।
दिव्यध्वनि खिरने लगी शाश्वत ओंकार घन गर्जन सी।
शुभ बारहसभा बनी अनुपम सौंदर्यप्रभा मणि कंचनसी।।
जगजीवों का उपकार किया भव्यों को शिवपथ बतलाया।
निश्चय रत्नत्रय की महिमा का परम मोक्षफल दर्शाया।।
कर प्राप्त चतुर्दश गुणस्थान योगों का पूर्ण अभाव किया।
कर उर्ध्वगमन सिद्धत्व प्राप्तकर सिद्धलोक आवास लिया।।
गिरनार शैल से मुक्त हुए तन के परमाणु उड़े सारे।
पावन मंगल निर्वाण हुआ सुरगण के गूंजे जयकारे।।
नखकेश शेष थे देवों ने माया मय तन निर्वाण किया।
फिर अग्निकुमार सुरों ने आकर मुकुटानल से तन भस्म किया।।

पावन भस्मि का निज-निज के मस्तक पर सब ने तिलक किया।
मंगल वाद्यों की ध्वनि गूंजी निर्वाण महोत्सव पूर्ण किया।।
कर्मों के बन्धन टूट गये पूर्णत्व प्राप्त कर सुखी हुए।
हम तो अनादि से हे स्वामी भव दुख बंधन से दुखी हुए।।
ऐसा अन्तरबल दो स्वामी हम भी सिद्धत्व प्राप्त करलें।
तुम पद चिन्होंपर चल प्रभुवर शुभ-अशुभ विभावों को हर लें।।
ध्रुव भाव शुद्ध का अर्चनकर हम अर्न्तध्यानी बन जावें।
घातिया चारकर्मों को हर हम केवलज्ञानी बन जावें।।
शाश्वत शिवपद पाने स्वामी हम पास तुम्हारे आ जायें।
अपने स्वभाव के साधन से हम तीन लोक पर जय पायें।।
निज सिद्ध स्वपद पाने को प्रभु हर्षित चरणों में आया हूँ।
वसु द्रव्य सजाकर नेमीश्वर प्रभु पूर्ण अर्घ्य मैं लाया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शंख चिन्ह चरणों में शोभित जयजय नेमि जिनेश महान।
मन वच तन जो ध्यान लगाते वे हो जाते सिद्ध समान।।

इत्याशीर्वादः

जो जीव पापकार्यों में तो उत्साह से धन खर्च करता है, और धर्मकार्यों कंजूसी करता है तो उस जीव को धर्म का सच्चा प्रेम नहीं है, उसे धर्म की अपेक्षा संसार का प्रेम अधिक है। धर्म के प्रेम वाला गृहस्थ अपनी लक्ष्मी को संसार की अपेक्षा धर्मकार्यों में अधिक उत्साह से खर्च करता है।

अरे! चैतन्य को साधने के लिये जहाँ सर्वसंगपरित्यागी मुनि होने की भावना हो, वहाँ लक्ष्मी को मोह न घटे –यह कैसे बने?

–पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

श्री पार्श्वनाथ जिन पूजन - 1

वर स्वर्ग प्राणतको विहाय सुमात वामा सुत भये।
अश्वसेन के पारस जिनेश्वर चरण तिनके सुर नये।।
नौ हाथ उन्नत तन विराजै उरग-लक्षण अति लसै।
थापूँ तुम्हें जिन आय तिष्ठो कर्म मेरे सब नसैं।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

(चामर छन्द)

क्षीर सोम के समान अम्बू-सार लाइए,
हेम-पात्र धारके सु आपको चढ़ाइये।
पार्श्वनाथदेव सेव आपकी करूँ सदा,
दीजिये निवास मोक्ष भूलिए नहीं कदा।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय गर्भजन्मतपोज्ञाननिर्वाणपंचकल्याणकप्राप्ताय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दनादि केसरादि स्वच्छ गन्ध लीजिए,
आप चर्न चर्च मोह ताप को हनीजिए।। पार्श्व०।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

फेन चन्द के समान अक्षतं मँगाय के,
चर्ण के समीप सार पूजको रचाय के।। पार्श्व०।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

केवड़ा गुलाब और केत की चुनाईए,
धार चर्ण के समीप काम को नशाइए।। पार्श्व०।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

घेवरादि बावरादि मिष्ट सद्य में सनें,
आप चर्ण अर्च ते क्षुधादि-रोग को हनें।। पार्श्व०।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

लाय रत्न-दीप को सनेह-पूर के हरूँ,
बातिका कपूर वार मोह-ध्वान्त को हरूँ।। पार्श्व०।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप गन्ध लेय के सुअग्नि संग जारिए,
तास धूप के सु अंग कर्म अष्ट वारिए।। पार्श्व०।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धुपं निर्वपामीति स्वाहा।

खारकादि चिर्भटादि रत्न-थार में भरूँ,
हर्ष धार के जजूँ सुमोक्ष सौख्य को वरूँ।। पार्श्व०।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

नीर गन्ध अक्षतं सुपुष्प चारु लीजिए,
दीप धूप श्रीफलादि अर्घ्य तें जजीजिए।। पार्श्व०।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच कल्याणक

शुभ प्राणत स्वर्ण विहाये, वामा माता उर आये।
वैशाखतनी दुति कारी, हम पूजें विघ्न-निवारी।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय वैशाखकृष्णद्वितीयां गर्भकल्याणकप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जन्में त्रिभुवन-सुखदाता, एकादशि पौष विख्याता।
श्यामा-तन अद्भुत राजे, रवि-कोटिक-तेज सुलाजे।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय पौषकृष्णैकादश्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कलि पौष इकादशि आई, तब बारह भावना भाई।
अपने कर लोंच सुकीना, हम पूजें चर्न जजीना।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय पौषकृष्णैकादश्यां तपकल्याणकप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कलि चैत चतुर्थी आई, प्रभु केवलज्ञान उपाई।
तब प्रभु उपदेश जु कीना, भवि जीवन को सुख दीना।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय चैत्रकृष्णचतुर्थ्याम् ज्ञानकल्याणकप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सित सावन सातैं आई, शिव-नार तबै जिन पाई।
सम्मेदाचल हरि माना, हम पूजें मोक्ष-कल्याना।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय श्रावणशुक्लसप्तम्यां मोक्षकल्याणकप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

पारसनाथ जिनेन्दतने वच पानभखी जरते सुन पाये।
करो सरधान लहो पद आन भये पद्मावति-शेष कहाये।।
नाम प्रताप करे सन्ताप सुभव्यन को शिव शर्म दिखाये।
हो विश्वसेन के नन्द भले गुण गावत हैं तुमरे हरषाये।।

केकी-कण्ठ समान छवि, वपु उतंग नव हाथ।
लक्षण उरग निहार पग, वन्दूँ पारसनाथ।।

(मोतियादाम छन्द)

रचि नगरी षट् मास अगार, बने बहु गोपुर शोभ अपार।
सु कोटतनी रचना छवि देत, कँगूरन पै लहकैं बहु केत।।
बनारस की रचना जु अपार, करि बहु भांत धनेश तैयार।
तहाँ विश्वसेन नरेन्द्र उदार, करैं सुख वाम सु दे पटनार।।
तजो तुम प्राणत नाम विमान, भये तिनके घर नन्दन आन।
तबै पुर इन्द्र नियोगनि आय, गिरीन्द्र करी विध न्होन सु जाय।।

पिता घर सौंप गये निज धाम, कुबेर करे वसु जाम जु काम।
बढे जिन दूज मयंक समान, रमैं बहु बालक निर्जर आन।।
भये जब अष्टम वर्ष कुमार, धरे अणुव्रत महा सुखकार।
पिता जब आन करी अरदास, करो तुम ब्याह वरो मम आस।।
करि तब नाहिं रहे जगचन्द, किये तुम काम कषाय जु मन्द।
चढ़े गजराज कुमारन संग, सु देखत गंगतनी सुतरंग।।
लख्यो इक रंक करे तप घोर, चहुँ दिस अग्नि बले अतिजोर।
कहे जिननाथ अरे सुन भ्रात, करे बहु जीवतनी मत घात।।
भयो तब कोप कहै कित जीव, जले तब नाग दिखाय सजीव।
लख्यो यह कारण भावन भाय, नये दिव-ब्रह्म-ऋषि सब आय।।
तबै सुर चार प्रकार नियोग, धरी शिविका निज कन्ध मनोग।
करो बन माँहि निवास जिनन्द, धरे व्रत चारित आनन्द-कन्द।।
गहे तहाँ अष्टम के उपवास, गये धनदत्त तनें जु अवास।
दियो पयदान महा सुखकार, भई पण वृष्टि तहाँ तिह वार।।
गये फिर कानन माँहि दयाल, धरो तुम योग सबै अघ टाल।
तबै वह धूम सुकेत अयान, भयो कमठाचर को सुर आन।।
करै तब गौन लखै तुम धीर, जु पूरब बैर विचार गहीर।
करो उपसर्ग भयानक घोर, चली बहु तीक्षण पवन झकोर।।
रहो दशहुँ दिश में तम छाय, लगी बहु अग्नि लखी नहिं जाय।
सुरुण्डन के बिन मुण्ड दिखाय, पड़े जल मूसल धार अथाय।।
तबै पद्मावती कन्त धनन्द, नये युग आय तहाँ जिनचन्द।
भगो तब रंक सू देखत हाल, लहो तब केवलज्ञान विशाल।।
दियो उपदेश महा हितकार, सुभव्यन बोधि सम्मेद पधार।
सुवर्णभद्र जू कूट प्रसिद्ध, वरी शिवनारि लही वसु ऋद्ध।।

जजूँ तुम चर्ण दोऊ कर जोर, प्रभु लखिये अब ही मम ओर।
कहैं 'बखतावर' रत्न बनाय, जिनेश हमें भव-पार लगाय।।

(मोतियादाम छन्द)

जय पारस-देवं, सुर-कृत सेवं, वन्दित चरण सुनागपति।
करुणा के धारी, पर-उपकारी, शिव-सुखकारी कर्म हती।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय गर्भजन्मतपोज्ञाननिर्वाणपंचकल्याणकप्राप्तय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो पूजै मन लाय, भव्य पारस प्रभु नित ही।
ताके दुख सब जाँय, भीति व्यापै नहिं कित ही।।
सुख-सम्पत्ति अधिकाय, पुत्र-मित्रादिक सारे।
अनुक्रम सों शिव लहे, 'रतन' इम कहें पुकारे।।

(पुष्पांजलिम् क्षिपेत्)

*यदि कोई जिनपूजा को परमार्थ से धर्म ही मानले तो वह उसकी भूल है और यदि कोई जिनपूजा का निषेध करे तो वह भी भूल है। जिन प्रतिमा जैन धर्म में अनादि की वस्तु है, परन्तु वह जिन प्रतिमा वीतराग हो – **जिन प्रतिमा जिनसारखी**। किसी ने उस जिन प्रतिमा पर चंदन पुष्प–आभरण–मुकुट–वस्त्र आदि चढ़ाकर उसका स्वरूप विकृत कर दिया हो और किसी ने जिनप्रतिमा के दर्शन–पूजन में पाप बतलाकर उसका निषेध किया हो –यह दोनों की भूल है।*

भाई! जिनप्रतिमा है, उसके दर्शन–पूजन का भाव होता है; परन्तु उसकी सीमा कितनी? कि शुभराग जितनी। यदि उससें आगे बढ़कर तू उसे परमार्थ धर्म मानले तो वह तेरी भूल है।

–पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

श्री पार्श्वनाथ जिन पूजन - 2

हे पार्श्वनाथ! हे पार्श्वनाथ, तुमने हमको यह बतलाया,
निज पार्श्वनाथ में थिरता से, निश्चय सुख होता सिखलाया।
तुमको पाकर मैं तृप्त हुआ, ठुकराऊँ जग की निधि नामी,
हे रवि सम स्वपर प्रकाशक प्रभु मम हृदय विराजो हे स्वामी।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

जड़ जल से प्यास न शांत हुई, अतएव इसे मैं यहीं तजूँ,
निर्मल जल सा प्रभु निज स्वभाव, पहिचान उसी में लीन रहूँ।
तन मन धन निज से भिन्न मान लौकिक वाँछा नहिं लेश रखूँ,
तुम जैसा वैभव पाने को प्रभु, तब निर्मल चरण कमल अर्चूं।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन से शान्ति नहीं होगी, यह अन्तर्दहन जलाता है,
निज अमल भाव रूपी चन्दन ही, राग ताप मिटाता है।।तन.।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु उज्ज्वल अनुपम निज स्वभाव ही, एकमात्र जग में अक्षत,
जितने संयोग वियोग तथा, संयोगी भाव सभी विक्षत।।तन.।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

ये पुष्प काम-वर्द्धक ही हैं, इनसे तो शान्ति नहीं होती,
निज समयसार की सुमनमाल ही काम व्यथा सारी खोती।।तन.।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ व्यंजन क्षुधा न नाश करें, खाने से बंध अशुभ होता,
अरु उदय में होवे भूख अतः, निज ज्ञान अशन अब मैं करता।।तन.।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ दीपक से तो दूर रहो, रवि से नहीं आत्म दिखाई दे,
निजसम्यक् ज्ञानमयी दीपक, ही मोह तिमिर को दूर करै।।तन.।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जब ध्यान अग्नि प्रज्ज्वलित होय, कर्मों का ईंधन जले सभी,
दश धर्ममयी अतिशय सुगन्ध, त्रिभुवन में फैलेगी तब ही।।तन.।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

जो जैसी करनी करता है, वह फल भी वैसा पाता है,
जो हो कर्तृत्व-प्रमाद रहित, वह महा मोक्ष फल पाता है।।तन.।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

है निज आत्म स्वभाव अनुपम, स्वाभाविक सुख भी अनुपम है,
अनुपम सुखमय शिवपद पाऊँ, अतएव यह अर्घ समर्पित है।।तन.।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच कल्याणक अर्घ

दूज कृष्ण वैशाख को प्राणत स्वर्ग विहाय,
वामा माता उर वसे पूजूं शिव सुखदाय।

ॐ ह्रीं वैशाख कृष्ण द्वितीयां गर्भमंगलमंडिताय श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पौष कृष्ण एकादशी सुतिथि महा सुखकार,
अन्तिम जन्म लियो प्रभु इन्द्र कियो जयकार।

ॐ ह्रीं पौष कृष्ण एकादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पौष कृष्ण एकादशी बारह भावन भाय,
केंशलोंच करके प्रभु, धरो योग शिव दाय।

ॐ ह्रीं पौषकृष्ण एकादश्यां तपोमंगलमंडिताय श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुक्ल ध्यान में होय थिर, जीत उपसर्ग महान,
चैत्र कृष्ण शुभ चौथ को, पायो केवलज्ञान।

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्ण चतुर्थी केवलज्ञानप्राप्ताये श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रावण शुक्ला सु सप्तमी, पायो पद निर्वाण,
सम्मेदाचल विदित है, तब निर्वाण सुथान।

ॐ ह्रीं श्रावण शुक्ला सप्तम्याम् मोक्ष मंगलमंडिताय श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

हे पार्श्व प्रभु मैं शरण आयो, दर्शकर अति सुख लियो,
चिन्ता सभी मिट गई मेरी, कार्य सब पूरण भयो।
चिन्तामणी चिन्तन मिले, तरु कल्प मांगे देत हैं,
तुम पूजते सब पाप भागै, सहज सब सुख हेत हैं।
हे वीतरागी नाथ ! तुमको भी सरागी मानकर,
मांगे अज्ञानी भोग वैभव, जगत में सुख जानकर।
तब भक्ति वांछा और शंका, आदि दोषों रहित है,
वे पुण्य को ही होम करते, भोग फिर क्यों चहत हैं।
जब नाग और नागिन तुम्हारे, वचन उर धर सुर भये,
जो आपकी भक्ति करें वे, दास उनके भी भये।
वे पुण्यशाली भक्त जन की, सहज बाधा को हरें,
आनन्द से पूजा करें, वांछा न पूजा की करें।

हे प्रभो तब नासाग्रदृष्टि यह बताती है हमें,
सुख आत्मा में प्राप्त करलें, व्यर्थ बाहर में भ्रमें।
मैं आप सम निज आत्म लखकर, आत्म में थिरता धरूँ,
अरु आशा तृष्णा से रहित, अनुपम अतीन्द्रिय सुख भरूँ।
जब तक नहीं यह दशा होती, आपकी मुद्रा लखूँ,
जिनवचन का चिन्तन करूँ, व्रत शील संयम रस चखूँ।
सम्यक्त्व को नित दृढ़ करूँ, पापादि को नित परि हरूँ,
शुभ राग को भी हेय जानूँ, लक्ष्य उसका नहीं करूँ।
स्मरण ज्ञायक का सदा, विस्मरण पुद्गल का करूँ,
मैं निराकुल निज पद को पाऊँ, अन्य कुछ भी नहीं चहूँ।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूज्य ज्ञान वैराग्य है, पूजक श्रद्धावान।
पूजा गुण अनुराग अरु फल है सुख अम्लान।।

।। पुष्पांजलिम् क्षिपेत् ।।

बहुत से लोगों को तो लक्ष्मी कमाने की धुन में अच्छी तरह खाने का समय भी नहीं मिलता; देश छोड़कर अनार्य की तरह परदेश में जाते हैं, जहाँ भगवान के दर्शन भी नहीं मिलते, सत्संग भी नहीं मिलता। अरे भाई! जिसके लिये तूने इतना किया उस लक्ष्मी का कुछ तो सदुपयोग कर। देव-गुरु-धर्म का उत्साह सत्पात्रदान तीर्थयात्रा आदि में राग घटाकर लक्ष्मी का उपयोग करेगा तो तुझे भी अंतरंग में ऐसा संतोष होगा कि आत्मा के लिये मैंने कुछ किया है, अन्यथा मरण समय तू पछतायेगा कि अरे! जीवन में आत्महित के लिये कुछ नहीं किया।

–पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

श्री पार्श्वनाथ जिन पूजन - 3

तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ प्रभु के चरणों में करूँ नमन।
अश्वसेन के राजदुलारे वामादेवी के नन्दन।।
बाल ब्रह्मचारी भवतारी योगीश्वर जिनवर वन्दन।
श्रद्धा भाव विनय से करता श्री चरणों का मैं अर्चन।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

समकित जल से तो अनादि की मिथ्याभ्रांति हटाऊँ मैं।
निज अनुभव से जन्ममरण का अन्त सहज पा जाऊँ मैं।।
चिन्तामणि प्रभु पार्श्वनाथ की पूजन कर हर्षाऊँ मैं।
संकटहारी मंगलकारी श्री जिनवर गुणगाऊँ मैं।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

तन की तपन मिटाने वाला चन्दन भेंट चढ़ाऊँ मैं।
भव आताप मिटाने वाला समकित चन्दन पाऊँ मैं।।चिन्ता.।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत चरण समर्पित करके निज स्वभाव में आऊँ मैं।
अनुपम शान्त निराकुल अक्षय अविनश्वर पद पाऊँ मैं।।चिन्ता.।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्ट अंगयुत सम्यक्दर्शन पाऊँ पुष्प चढ़ाऊँ मैं।
कामबाण विध्वंसक रूँ निजशील स्वभाव सजाऊँ मैं।।चिन्ता.।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

इच्छाओं की भूख मिटानें सम्यक्पथ पर आऊँ मैं।
समकित का नैवेद्य मिले जो क्षुधारोग हर पाऊँ मैं।।चिन्ता.।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मिथ्यातम के नाश हेतु यह दीपक तुम्हें चढ़ाऊँ मैं।
समकित दीप जले अन्तर में ज्ञानज्योति प्रगटाऊँ मैं।।चिन्ता.।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

समकित धूप मिले तो भगवन् शुद्ध भाव में आऊँ मैं।
भाव शुभाशुभ धूम्र बने उड़ जायें धूप चढ़ाऊँ मैं।।चिन्ता.।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तमफल चरणों में अर्पित कर आत्मध्यान ही ध्याऊँ मैं।
समकित का फल महामोक्षफल प्रभु अवश्य पा जाऊँ मैं।।चिन्ता.।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्ट कर्म क्षय हेतु अष्ट द्रव्यों का अर्घ बनाऊँ मैं।
अविनाशी अविकारी अष्टम वसुधापति बन जाऊँ मैं।।चिन्ता.।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच कल्याणक अर्घ

प्राणत स्वर्ग त्याग आये माता वामा के उर श्रीमान।
कृष्ण दूज वैशाख सलोनी सोलह स्वप्न दिखे छविमान।।
पन्द्रह मास रत्न बरसे नित मंगलमयी गर्भ कल्याण।
जय जय पार्श्वजिनेश्वर प्रभु परमेश्वर जयजय दया निधान।।

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णद्वितीयां गर्भकल्याणक प्राप्ताय श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पोष कृष्ण एकादशमी को जन्मे, हुआ जन्म कल्याण।
ऐरावत गजेन्द्र पर आये तब सौधर्म इन्द्र ईशान।।
गिरि सुमेरू पर क्षीरोदधि से किया दिव्य अभिषेक महान।
जय जय पार्श्वजिनेश्वर प्रभु परमेश्वर जयजय दया निधान।।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णएकादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बाल ब्रह्मचारी व्रतधारी उर छाया वैराग्य प्रधान।
लौकान्तिक देवों ने आकर किया आपका जय जय गान।।
पौष कृष्ण एकादशमी को हुआ आपका तप कल्याण।
जय जय पार्श्व जिनेश्वर प्रभु परमेश्वर जयजय दया निधान।।

ॐ ह्रीं पौषकृष्ण एकादश्यां तप कल्याणकप्राप्ताय श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कमठ जीव ने अहिक्षेत्र पर किया घोर उपसर्ग महान।
हुए न विचलित शुक्ल ध्यानधर श्रेणी चढ़े हुए भगवान।।
चैत्र कृष्ण की चौथ हो गई पावन प्रगटा केवलज्ञान।
जय जय पार्श्व जिनेश्वर प्रभु परमेश्वर जयजय दया निधान।।

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्ण चतुर्थी दिनेज्ञानकल्याणक प्राप्ताय श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रावण शुक्ल सप्तमी के दिन बने अयोगी हे भगवान।
अन्तिम शुक्ल ध्यानधर सम्मेदाचल से पाया निर्वाण।।
कूट सुवर्णभद्र पर इन्द्रादिक ने किया मोक्ष कल्याण।
जय जय पार्श्व जिनेश्वर प्रभु परमेश्वर जयजय दया निधान।।

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्ल सप्तम्यां मोक्षकल्याणक प्राप्ताय श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

तेईसवें तीर्थंकर प्रभु परम ब्रह्ममय परम प्रधान।
प्राप्त महाकल्याणपंचकः पार्श्वनाथ प्रणतेश्वर प्राण।।
वाराणसी नगर अति सुन्दर अश्वसेन नृप परम उदार।
ब्राह्मी देवी के घर जन्में जग में छाया हर्ष अपार।।
मति श्रुति अवधि ज्ञान के धारी बाल ब्रह्मचारी त्रिभुवान।
अल्प आयु में दीक्षा धरकर पंच महाव्रत धरे महान।।

चार मास छद्मस्थ मौन रह वीतराग अर्हन्त हुए।
आत्मध्यान के द्वारा प्रभु सर्वज्ञ देव भगवन्त हुए।।
बैरी कमठ जीव ने तुमको नौ भव तक दुख पहुँचाया।
इस भव में भी संवर सुर हो महा विघ्न करने आया।।
किया अग्निमय घोर उपद्रव भीषण झंझावात चला।
जल प्लावित हो गई धरा पर ध्यान आपका नहीं हिला।।
यक्षी पद्मावती यक्ष धरणेन्द्र विघ्न हरने आये।
पूर्व जन्म के उपकारों से हो कृतज्ञ तत्क्षण आये।।
प्रभु उपसर्ग निवारण के हित शुभ परिणाम हृदय छाये।
फण मण्डप अरु सिंहासन रच जय जय जयप्रभु गुणगाये।।
देव आपने साम्य भाव धर निज स्वरूप को प्रगटाया।
उपसर्गों पर जय पाकर प्रभु निज कैवल्य स्वपद पाया।।
कमठ जीव की माया विनशी वह भी चरणों में आया।
समवशरण रचकर देवों ने प्रभु का गौरव प्रगटाया।।
जगत जनों को ओंकार ध्वनि मय प्रभु ने उपदेश दिया।
शुद्ध बुद्ध भगवान आत्मा सबकी है संदेश दिया।।
दश गणधर थे जिनमें पहले मुख्य स्वयंभू गणधर थे।
मुख्य आर्यिका सुलोचना थी श्रोता महासेन वर थे।।
जीव, अजीव, आस्रव, संवर बन्ध निर्जरा मोक्ष महान।
ज्यों का त्यों श्रद्धान तत्त्व का सम्यक् दर्शन श्रेष्ठ प्रधान।।
जीव तत्त्व तो उपादेय है, अरु अजीव तो है सब ज्ञेय।
आस्रव बन्ध हेय हैं साधन संवर निर्जर मोक्ष उपेय।।
सात तत्त्व ही पाप पुण्य मिल नव पदार्थ हो जाते हैं।
तत्त्व ज्ञान बिन जग के प्राणी भव-भव में दुख पाते हैं।।

वस्तु तत्त्व को जान स्वयं के आश्रय में जो आते हैं।
आत्म चिंतवन करके वे ही श्रेष्ठ मोक्ष पद पाते हैं।।
हे प्रभु! यह उपदेश आपका मैं निज अन्तर में लाऊँ।
आत्मबोध की महाशक्ति से मैं निर्वाण स्वपद पाऊँ।।
अष्टकर्म को नष्ट करूँ मैं तुम समान प्रभु बन जाऊँ।
सिद्ध शिला पर सदा विराजूं निज स्वभाव में मुस्काऊँ।।
इसी भावना से प्रेरित हो हे प्रभु! की है यह पूजन।
तुव प्रसाद से एक दिवस मैं पा जाऊँगा मुक्ति सदन।।

ॐ ह्रीं श्री गर्भजन्मतपज्ञाननिर्वाणकल्याणक प्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सर्प चिन्ह शोभित चरण पार्श्वनाथ उर धार।
मन वच तन जो पूजते वे होते भव पार।।

2 2 2

जिसे धर्म का प्रेम नहीं, जिस घर में धर्मात्मा के प्रति भक्ति के उल्लास से तन–मन–धन नहीं लगाया जाता, वह वास्तव में घर ही नहीं है, परन्तु मोह का पिंजरा है, संसार का जेलखाना है। धर्म की प्रभावना और दान द्वारा ही गृहस्थ होने की सफलता है। मुनिपने में स्थित तीर्थंकर को अथवा महामुनियों को आहारदान देने पर रत्नवृष्टि होती है –ऐसी पात्रदान की महिमा है।

–पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

श्री वर्द्धमान पूजन - 1

श्रीमत वीर हरैं भव पीर भरैं सुख सीर अनाकुलताई।
केहरि अंक अरीकरदंक नये हरिपंकति मौलि सुआई।।
मैं तुमको इत थापतु हों प्रभु भक्ति समेत हिये हरषाई।
हे करुणाधनधारक देव इहाँ अब तिष्ठहु शीघ्रहि आई।।

ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमानजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमानजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमानजिनेन्द्र ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

(पुष्पांजलिम् क्षिपेत्)

(छन्द अष्टपदी)

क्षीरोदधि सम शुचि नीर, कंचनभृंग भरों।
प्रभु वेग हरो भवपीर यातैं धार करों।।
श्री वीर महा अतिवीर सन्मति-नायक हो।
जय वर्द्धमान गुणधीर सन्मति-दायक हो।।

ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलयागिरि चन्दन सार केसर संग घसों।
प्रभु भव आताप निवार पूजत हिय हुलसों।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

तन्दुल सित शशि सम शुद्ध लीनों थार भरी।
तसु पुंज धरों अविरुद्ध पावों शिवनगरी।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

सुरतरु के सुमन समेत सुमन सुमन प्यारे।
सो मनमथ-भंजन हेत पूजों पद थारे।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

रस रज्जत सज्जत सद्य मज्जत थार भरी।
पद जज्जत रज्जत अद्य भज्जत भूख अरी।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तम खण्डित मण्डित नेह दीपक जोवत हों।
तुम पदतर हे सुखगेह भ्रमतम खोवत हों।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

हरिचन्दन अगर कपूर चूर सुगन्ध करा।
तुम पदतर खेवत भूरि आठों कर्म जरा।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

रितुफल कलवर्जित लाय, कंचन थाल भरों।
शिवफल हित हे जिनराय तुम ढिग भेंट धरों।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जलफल वसु सजि हिमथार तन-मन मोद धरों।
गुण गाऊँ भवदधितार पूजत पाप हरों।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच कल्याणक

(राग टप्पा चाल में)

मोहि राखो हो सरना, श्री वर्द्धमान जिनरायजी।।मोहि.।।
गरभ साढ़सित छट्ठ लियो तिथि, त्रिशला उर अघ हरना।।
सुर सुरपति तित सेवकर्यो नित, मैं पूजों भव तरना।।मोहि.।।

ॐ ह्रीं आषाढ़शुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जनम चैत सित तेरस के दिन, कुण्डलपुर कन वरना।
सुरगिर सुरगुरु पूज रचायो, मैं पूजों भव हरना।।मोहि.।।

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मगसिर असित मनोहर दशमी ता दिन तप आचरना।
नृपकुमार घर पारन कीनों मैं पूजों तुम चरना ।।मोहि.।।

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां तपोमंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुकलदशैं वैशाख दिवस अरिघाति चतुक छय करना।
केवल लहि भवि भवसर तारे जजों चरन सुख भरना।।मोहि.।।

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कार्तिक श्याम अमावस शिवतिय पावापुरतैं वरना।
गनफनिवृन्द जजैं तित बहुविधि, मैं पूजों भय हरना।।मोहि.।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णअमावस्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(हरिगीतिका)

गनधर असनिधर, चक्रधर, हरधर गदाधर वरवदा,
अरु चापधर, विद्यासुधर, तिरसूलधर सेवहिं सदा।
दुखहरन आनन्द भरन तारन-तरन चरन रसाल हैं,
सुकुमाल गुनमनिमाल उन्नत, भाल की जयमाल हैं।।

(छन्द घत्तानन्द)

जय त्रिशलानन्दन, हरिकृतवंदन, जगदानन्दन चन्दवरं।
भवतापनिकन्दन, तनकनमन्दन, रहितसपन्दन नयनधरं।।

(छन्द त्रोटक)

जय केवलभानुकलासदनं, भविकोकविकाशन कन्दवनं।
जगजीत महारिपु मोहहरं, रजज्ञानदृगांवर चूर करं।।
गर्भादिक मंगलमण्डित हो, दुःखदारिद को नित खण्डित हो।
जगमाहिं तुम्ही सत पण्डित हो, तुम ही भवभावविहंडित हो।

हरिवंश सरोजन को रवि हो, बलवन्त महन्त तुम्ही कवि हो।
लहि केवल धर्मप्रकाश कियो, अबलों सोई मारग राजतियो।।
पुनि आप तने गुन मांहिं सही, सुर मग्न रहैं जितने सब ही।
तिनकी वनिता गुन गावत हैं, लय माननिसों मन भावत हैं।।
पुनि नाचत रंग उमंग भरी, तव भक्ति विषैं पग एम धरी।
झननं झननं झननं झननं, सुर लेत तहाँ तननं तननं।।
घननं घननं घनघंट बजै, दृमदम दृमदम मिरदंग सजै।
गगनांगन-गर्भगता सुगता, ततता ततता अतता वितता।।
धृगतां धृगतां गति बाजत है, सुरताल रसाल जु छाजत है।
सननं सननं सननं नभ में, इकरूप अनेक जु धारि भ्रमें।।
कई नारि सुबीन बजावति हैं, तुमरो जस उज्ज्वल गावति हैं।
करताल विषैं करताल धरैं, सुरताल विशाल जु नाद करैं।।
इन आदि अनेक उछाह भरी, सुर भक्ति करैं प्रभुजी तुमरी।
तुम ही जग जीवन के पितु हो, तुम ही बिन कारनतें हितु हो।।
तुम ही सब विघ्न विनाशन हो, तुम ही निज आनन्द भासन हो।
तुम ही चितचिंतितदायक हो, जगमांहिं तुम्ही सब लायक हो।।
तुमरे पुन मंगल मांहि सही, जिय उत्तम पुन्य लियो सब ही।
हमको तुम्हरी सरनागत है, तुमरे गुन में मन पागत है।।
प्रभु मो हिय आप सदा बसिये, जबलों वसुकर्म नहीं नसिये।
तबलों तुम ध्यान हिये वरतों, तबलों श्रुतचिन्तन चित्तरतों।।
तबलों व्रत चारित चाहतु हों, तबलों शुभ भाव सुगाहतु हों।
तबलों सतसंगति नित्य रहों, तबलों मम संजम चित्त गहों।।
जबलों नहिं नाश करों अरि को, शिवनारि वरों समता धरि को।
यह द्यो तबलों हमकों जिनजी, हम जाचतु हैं इतनी सुनजी।।

(घत्तानन्द)

श्रीवीर जिनेशा, नमति सुरेशा, नागनरेशा भगति भरा।
'वृन्दावन' ध्यावै, विघ्न नशावै, वांछित पावैं शर्म वरा।।

ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये जयमाला महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

श्री सनमति के जुगलपद, जो पूजे धर प्रीत।
'वृन्दृवन' सो चतुर नर, लहै मुक्ति नवनीत।।

।। पुष्पांजलिम् क्षिपेत् ।।

जिस प्रकार रण संग्राम में राजपूत का शौर्य छिपता नहीं, उसी प्रकार धर्मप्रसंग में धर्मात्मा का उत्साह छिपा नहीं रहता। धर्मात्मा का धर्मप्रेम ऐसा है कि धर्म प्रसंग में उसका उत्साह छिपा नहीं रह सकता, धर्म की रक्षा के लिये अथवा प्रभावना के लिये सर्वस्व स्वाहा करने का प्रसंग आवे तो भी पीछे मुड़कर नहीं देखता। ऐसे धर्मोत्साह पूर्वक दानादि का भाव श्रावक को भव समुद्र से पार होने हेतु जहाज समान है। अतः ग्रहस्थों को प्रतिदिन दान देना चाहिये।

–पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

श्री महावीर पूजन - 2

(सथापना)

जो मोह माया मान मत्सर, मदन मर्दन वीर हैं।
जो विपुल विघ्नों बीच में भी, ध्यान धारण धीर हैं।।
जो तरण-तारण भव-निवारण, भव-जलधि के तीर हैं।
वे वन्दनीय जिनेश, तीर्थंकर स्वयं महावीर हैं।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्र ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

जिनके गुणों का स्तवन पावन करन अम्लान है।
मल-हरन निर्मल-करन भागीरथी नीर-समान है।।
संतप्त-मानस शान्त हों जिनके गुणों के गान में।
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

लिपटे रहें विषधर तदपि-चन्दन विटप निर्विष रहें।
त्यों शान्त शीतल ही रहो-रिपु विघन कितने ही करें।।संतप्त.।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

सुख-ज्ञान-दर्शन-वीर जिन अक्षत समान अखण्ड हैं।
हैं शान्त यद्यपि तदपि जो दिनकर समान प्रचण्ड है।।संतप्त.।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

त्रिभुवनजयी अविजित कुसुमसर सुभट मारन सूर हैं।
पर-गन्ध से विरहित तदपि निज-गन्ध से भरपूर हैं।।संतप्त.।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

यदि भूख होतो विविध व्यंजन मिष्ट इष्ट प्रतीत हों।
तुम क्षुधा-बाधा रहित जिन! क्यों तुम्हें उनसे प्रीति हो?।।संतप्त.।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

युगपद् विशद् सकलार्थ झलकें नित्य केवलज्ञान में।
त्रैलोक्य-दीपक वीर-जिन दीपक चढ़ाऊँ क्या तुम्हें?।।संतप्त.।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जो कर्म ईन्धन दहन पावक पुंज पवन समान हैं।
जो हैं अमेय प्रमेय पूरण ज्ञेय ज्ञाता ज्ञान है।।संतप्त.।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सारा जगत फल भोगता नित पुण्य एवं पाप का।
सब त्याग समरस निरत जिनवर सफल जीवन आपका।।संतप्त.।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

इस अर्घ्य का क्या मूल्य है अनर्घ्य पद के सामने?
उस परम पद को पा लिया हे पतितपावन आपने।।संतप्त.।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच कल्याणक

सित छठवीं आषाढ़, माँ त्रिशला के गर्भ में।
अन्तिम गर्भावास, यही जान प्रणमूं प्रभो।।

ॐ ह्रीं आषाढ़शुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तेरस दिन सित चैत, अन्तिम जन्म लियो प्रभु।
नृप सिद्धार्थ निकेत, इन्द्र आय उत्सव कियो।।

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दशमी मगसिर कृष्ण, वर्द्धमान दीक्षा धरी।
कर्म कलिमा नष्ट, करने आत्मरथी बने।।

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां तपोमंगलमण्डिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सित दशमी बैशाख, पायो केवलज्ञान जिन।
अष्ट द्रव्यमय अर्घ्य, प्रभुपद पूजा करें हम।।

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कार्तिक मावस श्याम, पायो प्रभु निर्वाण तुम।
पावा तीरथधाम, दीपावली मनाँय हम।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णअमावस्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

यद्यपि युद्ध नहीं कियो, नाहिं रखें असि-तीर।
परम अहिंसक आचरण, तदपि बने महावीर।।

(पद्धरि)

हे मोह-महादलदलन वीर, दुर्द्धर-तप संयम धरण धीर।
तुम हो अनन्त आनन्दकन्द, तुम रहित सर्व जग दंद-फंद।।

अघकरन करन-मन हरन-हार, सुखकरन हरन भवदुख अपार।
सिद्धार्थ तनय तन रहित देव, सुर-नर-किन्नर सब करत सेव।।

मतिज्ञान रहित सन्मति जिनेश, तुम राग द्वेष जीते अशेष।
शुभ-अशुभ राग की आग त्याग, हो गये स्वयं तुम वीतराग।।

षट् द्रव्य और उनके विशेष, तुम जानत हो प्रभुवर अशेष।
सर्वज्ञ-वीतरागी जिनेश, जो तुम को पहिचाने विशेष।।

वे पहिचानें अपना स्वभाव, वे करें मोह-रिपु का अभाव।
वे प्रगट करें निज-पर विवेक, वे ध्यावें निज शुद्धात्म एक।।
निज आतम में ही रहें लीन, चारित्र-मोह को करें क्षीण।
उनका हो जावे क्षीण राग, वे भी हो जावें वीतराग।।
जो हुए आज तक अरीहंत, सबने अपनाया यही पंथ।
उपदेश दिया इस ही प्रकार, हो सबको मेरा नमस्कार।।
जो तुमको नहिं जाने जिनेश, वे पावें भव भव-भ्रमण क्लेश।
वे माँगें तुमसे धन-समाज, वैभव पुत्रादिक राज-काज।।
जिनको तुम त्यागे तुच्छ जान, वे उन्हें मानते हैं महान।
उनमें ही निशदिन रहें लीन, वे पुण्य-पाप में ही प्रवीन।।
प्रभु पुण्य-पाप से पार आप, बिन पहिचाने पावें संताप।
संतापहरण सुखकरण सार, शुद्धात्मस्वरूपी समयसार।।
तुम समयसार हम समयसार, सम्पूर्ण आत्मा समयसार।
जो पहिचानें अपना स्वरूप, वे हो जावें परमात्मरूप।।
उनको ना कोई रहे चाह, वे अपना लेवें मोक्ष राह।
वे करें आत्मा को प्रसिद्ध, वे अल्पकाल में होंय सिद्ध।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये जयमाला महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भूतकाल प्रभु आपका, वह मेरा वर्तमान ।
वर्तमान जो आपका, वह भविष्य मम जान।।

।। पुष्पांजलिम् क्षिपेत् ।।

श्री महावीर जिन पूजन - 3

वर्धमान सुवीर वैशालिक श्री जिनवीर को।
वीतरागी तीर्थंकर हितंकर अतिवीर को।।
इन्द्र सुर नर देव वंदित वीर सन्मति धीर को।
अर्चना पूजा करूँ मैं नमन कर महावीर को।।
नष्ट हो मिथ्यात्व प्रगटाऊँ स्वगुण गम्भीर को।
नीरक्षीर विवेक पूर्वक हरूँ भव की पीर को।।

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्र ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

जल से प्रभु प्यासबुझाने का झूठा अभिमानकिया अबतक।
परआश पिपासा नहीं बुझी मिथ्या भ्रममानकिया अबतक।।
भावों का निर्मल जल लेकर चिर तृषा मिटाने आया हूँ।
हे महावीर स्वामी! निज हित में पूजन करने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शीतलता हित चंदन चर्चित निज करता आया था अब तक।
निज शील स्वभाव नहीं समझा पर भाव सुहाया था अब तक।।
निज भावों का चंदन लेकर भवताप हटाने आया हूँ।
हे महावीर स्वामी! निज हित में पूजन करने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

भौतिक वैभव की छाया में निज द्रव्य भुलाया था अबतक।
निजपद विस्मृत कर परपद का ही राग बढ़ाया था अबतक।।
भावों के अक्षत लेकर मैं अक्षय पद पाने आया हूँ।
हे महावीर स्वामी! निज हित में पूजन करने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्पों की कोमल मादकता में पड़कर भरमाया अबतक।
पीड़ा न काम की मिटी कभी निष्काम न बन पाया अबतक।।
भावों के पुष्प समर्पित कर मैं काम नशाने आया हूँ।
हे महावीर स्वामी! निज हित में पूजन करने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नैवेद्य विविध खाकर भी तो यह भूख न मिट पाई अबतक।
तृष्णा का उदर न भरपाया, पर की महिमा गाई अबतक।।
भावों के चरु लेकर अब मैं तृष्णाग्नि बुझाने आया हूँ।
हे महावीर स्वामी! निज हित में पूजन करने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मिथ्याभ्रम अन्धकार छाया सन्मार्ग न मिल पाया अबतक।
अज्ञान अमावस के कारण निज ज्ञान न लख पाया अबतक।।
भावों का दीप जला अन्तर आलोक जगाने आया हूँ।
हे महावीर स्वामी! निज हित में पूजन करने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्मों की लीला में पड़कर भव भार बढ़ाया है अबतक।
संसार द्वंद के फंदे से निज धूम्र उड़ाया है अबतक।।
भावों की धूप चढ़ाकर मैं वसु कर्म जलाने आया हूँ।
हे महावीर स्वामी! निज हित में पूजन करने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

संयोगी भावों की भव ज्वाला में जलता आया अबतक।
शुभ के फल में अनुकूल संयोगों को पा इतराया अबतक।।
भावों का फल ले निजस्वभाव का शिव फल पाने आया हूँ।
हे महावीर स्वामी! निज हित में पूजन करने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अपने स्वभाव के साधन का विश्वास नहीं आया अबतक।
सिद्धत्व स्वयं से आता है आभास नहीं आया अबतक।।
भावों का अर्घ्य चढ़ाकार मैं अनुपम पद पाने आया हूँ।
हे महावीर स्वामी! निज हित में पूजन करने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री पंचकल्याणक

धन्य तुम महावीर भगवान धन्य तुम वर्द्धमान भगवान।
शुभ आषाढ़ शुक्ला षष्ठी को हुआ गर्भ कल्याण।।
माँ त्रिशला के उर में आये भव्य जनों के प्राण।
धन्य तुम महावीर भगवान ।।

ॐ ह्रीं आषाढ़शुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चैत्र शुक्ल शुभ त्रयोदशी का दिवस पवित्र महान।
हुए अवतरित भारत भू पर जग को दुखमय जान।। धन्य।।

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जग को अथिर जान छाया मन में वैराग्य महान।
मगसिर कृष्ण दशमी के दिन तप हित किया प्रयाण।। धन्य।।

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां तपकल्याणक प्राप्ताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुक्ल ध्यान के द्वारा करके कर्म घाति अवसान।
शुभ वैशाख शुक्ल दशमी को पाया केवलज्ञान।। धन्य।।

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां ज्ञानकल्याणक प्राप्ताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रावण कृष्ण एकम के दिन दे उपदेश महान।
दिव्यध्वनि से समवशरण में किया विश्व कल्याण।। धन्य।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णअमावस्यां दिव्यध्वनि प्राप्ताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कार्तिक कृष्ण अमावस्या को पाया पद निर्वाण।
पूर्ण परम पद सिद्ध निरन्जन सादि अनन्त महान।। धन्य।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णअमावस्यां मोक्षपद प्राप्ताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

जय महावीर त्रिशला नन्दन जय सन्मति वीर सुवीर नमन।
जय वर्द्धमान सिद्धार्थ तनय जय वैशालिक अतिवीर नमन।।
तुमने अनादि से नित निगोद के भीषण दुख को सहन किया।
त्रस हुए कई भव के पीछे पर्याय मनुज में जन्म लिया।।
पुरुरवा भील के जीवन से प्रारम्भ कहानी होती है।
अनगिनती भव धारे जैसी मति हो वैसी गति होती है।।
पुरुषार्थ किया पुण्योदय से तुम भरत पुत्र मारीच हुए।
मुनि बने फिर भ्रमित हुए शुभ अशुभभाव के बीच हुए।।
फिर तुम त्रिपृष्ठ नारायण बन, हो गये अर्धचक्री प्रधान।
फिर भी परिणाम नहीं सुधरे भव भ्रमण किया तुमने अजान।।
फिर देव नरक तिर्यन्च मनुज चारों गतियों में भरमाये।
पर्याय सिंह की पुनः मिली पाँचों समवाय निकट आये।।
अजितंजय और अमितगुण चारणमुनि नभ से भूपरआये।
उपदेश मिला उनका तुमको नयनों में आंसू भर आये।।
सम्यक्त्व हो गया प्राप्त तुम्हें, मिथ्यात्व गया, व्रत ग्रहण किया।
फिर देव हुए तुम सिंहकेतु सौंधर्म स्वर्ग में रमण किया।।
फिर कनकोज्ज्वलविद्याधर हो मुनिव्रत से लांतवस्वर्ग मिला।
फिर हुए अयोध्या के राजा हरिषेण साधुपद हृदय खिला।।
फिर महाशुक्र सुरलोक मिला चयकरचक्री प्रिय मित्र हुए।
फिर मुनिपद धारण करके प्रभु तुम सहस्त्रार में देव हुए।।

फिर हुए नन्दराजा मुनि बन तीर्थंकर नाम प्रकृति बाँधी।
पुष्पोत्तर में हो अच्युतेन्द्र भावना आत्मा की साधी।।
तुम स्वर्गयान पुष्पोत्तर तज माँ त्रिशला के उर में आये।
छह मास पूर्व से जन्म दिवस तक रत्न इन्द्र ने बरसाये।।
वैशाली के कुण्डलपुर में हे स्वामी तुमने जन्म लिया।
सुरपति ने हर्षित गिरि सुमेरु पर क्षीरोदधि अभिषेक किया।।
शुभनाम तुम्हारा वर्द्धमान रख प्रमुदित हुआ इन्द्रभारी।
बालकपन में क्रीड़ा करते तुम मति श्रुतिअवधिज्ञानधारी।।
संजय अरु विजय महामुनियों को दर्शन का विचार आया।
शिशु वर्द्धमान के दर्शन से शंका का समाधान पाया।।
मुनिवर ने सन्मति नाम रखा वे वनविहार कर चले गये।
तुम आठ वर्ष की अल्पआयु में ही अणुव्रत में ढ़ले गये।।
संगम नामक एक देव परीक्षा हेतु नाग बनकर आया।
तुमने निशंक उसके फणपर चढ़ नृत्य किया वह हर्षाया।।
तत्क्षण हो प्रगट झुका मस्तक बोला स्वामी शत-शत वंदन।
अति वीरवीर हे महावीर अपराध क्षमा करदो भगवन्।।
गजराज एक ने पागल हो आतंकित सबको कर डाला।
निर्भय उस पर आरुढ़ हुए पलभर में शान्त बना डाला।।
भव भोगों से होकर विरक्त तुमने विवाह से मुख मोड़ा।
बस बाल ब्रह्मचारी रहकर कंदर्प शत्रु का मद तोड़ा।।
जब तीस वर्ष के युवा हुए वैराग्य भाव जगा मन में।
लौकान्तिक आये धन्य-धन्य दीक्षा ली ज्ञात खण्ड वन में।।
नृपराज बकुल के गृह जाकर पारणा किया गौ दुग्ध लिया।
देवों ने पंचाश्चर्य किये जन-जन ने जय जयकार किया।।

उज्जयनी की शमशान भूमि में जाकर तुमने ध्यान किया।
सात्यिकी तनय भव रुद्र कुपितहो गया महाव्यवधान किया।।
उपसर्ग रुद्र ने बहुत किया तुम आत्मध्यान में रहे अटल।
नतमस्तक रुद्र हुआ तब ही उपसर्ग जयी तुम हुए सफल।।
कौशाम्बी में उस सती चन्दना दासी का उद्धार किया।
हो गया अभिग्रह पूर्ण चन्दना के कर से आहार लिया।।
नभ से पुष्पों की वर्षा लख नृप शतानीक पुलकित आये।
वैशाली नृप चेतक बिछुड़ी चन्दना सुता पा हर्षाये।।
संगमक देव तुमसे हारा जिसने भीषण उपसर्ग किए।
तुम आत्मध्यान में रहे अटल अन्तर में समता भाव लिए।।
जितनी भी बाधायें आईं उन सब पर तुमने जय पाई।
द्वादश वर्षों की मौन तपस्या और साधना फल लाई।।
मोहारि जयी श्रेणी चढ़कर तुम शुक्ल ध्यान में लीन हुए।
ऋजुकूला के तट पर पाया कैवल्यपूर्ण स्वाधीन हुए।।
अपने स्वरूप में मग्न हुए लेकर स्वभाव का अवलम्बन।
घातियाकर्म चारों नाशे प्रगटाया केवलज्ञान स्वधन।।
अन्तर्यामी सर्वज्ञ हुए तुम वीतराग अर्हन्त हुए।
सुरनरमुनि इन्द्रादिक बन्दित त्रैलोक्यनाथ भगवन्त हुए।।
विपुलाचल पर दिव्यध्वनि के द्वारा जग को उपदेशदिया।
जग की असारता बतलाकर फिर मोक्षमार्ग संदेश दिया।।
ग्यारह गणधर में हे स्वामी! श्रीगौतम गणधर प्रमुख हुए।
आर्यिका मुख्य चंदना सती श्रोता श्रेणिक नृप प्रमुख हुए।।
सोई मानवता जाग उठी सुर नर पशु सबका हृदय खिला।
उपदेशामृत के प्यासों को प्रभु निर्मल सम्यक्ज्ञान मिला।।

निज आत्मतत्त्व के आश्रय से निजसिद्धस्वपद मिल जाता है।
तत्त्वों के सम्यक् निर्णय से निज आत्मबोध हो जाता है।।
यह अनंतानुबंधी कषाय निज पर विवेक से जाती है।
बस भेद ज्ञान के द्वारा ही रत्नत्रय निधि मिल जाती है।।
इस भरतक्षेत्र में विचरण कर जगजीवों का कल्याण किया।
दर्शनज्ञान चारित्रमयी रत्नत्रय पथ अभियान किया।।
तुम तीस वर्ष तक कर विहार पावापुर उपवन में आये।
फिर योग निरोध किया तुमने निर्वाण गीत सबने गाये।।
चारों अघातिया नष्ट हुए परिपूर्ण शुद्धता प्राप्त हुई।
जा पहुँचे सिद्धशिलापर तुम दीपावली जग विख्यात हुई।।
हे महावीर स्वामी! अब तो मेरा दुख से उद्धार करो।
भवसागर में डूबा हूँ मैं हे प्रभु! इस भव का भार हरो।।
हे देव! तुम्हारे दर्शन कर निजरूप आज पहिचाना है।
कल्याण स्वयं से ही होगा यह वस्तुतत्त्व भी जाना है।।
निज पर विवेक जागा उर में समकित की महिमा आई है।
यह परम वीतरागी मुद्रा प्रभु मन में आज सुहाई है।।
तुमने जो सम्यक्पथ सबको बतलाया उसको आचरलूँ।
आत्मानुभूति के द्वारा मैं शाश्वत सिद्धत्व प्राप्त करलूँ।।
मैं इसी भावना से प्रेरित होकर चरणों में आया हूँ।
श्रद्धायुत विनयभाव से मैं यह भक्ति सुमन प्रभु लाया हूँ।।
तुमको है कोटि कोटि सादर वन्दन स्वामी स्वीकार करो।
हे मंगलमूर्ति तरण तारण अब मेरा बेड़ा पार करो।।

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सिंह चिन्ह शोभित चरण महावीर उर धार।
मन वच तन जो पूजते वे होते भव पार।।

।। पुष्पांजलिम् क्षिपेत्।।

श्री पंच बालयति जिनपूजन - 1

(हरिगीतिका)

स्थापना

निज ब्रह्म में नित लीन परिणति से सुशोभित हे प्रभो।
पूजित परम निज पारिणामिक से विभूषित हे विभो।।
आओ तिष्ठों अत्र तुम सन्निकट हो मुझमय अहो।
बालयति पाँचों प्रभु को वन्दना शत बार हो।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-मल्लि-नेमि-पार्श्व-वीर पंच बालयति जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-मल्लि-नेमि-पार्श्व-वीर पंच बालयति जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-मल्लि-नेमि-पार्श्व-वीर पंचबालयति जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।
(इति आह्वाननम् स्थापनम् सन्निधिकरणंच)

(वीर छन्द)

हे प्रभु ध्रुव की ध्रुव परिणति के पावन जल में कर स्नान।
शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्द का तुम करो निरन्तर अमृत पान।।
क्षणवर्ती पर्यायों का तो जन्म-मरण है नित्य स्वभाव।
पंच बालयति-चरणों में हो पर-संयोग-वियोग अभाव।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

अहो सुगन्धित चेतन अपनी परिणति में नित महक रहा।
क्षणवर्ती चैतन्य विवर्तन की ग्रन्थि में चहक रहा।।
द्रव्य और गुण पर्यायों में सदा महकती चेतन गन्ध।
पंच बालयति के चरणों में नाशूं राग-द्वेष दुर्गन्ध।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

परिणामों के ध्रुव प्रवाह में बहे अखण्डित ज्ञायक भाव।
द्रव्य-क्षेत्र-अरु काल-भाव में नित्य अभेद अखण्ड स्वभाव।।

निज गुण-पर्यायों में जिनका अक्षय पद अविचल अभिराम।
पंच बालयति जिनवर मेरी परिणति में नित करो विराम।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

गुण अनन्त के सुमनों से हो शोभित प्रभु ज्ञायक उद्यान।
त्रैकालिक ध्रुव परिणति में तुम प्रतिपल करते नित्य विराम।।
इसके आश्रय से प्रभु तुमने नष्ट किया है काम-कलंक।
पंच बालयति के चरणों में धुला आज परिणति का पंक।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो कामबाणविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

हे प्रभु अपने ध्रुव प्रवाह में रहो निरन्तर शाश्वत तृप्त।
षट्रस की क्या चाह तुम्हें तुम निज रस के अनुभव में मस्त।।
तृप्त हुई अब मेरी परिणति ज्ञायक में करती विश्राम।
पंच बालयति के चरणों में क्षुधा रोग का रहा न नाम।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज ज्ञानमय ज्योति प्रज्ज्वलित रहती ज्ञायक के आधार।
प्रभो ! ज्ञान दर्पण में त्रिभुवन पल - पल होता ज्ञेयाकार।।
प्रभो निखरती मम श्रुत-परिणति अपने में तव केवलज्ञान।
पंच बालयति के प्रसाद से प्रगट हुआ ज्ञायक का ज्ञान।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

त्रैलौकिक परिणति में व्यापी ज्ञान सूर्य की मंगल धूप।
जिसमें सकल कर्ममल क्षयकर हुए प्रभो तुम त्रिभुवन भूप।।
मैं ध्याता तुम ध्येय हमारे मैं हूँ तुममय एकाकार।
पंच बालयति जिनवर मेरे शीघ्र नशो अब त्रिविध विकार।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज ज्ञान का ध्रुव प्रवाह फल सदा भोगता चेतन राज।
अपनी चित् परिणति में रमता पुण्य-पाप फल का क्या काज।।
महामोक्षफल की न कामना शेष रहे अब हे जिनराज।
पंच बालयति के चरणों में जीवन सफल हुआ है आज।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचम परम भाव की पूजित परिणति में जों करें विराम।
कारण परमपारिणमिक का अवलम्बन लेते अभिराम।।
वासुपूज्य अरु मल्लि-नेमिप्रभु-पार्श्वनाथ-सन्मति गुणखान।
अर्घ्य समर्पित पंच बालयति को पंचम गति लहूँ महान।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

पंच बालयति नित बसो मेरे हृदय मँझार।
उनके उर में बस रहा प्रिय चैतन्यकुमार।।

(छप्पय)

प्रिय चैतन्य कुमार सदा परिणति में राजे,
पर-परिणति से भिन्न सदा नित में अनुरागे।
दर्शन ज्ञानमयी उपयोग सुलक्षण शोभित,
जिसकी निर्मलता पर आतमज्ञानी मोहित।
ज्ञायक त्रैकालिक बालयति मम परिणति में व्याप्त हो,
मैं नमूँ बालयति पंच को पंचम गति पद प्राप्त हो।

(वीरछन्द)

धन्य धन्य हे वासुपूज्य जिन गुण अनन्त में करो निवास,
निज आश्रित परिणति में शाश्वत महक रही चैतन्य सुवास।

सत् सामान्य सदा लखते हो क्षायिक दर्शन से अविराम,
तेरे दर्शन से निज दर्शन पाकर हर्षित हूँ गुणखान।।
मोह मल्ल पर विजय प्राप्त कर महाबली हे मल्लि जिनेश,
निज गुण परिणति में शोभित हो शाश्वत मल्लिनाथ परमेश।
प्रतिपल लोकालोक निरखत केवलज्ञान स्वरूप चिदेश,
विकसित हो चित् लोक हमारा तव किरणों से सदा दिनेश।
राजमति तज नेमि जिनेश्वर शाश्वत सुख में लीन सदा,
भोक्ता भोग्य विकल्प विलय कर निज में निज का भोग सदा।
मोह रहित निर्मल परिणति में करते प्रभुवर सदा विराम,
गुण अनन्त का स्वाद तुम्हारे सुख में बसता हे अविराम।
जिनका आत्मपराक्रम लखकर कमठ शत्रु भी हुआ परास्त,
क्षायिक श्रेणी आरोहण कर मोह शत्रु को किया विनष्ट।
पार्श्वनाथ के चरण युगल में क्यों बसता यह सर्प कहो,
बल अनन्त लखकर जिनवर का चूर कर्म का दर्प अहो।
क्षायिक दर्शन ज्ञान वीर्य से शोभित हैं सन्मति भगवान,
भरत क्षेत्र के शासन नायक अन्तिम तीर्थंकर सुखखान।
विश्व सरोज प्रकाशक जिनवर हो केवल मार्तण्ड महान,
अर्घ्य समर्पित चरण कमल में वन्दन वर्द्धमान भगवान।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

पंचम भाव स्वरूप बालयति को नमूँ।
पाऊँ शुद्ध स्वरूप निज कारण परिणाममय।।

(पुष्पांजलि क्षिपेत्)

श्री पंच बालयति पूजा - 2

हे ब्रह्मचर्य के धनी ब्रह्ममय, परम पूज्य त्रिभुवन स्वामी,
हे पंच बालयती तीर्थंकर, तुम सम परिणति हो जगनामी।
आनन्दमयी निज परम ब्रह्म, मैंने प्रत्यक्ष निहारा है,
उल्लास हृदय में छाया प्रभु, मैंने अब तुम्हें चितारा है।
ज्यों दर्पण सन्मुख हो जग में, मोही तन रूप सजाते हैं,
त्यों तुम पूजन कर हे विभुवर, हम अपना भाव बढ़ाते हैं।

(सोरठा)

वासुपूज्य, मल्लि, नेमि, पार्श्व प्रभु, महावीर जिन,
नमत होय सुख चैन, द्रव्य-दृष्टि धर पूज हूँ।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-मल्लिनाथ-नेमिनाथ-पार्श्वनाथ-महावीर पंच बालयति तीर्थंकरा ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानं।
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-मल्लिनाथ-नेमिनाथ-पार्श्वनाथ-महावीर पंच बालयति तीर्थंकरा ! अत्र तिष्ट तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-मल्लिनाथ-नेमिनाथ-पार्श्वनाथ-महावीर पंच बालयति तीर्थंकरा ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(अष्टक)

निज में जुड़ती है दृष्टि जभी, समता का सहज प्रवाह बहे,
आनन्द अपूर्व प्रकट होवे, तब जन्म-जरा-मृत नहीं रहे।
है जन्म-जरा-मृत रहित प्रभु, मम आज दृष्टि में आया है,
समरस से तृप्त रहूँ विभुवर, मैंने जल यहाँ चढ़ाया है।
अतिशय है ब्रह्मभाव मेरा, कामादिक दुर्मति भागी है,
प्रभु ब्रह्मचर्य परमानन्द पा, अतिशय प्रतीति उर जागी है।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतितीर्थंकरेभ्योः जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

निज परम शांति शीतलता से, आपूर्ण सरोवर मम प्रभु है,
भव रहित जहाँ भव ताप नहीं सर्वोत्कृष्ट सुखमय विभु है।
जब ताप नहीं तब चन्दन का भी, काम नहीं कुछ शेष रहा,
चन्दन प्रभु यहीं चढ़ाया है, निस्पाप-ताप निज रूप गहा।
अतिशय है ब्रह्मभाव मेरा, कामादिक दुर्मति भागी है,
प्रभु ब्रह्मचर्य परमानन्द पा, अतिशय प्रतीति उर जागी है।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतितीर्थंकरेभ्योः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

छिलके से ढ़का हुआ अक्षत, छिलका हटते ही प्रकट हुआ,
पर्याय दृष्टि हटते ही त्यों, मम अक्षय प्रभु प्रत्यक्ष हुआ।
निज अक्षय प्रभु के आश्रय से ही, राग-द्वेष का होवे क्षय,
ये अक्षत यहाँ चढ़ाये हैं, मैंने पाया है पद अक्षय।
अतिशय है ब्रह्मभाव मेरा, कामादिक दुर्मति भागी है,
प्रभु ब्रह्मचर्य परमानन्द पा, अतिशय प्रतीति उर जागी है।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतितीर्थंकरेभ्योः अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

निष्काम पूर्ण निज वैभव का, मैं तृप्त हो गया दर्शन कर,
संकल्प विकल्प प्रवेश न हों, रहते सीमा से ही बाहर।
अद्भुत रहस्य यह पाया है, इच्छाओं की उत्पत्ति नहीं,
बस निज स्वभाव में मग्न रहूँ, ये पुष्प चढ़ाता आज यहीं।
अतिशय है ब्रह्मभाव मेरा, कामादिक दुर्मति भागी है,
प्रभु ब्रह्मचर्य परमानन्द पा, अतिशय प्रतीति उर जागी है।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतितीर्थंकरेभ्योः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

समरस अमृत का सागर है, क्षुत् पीड़ा का अस्तित्व नहीं,
त्यागोपादान शून्य पर से, कुछ ग्रहण त्याग कर्तृत्व नहीं।

जो निज स्वभाव से च्युत होकर तन के आश्रय से भूख लगी,
ये नैवेद्य यहीं समर्पित है स्वाश्रय से भव की भूख भगी।
अतिशय है ब्रह्मभाव मेरा, कामादिक दुर्मति भागी है,
प्रभु ब्रह्मचर्य परमानन्द पा, अतिशय प्रतीति उर जागी है।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतितीर्थंकरेभ्योः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रकाशत्व शक्ति शाश्वत मेरी है, सहज प्रकाशित मम स्वभाव,
सब बाह्य प्रकाश अनावश्यक, उसमें नहिं दिखता निजस्वभाव।
बाहर की दृष्टि छोड़ अहो! स्वसन्मुख चिन्मय ज्योति जगे,
ये दीपक यहीं विसर्जित है, अन्तर लौ से तम मोह भगे।
अतिशय है ब्रह्मभाव मेरा, कामादिक दुर्मति भागी है,
प्रभु ब्रह्मचर्य परमानन्द पा, अतिशय प्रतीति उर जागी है।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतितीर्थंकरेभ्योः मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दश धर्ममयी शाश्वत सुगन्ध चेतन नंदन में महक रही,
दुर्गन्धित भाव विकारों का, किंचित भी जहाँ अस्तित्व नहीं।
यह धूप यहीं प्रभु छोड़ रहा, बाहर की दृष्टि हटाई है,
स्वसन्मुख होकर अब प्रभु सम, स्वधर्म सुरभि शुभ पायी है।
अतिशय है ब्रह्मभाव मेरा, कामादिक दुर्मति भागी है,
प्रभु ब्रह्मचर्य परमानन्द पा, अतिशय प्रतीति उर जागी है।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतितीर्थंकरेभ्योः अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु मुक्त स्वरूप सहज पाया, आनन्द अपूर्व सु छाया है,
शिवफल की भी वांछा न रही, अन्तर पुरुषार्थ जगाया है।
ज्ञानी तो फल वांछा त्यागे, अज्ञानी त्याग का फल चाहे,
फल चढ़ा रहा हूँ हे जिनवर, बस ये विकल्प भी नहीं आये।

अतिशय है ब्रह्मभाव मेरा, कामादिक दुर्मति भागी है,
प्रभु ब्रह्मचर्य परमानन्द पा, अतिशय प्रतीति उर जागी है।
ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतितीर्थंकरेभ्योः मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु सर्व विशुद्ध स्वतत्त्व लखा, अब दृष्टि न पल भी हटती है,
होता उपयोग जभी बाहर, एकाग्र भावना जगती है।
एकाग्र रहे उपयोग सदा, यह ही निश्चय से अर्घ कहा,
जिससे अविचल अनर्घ पद हो, प्रभु बाह्य अर्घ इसलिये तजा।
अतिशय है ब्रह्मभाव मेरा, कामादिक दुर्मति भागी है,
प्रभु ब्रह्मचर्य परमानन्द पा, अतिशय प्रतीति उर जागी है।
ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतितीर्थंकरेभ्योः अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

वासुपूज्य श्री मल्लिजिन, नेमि पार्श्व महावीर।
बाल ब्रह्मचारी सुजिन, नमत मिटै भवपीर।।

(पद्धरि छन्द)

जय वासुपूज्य देवाधि देव, मंगलमय मंगल करन एव,
जय चिदानन्द चिद्रूप सार, धारी निज महिमा निर्विकार।
पूरब भव में तुमने स्वामी, सुन युगमन्धर प्रभु की वाणी,
नित आत्मभावना आई थी तीर्थंकर प्रकृति बंधाई थी।।
तप कर महा शुक्र विमान गये, चय नृप वसुपूज्य के पुत्र भये,
कल्याणक देव मनाये थे, पर निज में आप समाये थे।
भोगों को नहीं स्वीकार किया, दूरहि से प्रभुवर छोड़ दिया,
हो बालयति दीक्षा धारी, प्रकटाया निज पद सुखकारी।।
कर रहा अर्चना मल्लिनाथ, भवि दर्शन कर होते सनाथ,
वट वृक्ष विशाल गिरा लख कर, पूरब भव में दीक्षा धरकर।

तीर्थंकर पद का बन्ध किया, अपराजित स्वर्ग प्रयाण किया,
तँहते चयकर अवतार लिया, शादी के समय वैराग लिया।
छः दिन छद्मस्त रहे स्वामी, नव केवल लब्धि रमा पायी,
भव्यों को शिवपद दर्शाया, सम्मेदशिखर से शिव पाया।।
जय नेमीश्वर महिमा महान सुन पशु क्रन्दन वैराग्य ठान,
छोड़ें पशु अरु राजुल छोड़ी, भव बन्धन की कड़ियाँ तोड़ी।
जग को अनुपम आदर्श दिया, प्रभु धर्म अहिंसा प्रकट किया,
गिरनार शिखर से शिव पाया प्रभु चरणों में हम सिर नाया।।
जय पार्श्वनाथ तव गुण अपार, गणधर भी पावें नहीं पार,
इक दिवस सभा में विराज रहे, साकेत नरेश की भेंट लिए।
इक दूत वहाँ पर आया था, साकेत विभव दरशाया था,
ऋषभादि प्रभु स्मरण हुआ, वैराग्य हृदय में जाग उठा।
दीक्षा ले निज में मग्न हुए, तब कमठ घोर उपसर्ग किये,
अप्रभावित अचल रहे जिनवर, परमात्म दशा प्रगटी सत्वर।
ऐसी स्थिरता प्रभु पाऊँ, बस परम ब्रह्म में रम जाऊँ।।
हे महावीर विभु परम धीर, महिमा सागर से भी गम्भीर।
शादी प्रसंग जब आया था, प्रभुवर तुमने ठुकराया था,
दीक्षा ले द्वादश वर्ष प्रभो, दुर्द्धर तप धारा आप विभो।
निज ध्यान अग्नि द्वारा जिनेश, कर्मों को ध्वस्त किया अशेष,
अन्तिम तीर्थंकर अभिरामी मैं करूँ वन्दना जग नामी।
तब दर्शन करके हे स्वामी मैंने निज महिमा पहिचानी,
प्रभु प्रबल पराक्रम प्रगटाऊँ रागादि भाव पर जय पाऊँ।
जो तीर्थ आपने प्रगटाया, वह भी स्वामी मुझको भाया,
कीचड़ को लगाकर धोना क्या, अरु कूद अग्नि में रोना क्या।।

श्रद्धान परम जागा मन में, सुख शान्ति सदा है अन्तर में,
परमाणु मात्र भी नहीं पर में, मेरा सर्वस्व सदा मुझ में।
उपयोग नहीं पर में भागे, अतिचार नहीं किंचित् लागे,
प्रभुवर! निज में ही रम जाऊँ, निज परम ब्रह्मचर्य प्रगटाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतितीर्थंकरेभ्यो: महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

परम ब्रह्म आनन्दमय, चित् स्वभाव अविकार।
समयसार में लीन हो, होऊँ भव से पार।।

।। पुष्पांजलिम् क्षिपेत् ।।

अरे! बड़े-बड़े मुनि भी जिनेन्द्रदेव के दर्शन और स्तुति करते हैं और तुझे ऐसा भाव नहीं आता और एक मात्र पाप में ही रचा-पचा रहता है तो तू भव समुद्र में डूब जायेगा। भाई! यदि तुझे इस भव दु:ख के समुद्र में डूबना न हो और उससे तिरना हो तो संसार के तरफ की रुचि बदल कर वीतरागी देव-गुरु की तरफ तेरे परिणाम को लगा; वे धर्म का स्वरूप क्या कहते हैं, उसे समझ और उनके कहे हुये आत्मस्वरूप को रुचि में ले तो भव समुद्र से तेरा छुटकारा होगा।

-पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

श्री पंच बालयति पूजा - 3

जय प्रभु वासुपूज्य तीर्थंकर मल्लिनाथ प्रभु नेमि जिनेश।
जय श्री पार्श्वनाथ परमेश्वर जय जय महावीर योगेश।।
राग-द्वेष हर मोह क्षोभ हर मंगलमय हे जिन तीर्थेश।
पंच बालयति परम पूज्य प्रभु बाल ब्रह्मचारी ब्रह्मेश।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-मल्लिनाथ-नेमिनाथ-पार्श्वनाथ-महावीर पंच बालयति जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वनं।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-मल्लिनाथ-नेमिनाथ-पार्श्वनाथ-महावीर पंच बालयति जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-मल्लिनाथ-नेमिनाथ-पार्श्वनाथ-महावीर पंच बालयति जिनेन्द्र ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट् पुष्पांजलि क्षिपामि।

इस जल में इतनी शक्ति नहीं जो अंतरमल को धो डाले।
शुद्धातम का जो अनुभव ले वह पूर्ण शुद्धता को पाले।।
वासुपूज्य श्री मल्लि नेमि प्रभु पारस महावीर भगवान।
पाप ताप संताप विनाशक पंच बालयति पूज्य महान।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति जिनेन्द्रेभ्योः जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चंदन में इतनी शक्ति नहीं जो अन्तर ज्वाला शांत करे।
शुद्धातम का जोअनुभव ले वह भव की पीड़ा शांत करे।।वासु.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति जिनेन्द्रेभ्योः भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

तंदुल में इतनी शक्ति नहीं जो निज अखण्ड पद प्रगटाये।
शुद्धातम का जो अनुभव ले वह निश्चित अक्षय पद पाये।।वासु.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति जिनेन्द्रेभ्योः अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्पों में इतनी शक्ति नहीं जो शील स्वभाव प्रकाश करे।
शुद्धातम का जो अनुभव ले वह काम भाव का नाश करे।।वासु.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति जिनेन्द्रेभ्योः कामबाणविध्वन्सनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

ऐसा नैवेद्य नहीं जग में जो तृष्णा व्याधि मिटा डाले।
शुद्धातम का जो अनुभव ले तो क्षुधा अनादि हटा डाले।।वासु.।।
ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति जिनेन्द्रेभ्यो: क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ऐसा दीपक न कहीं जग में जो अन्तर के तम को हर ले।
शुद्धातम का जो अनुभव ले वह अन्तर आलोकित करले।।वासु.।।
ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति जिनेन्द्रेभ्यो: मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ रूप धूप में शक्ति नहीं जो कर्म शक्ति का हरण करे।
शुद्धातम का जो अनुभव ले वह निज स्वरूप का वरणकरे।।वासु.।।
ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति जिनेन्द्रेभ्यो: अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

तरु फल में ऐसी शक्ति नहीं जो अन्तर पूर्ण शान्ति छाये।
शुद्धातम का जो अनुभव ले वह महा मोक्ष फल को पाये।।वासु.।।
ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति जिनेन्द्रेभ्यो: मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

यह अर्घ्य न ऐसा शक्तिवान् जो सिद्ध लोक तक पहुँचाये।
शुद्धातम का जो अनुभव ले वह निज अनर्घ पद को पाये।।वासु.।।
ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति जिनेन्द्रेभ्यो: अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घावली-श्री वासुपूज्य स्वामी

चम्पापुर के राजा वसुपूज्य सुमाता विजया के नन्दन।
पन्द्रह मास रतन बरसाये सुरपति ने माँ के आँगन।।
दिक्कुमारियों ने सेवा कर माँ का किया मनोरंजन।
सोलह स्वप्न लखे माता ने निद्रा में सोते इक दिन।।
जन्म लिया तुमने कुमार वय में ही की दीक्षा धारण।
चार घातिया कर्म नाश कर केवलज्ञान लिया पावन।।

भादव शुक्ला चतुदर्शी को चम्पापुर से मुक्त हुए।
परम पूज्य प्रभु हर अघातिया, मुक्ति रमा से युक्त हुए।।
महिष चिन्ह चरणों में शोभित वासुपूज्य को करूँ नमन।
शुद्ध आत्मा की प्रतीति कर मैं भी पाऊँ मुक्ति सदन।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय गर्भजन्मतपज्ञानमोक्ष कल्याण प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री मल्लिनाथ स्वामी

मिथिलापुर नगरी के अधिपति कुम्भराज गृह जन्म लिया।
माता प्रभावती हर्षायीं देवों ने आनन्द किया।।
ऐरावत गज पर ले जाकर गिरि सुमेरु अभिषेक किया।
मात पिता को सौंप इन्द्र ने हर्षित नाटक नृत्य किया।।
लघु वय में ही दीक्षा धारी पंच मुष्ठि कच लोच किया।
छह दिन ही छद्मस्त रहे फिर तुमने केवलज्ञान लिया।।
संवल कूट शिखर सम्मेदाचल पर जय जय गान हुआ।
फागुन शुक्ल पंचमी के दिन महा मोक्ष कल्याण हुआ।।
कलश चिन्ह चरणों में शोभित मल्लिनाथ को करूँ नमन।
मन, वच, तन प्रभु के गुण गाऊं मैं भी पाऊं सिद्ध सदन।।

ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्राय गर्भजन्मतपज्ञानमोक्ष पंचकल्याण प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री नेमिनाथ स्वामी

नृपति समुद्र विजय हर्षाये शिव देवी उर धन्य किया।
नेमिनाथ तीर्थंकर तुमने शौर्यपुरी में जन्म लिया।।
नगर द्वारिका से विवाह हित जूनागढ़ को किया प्रयाण।
पशुओं की करुणा पुकार सुन उर छाया वैराग्य महान।।

भव तन भोगों से विरक्त हो पंच महाव्रत ग्रहण किया।
शीघ्र अनन्त चतुष्टय प्रगटा, पर विभाव सब हरण किया।।
ले कैवल्य मोक्ष सुख पाया, पाया शिव पद अविकारी।
शुभ आषाढ़ शुक्ल अष्टम को धन्य हो गई गिरनारी।।
शंख चिन्ह चरणों में शोभित नेमिनाथ को करूँ नमन।
निज स्वभाव के साधन द्वारा मैं भी पाऊँ मुक्ति सदन।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय गर्भजन्मतपज्ञानमोक्ष पंचकल्याण प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री पार्श्वनाथ स्वामी

वाराणसी नगर अति सुन्दर अश्वसेन नृप के नन्दन।
माता वामादेवी के सुत पार्श्वनाथ प्रभु जग वन्दन।।
तुम कुमार वय में ही दीक्षित होकर निज में हुए मगन।
कमठ शत्रु कर सका न कुछ भी यद्यपि किया उपसर्ग सघन।।
केवलज्ञान प्राप्त होते ही रचा इन्द्र ने समवशरण।
दे उपदेश भव्य जीवों को मुक्ति वधु का किया वरण।।
श्रावण शुक्ल सप्तमी के दिन अष्टकर्म का किया हनन।
कूट स्वर्णभद्र सम्मेदशिखर से पाया प्रभुवर सिद्ध सदन।।
सर्प चिन्ह चरणों में शोभित पार्श्वनाथ को करूँ नमन।
त्रैकालिक ज्ञायक स्वभाव से मैं भी पाऊँ मोक्ष भवन।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय गर्भजन्मतपज्ञानमोक्ष पंचकल्याण प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री महावीर स्वामी

कुण्डलपुर वैशाली नृप सिद्धार्थ पुत्र श्री वीर जिनेश।
प्रिय कारिणी माता त्रिशला के उर से जन्मे महा महेश।।

अविवाहित रह राज-पाट सब ठुकराया मुनिव्रत धारे।
द्वादश वर्ष तपश्या करके कर्म शिथिल सब कर डारे।।
केवल लब्धि प्रगट कर स्वामी जगती को उपदेश दिया।
तीस वर्ष तक कर विहार प्रभु मोक्ष मार्ग संदेश दिया।।
कार्तिक कृष्ण अमावस्या को अष्टकर्म अवसान किया।
पावापुर के महोद्यान से सिद्ध स्वपद निर्वाण लिया।।
सिंह चिन्ह चरणों में शोभित वर्द्धमान को करूँ नमन।
ध्रुव चैतन्य स्वरूप लक्ष्य में ले मैं पाऊँ मुक्ति भवन।।

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय गर्भजन्मतपज्ञानमोक्ष कल्याण प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

जय प्रभु वासुपूज्य जिन स्वामी मल्लिनाथ जय नेमि महान।
जय श्री पार्श्वनाथ प्रभु जिनवर जय जय महावीर भगवान।।
पर परिणति तज निज परिणति से चारों गति हर हुए महान।
पाँचों तीर्थंकर प्रभु तुमने पाई पंचम गति निर्वाण।।
अब वैराग्य जगे मन मेरे भव भोगों में रमूँ नहीं।
भाव शुभाशुभ के प्रपंच में और अधिक अब थमूँ नहीं।।
भक्ति भाव से यही विनय है निज अटूट बल दो स्वामी।
चिंतामणि रत्नत्रय पाकर बन जाऊँ शिव पथ गामी।।
मैं पाँचों समवाय प्राप्त कर निज पाँचों स्वाध्याय करूँ।
पंचम करण लब्धि को पाकर भेदज्ञान पुरुषार्थ करूँ।।
वर्ण पंच रस पंच गंध दो, स्पर्श अष्ट मुझमें न कहीं।
पाँच वर्गणा पुद्गल की पर्यायों से संबंध नहीं।।

पंचभेद मिथ्यात्व त्यागकर समकित अंगीकार करूँ।
पंच पाप तज एकदेश पांचों अणुव्रत स्वीकार करूँ।।
पंचेन्द्रिय के पंच विषय तज पंच प्रमाद विनाश करूँ।
पंच महाव्रत पंच समिति धर पंचाचार प्रकाश करूँ।।
पंच प्रकार भाव आस्रव का बंध नहीं होने पाए।
पंचोत्तर के वैभव का भी लोभ नहीं उर में आए।।
संयम पाँच प्रकार ग्रहण कर मैं पाँचों चारित्र धरूँ।
पंचम यथाख्यात चारित पा कर्मघातिया नाश करूँ।।
पंचम भाव परिणामिक से पाऊँ स्वामी पंचम ज्ञान।
पंच परावर्तन अभाव कर पाऊँ पंचम गति भगवान।।
पंच बालयति तुम चरणों में यही विनय है बारम्बार।
सादि अनंत सिद्ध पद पाऊँ नित्य निरंजन शिवसुखकार।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य मल्लिनाथ-नेमिनाथ-पार्श्वनाथ-महावीर पंच बालयति जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच बालयति प्रभु चरण भाव सहित उर धार।
मन वच तन जो पूजते वे होते भव पार।।

भव के भय का भेदन करने वाले इन भगवान के प्रति क्या तुझे भक्ति नहीं है? तो तू भव समुद्र में रहने वाले मगर के मुख में है।

–नियमसार कलश 15
परमपूज्य मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव

श्री शान्ति-कुन्थु-अरनाथ पूजन - 1

हो चक्रवती अरु कामदेव, प्रभु तीर्थंकर पदवी धारी,
हे शान्ति-कुन्थु-अरनाथ सदा मैं करूँ वन्दना अविकारी।
प्रभुवर तुम ढिंग आकर मेरे, आनन्द उर न समाया है,
दर्शन पाकर नाथ आपका, निज दर्शन मैंने पाया है।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ जिनेन्द्राय अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वनं।
ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ जिनेन्द्राय अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ जिनेन्द्राय अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

मिथ्यामल धोने आज, सम्यक् जल पाया,
प्रभु जन्म जरा मृत्यु शून्य, ज्ञायक दिखलाया।
हे शान्ति कुन्थु अरनाथ, चरणन शिरनाऊँ,
है महामहिम निजभाव, प्रभुता प्रगटाऊँ।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ जिनेन्द्रेभ्यः जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

संताप रहित निज, भाव निज में दरशाया,
भवताप नशावन हेतु, चंदन सम पाया। हे शान्ति.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ जिनेन्द्रेभ्यः भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

शाश्वत अक्षत निज भाव, दृष्टि में आया,
क्षत् रागादिक विनशाय, अक्षयपद ध्याया। हे शान्ति.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ जिनेन्द्रेभ्यः अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

निष्काम रूप लख देव, काम पलाया है,
सम्यक् श्रद्धा का पुष्प, आज चढ़ाया है। हे शान्ति.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ जिनेन्द्रेभ्यः कामबाणविध्वन्सनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

दर्शन कर निज में नाथ, तृप्ति पाई है,
चिर की क्षुत तृष्णा ज्वाला, आज बुझाई है। हे शान्ति.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ जिनेन्द्रेभ्यः क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तिहुंजग का जाननहार, आज जनाया है,
आलोकित है निज लोक, मोह भगाया है।हे शान्ति.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ जिनेन्द्रभ्यः मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु आतम ध्यान की अग्नि, अब सुलगाई है,
पर परिणति की दुर्गन्ध सर्व अब जलाई है।हे शान्ति.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ जिनेन्द्रभ्यः अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल की अभिलाषा नांहि, निज पद पाया है,
पूर्णत्व स्वयं में देख, आनन्द छाया है।हे शान्ति.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ जिनेन्द्रभ्यः मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु वीतराग विज्ञान, मय शुभ अर्घ लिया,
निज में अनर्घ पद नाथ, निज से प्राप्त किया।हे शान्ति.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ जिनेन्द्रभ्यः अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

जिन जग वैभव त्यागकर, निज वैभव प्रगटाय,
शाँति कुन्थु अरनाथ की, नित जयमाला गाय।

शांति जिनेश्वर दर्शन कर, निज शांति स्वरूप लखाया,
धन्य परम उपकारी निज सुख, निज में मुझे दिखाया।टेक।।
चाह दाह में भटका अब तक, सुख का लेश न पाया,
मंद कषायों द्वारा अंतिम, ग्रैवियक तक हो आया।
काललब्धि जागी प्रभुवर, मैं पास आपके आया।।धन्य.।।
आत्मा तो स्वभाव से सुखमय, दिव्य रहस्य बताया,
दीन दुखी पामर मैं हूँ, ये भ्रम का रोग मिटाया।
अंतर में प्रत्यक्ष देख सुख, अब विश्वास जगाया।।धन्य.।।

निज चैतन्य विभूति देखी, शक्ति अनंत निहारी,
प्रभु सम प्रभुता लखकर, खुद ही भाव हुए अविकारी।
होना नहीं सदा हूँ सुखमय, सम्यक्ज्ञान उपाया।।धन्य.।।
अब तो यही भावना प्रभुवर, निज में ही रम जाऊँ,
स्वानुभूति मय परिणति में ही, काल अनंत बिताऊँ।
निज में ही संतुष्ट, कामनाओं का हुआ सफाया ।।धन्य.।।
कुन्थुनाथ स्तुति करते, गणधर इन्द्रादिक हारे,
तुम महिमा वर्णन करने में हम को मंद विचारे।
निज स्वभाव साधन द्वारा ही, प्रभु मुक्ति पद पाया।।धन्य.।।
कुन्थु आदि सूक्ष्म जीवों के, प्रति भी दया सिखाई,
परम अहिंसा मयी धर्म की, जग में ध्वजा फहराई।
चलूँ आपके पद चिन्हों पर, आज यही मन भाया।।धन्य.।।
धर्म चक्र के अर स्वरूप, सार्थक प्रभु नाम तुम्हारा,
प्रभु आपका दर्शन पाकर, जागा भाग्य हमारा।
भव का फेरा मिटा सहज ही, शिवपथ मैंने पाया।।धन्य.।।
चक्री का साम्राज्य आपने, तृणवत् क्षण में छोड़ा,
हो निर्ग्रन्थ प्रभो उपयोग सु, निज ज्ञायक में जोड़ा।
सकलकर्म का नाश किया प्रभु, अविचल शिवपद पाया।।धन्य.।।
कहूँ कहाँ तक भाव बहुत हैं, अल्प शक्ति पर मेरी,
तुम सम ही प्रभुतामय, निस्पृह परिणति हो अब मेरी।
चाहूँ कुछ नहीं सहज भावसे, सविनयशीश नवाया।।धन्य.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ जिनेन्द्रभ्यः जयमालार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा- मंगलमय मंगलकरण, आत्म स्वरूप महान,
शुद्धातम में मग्न हो, प्रगटे पद निर्वाण।।

।। इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिं क्षिपेत।।

श्री शान्ति-कुन्थु-अरनाथ जिन पूजन - 2

जय शान्तिनाथ हे शान्ति मूर्ति जय कुन्थुनाथ आनन्दरूप।
जय अरहनाथ अरि कर्मजयी तीनों तीर्थंकर विश्वभूप।।
तुम कामदेव अतिशय महान सम्राट चक्रवर्ती अनूप।
भव भोग देह से हो विरक्त पाया निज सिद्ध स्वपद स्वरूप।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिकुन्थु अरनाथ जिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री शान्तिकुन्थु अरनाथ जिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री शान्तिकुन्थु अरनाथ जिनेन्द्र अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

पावन निर्मल नीर समुज्ज्वल श्री चरणों में अर्पित है।
जन्म मरण नाशो हे स्वामी सादर हृदय समर्पित है।।
शान्ति कुन्थु अरनाथ जिनेश्वर तीर्थंकर मंगलकारी।
कामदेव सम्राट चक्रवर्ती पद त्यागी बलिहारी।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिकुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

तन का ताप विनाशक चन्दन श्री चरणों में अर्पित है।
भवआताप मिटाओ स्वामी सादर हृदय समर्पित है।। शान्ति.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिकुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षय तन्दुल पुंज मनोहर श्री चरणों में अर्पित है।
अनुपम अक्षय निज पद दो प्रभु सादर हृदय समर्पित है।। शान्ति.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिकुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

अतिशय सुन्दर भाव पुष्प शुभ श्री चरणों में अर्पित है।
कामरोग विध्वंस करो प्रभु सादर हृदय समर्पित है।। शान्ति.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिकुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय कामबाणविध्वन्सनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मनभावन नैवेद्य सुहावन श्री चरणों में अर्पित है।
क्षुधा व्याधि नाशो हे स्वामी सादर हृदय समर्पित है।। शान्ति.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिकुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अन्धकार नाशक जड़दीपक श्री चरणों में अर्पित है।
मोह तिमिर हरलो हे स्वामी सादर हृदय समर्पित है।। शान्ति.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिकुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

महा सुगन्धित धूप निशंकित श्री चरणों में अर्पित है।
अष्टकर्म अरि ध्वंस करो प्रभु सादर हृदय समर्पित है।। शान्ति.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिकुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पुण्य भाव का सारा शुभफल श्री चरणों में अर्पित है।
परम मोक्षफल दो हे स्वामी सादर हृदय समर्पित है।। शान्ति.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिकुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्ट द्रव्य का अर्घ अष्ट विधि श्री चरणों में अर्पित है।
निज अनर्घ पद दो हे स्वामी सादर हृदय समर्पित है।। शान्ति.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिकुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री शान्तिनाथ जी

नगर हस्तिनापुर के अधिपति विश्वसेन नृप परम उदार।
माता ऐरादेवी के सुत शांतिनाथ मंगल दातार।।
कामदेव बारहवें पंचम चक्री सोलहवें तीर्थेश।
भरत क्षेत्र को पूर्ण विजयकर स्वामी आप हुए चक्रेश।।
नभ में नाशवान बादल लख उर में जागा ज्ञान विशेष।
भव भोगों से उदासीन हो ले वैराग्य हुए परमेश।।३।।
निज आत्मानुभूति के द्वारा वीतराग अर्हन्त हुए।
मुक्त हुए सम्मेद शिखर से परम सिद्ध भगवन्त हुए।।४।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्राय गर्भजन्मतपज्ञान निर्वाण पंचकल्याण प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री कुन्थुनाथ जी

नगर हस्तिनापुर के राजा सूर्यसेन के प्रिय नन्दन।
राजदुलारे श्रीमती देवी रानी के सुत वन्दन।।१।।
कामदेव तेरहवें तीर्थंकर सतरहवें कुन्थु महान।
छटे चक्रवर्ती बन पाई षट् खण्डों पर विजय प्रधान।।२।।
भौतिक वैभव त्याग मुनिश्वर बन स्वरूप में लीन हुए।
भाव शुभाशुभ का अभाव कर शुक्लध्यान तल्लीन हुए।।३।।
ध्यान अग्नि से कर्म दग्ध कर केवलज्ञान स्वरूप हुए।
सिद्ध हुए सम्मेद शिखर से तीन लोक के भूप हुए।।४।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्थुनाथ जिनेन्द्राय गर्भजन्मतपज्ञान निर्वाण पंचकल्याण प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री अरनाथ जी

नगर हस्तिनापुर के पति नृपराज सुदर्शन पिता महान।
माता मित्रा देवी की आँखों के तारे हे भगवान।।
कामदेव चोदहवें सप्तम चक्री थे अरनाथ जिनेश।
अष्टादशम तीर्थंकर जिन परम पूज्य जिनराज महेश।।
छह खण्डों पर शासन करते करते जग अनित्य पाया।
भव तन भोगों से विरक्तिमय उर वैराग्य उमड़ आया।।
पंच महाव्रत धारण करके निज स्वभाव में हुए मगन।
पा कैवल्य श्री सम्मेद शिखर से पाया मुक्ति गगन।।

ॐ ह्रीं श्री अरनाथ जिनेन्द्राय गर्भजन्मतपज्ञान निर्वाण पंचकल्याण प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

शान्ति कुन्थु अरनाथ जिनेश्वर के चरणों में नित वन्दन।
विमल ज्ञान आशीर्वाद दो काट सकूँ मैं भव बन्धन।।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरितमय लिया पंथ निर्ग्रन्थ महान।
सोलह वर्ष रहे छद्मस्थ अवस्था में तीनों भगवान।।
परम तपस्वी परम संयमी मौनी महाव्रती जिनराज।
निज स्वभाव के साधन द्वारा पाया तुमने निज पद राज।।
शुक्ल ध्यान के द्वारा स्वामी पाया तुमने केवलज्ञान।
दे उपदेश भव्य जीवों को किया सकल जग का कल्याण।।
मैं अनादि से दुखिया व्याकुल मेरे संकट दूर करो।
पाप ताप संताप लोभ भय मोह क्षोभ चकचूर करो।।
सम्यक्दर्शन प्राप्त करूँ मैं निज परिणति में रमण करूँ।
रत्नत्रय का अवलम्बन ले मोक्ष मार्ग का ग्रहण करूँ।।
वीतराग विज्ञान ज्ञान की महिमा उर में छा जाये।
भेद ज्ञान व निज आश्रय से शुद्ध आत्मा दर्शाए।।
यही विनय है यही भावना विषय कषाय अभाव करूँ।
तुम समान मुनि बन हे स्वामी निज चैतन्य स्वभाव वरूँ।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिकुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मृग अज, मीन चिन्ह चरणों में प्रभु प्रतिमा जो करे नमन।
जन्म जन्म के पातक क्षय मिट जाता भव दुख क्रन्दन।।
रोग शोक दारिद्र आदि पापों का होता शीघ्र शमन।
भव समुद्र से पार उतरते जो नित करते प्रभु पूजन।।

।। पुष्पांजलिम् क्षिपेत्।।

श्री सीमन्धर पूजन - 1

(कुण्डलिया)

भव-समुद्र सीमित कियो, सीमन्धर भगवान।
कर सीमित निजज्ञान को, प्रगट्यो पूरण ज्ञान।।
प्रगट्यो पूरण ज्ञान-वीर्य-दर्शन सुखकारी,
समयसार अविकार विमल चैतन्य-विहारी।
अंतर्बल से किया प्रबल रिपु-मोह पराभव,
अरे भवान्तक! करो अभय हर लो मेरा भव।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिन ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिन ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिन ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

प्रभुवर तुम जल से शीतल हो, जल से निर्मल अविकारी हो।
मिथ्यामल धोने को जिनवर, तुम ही तो मल परिहारी हो।।
तुम सम्यग्ज्ञान जलोदधि हो, जलधर अमृत बरसाते हो।
भविजन मन मीन प्राणदायक, भविजन मन ज़लज खिलाते हो।।
हे ज्ञान पयोनिधि सीमन्धर! यह ज्ञानप्रतीक समर्पित है।
हो शान्त ज्ञेय निष्ठा मेरी, जल से चरणाम्बुज चर्चित है।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चंदन-सम चन्द्रवदन जिनवर, तुम चन्द्रकिरण से सुखकर हो।
भव-ताप निकंदन हे प्रभुवर! सचमुच तुम ही भव-दुख-हर हो।।
जल रहा हमारा अन्तःस्थल, प्रभु इच्छाओं की ज्वाला से।
यह शान्त न होगा हे जिनवर रे ! विषयों की मधुशाला से।।
चिर-अंतर्दाह मिटाने को, तुम ही मलयागिरि चंदन हो।
चंदन से चरचूँ चरणांबुज, भव-तप-हर! शत-शत वंदन हो।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु! अक्षतपुर के वासी हो, मैं भी तेरा विश्वासी हूँ।
क्षत-विक्षत में विश्वास नहीं, तेरे पद का प्रत्याशी हूँ।।
अक्षत का अक्षत-संबल ले, अक्षत-साम्राज्य लिया तुमने।
अक्षत विज्ञान दिया जग को, अक्षत-ब्रह्माण्ड किया तुमने।।
मैं केवल अक्षत-अभिलाषी, अक्षत अतएव चरण लाया।
निर्वाण शिला के संगम-सा, धवलाक्षत मेरे मन भाया।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

तुम सुरभित ज्ञान-सुमन हो प्रभु, नहिं राग-द्वेष दुर्गन्ध कहीं।
सर्वांग सुकोमल चिन्मय तन, जग से कुछ भी सम्बन्ध नहीं।।
निज अन्तर्वास सुवासित हो, शून्यान्तर पर की माया से।
चैतन्य विपिन के चितरंजन, हो दूर जगत की छाया से।।
सुमनों से मन को राह मिली, प्रभु कल्पबेलि से यह लाया।
इनको पा चहक उठा मन-खग, भर चोंच चरण में ले आया।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

आनंद रसामृत के द्रह हो, नीरस जड़ता का दान नहीं।
तुम मुक्त-क्षुधा के वेदन से, षटरस का नाम-निशान नहीं।।
विध-विध व्यंजन के विग्रह से, प्रभु भूख न शांत हुई मेरी।
आनंद-सुधारस-निर्जर तुम, अतएव शरण ली प्रभु तेरी।।
चिर-तृप्ति-प्रदायी व्यंजन से, हो दूर क्षुधा के अंजन ये।
क्षुत्पीड़ा कैसे रह लेगी ? जब पाये नाथ निरंजन ये।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय क्षुधा-रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चिन्मय-विज्ञान-भवन अधिपति, तुम लोकालोक-प्रकाशक हो।
कैवल्य किरण से ज्योतित प्रभु! तुम महामोहतम नाशक हो।।

तुम हो प्रकाश के पुंज नाथ! आवरणों की परछाह नहीं।
प्रतिबिंबित पूरी ज्ञेयावलि, पर चिन्मयता को आँच नहीं।।
ले आया दीपक चरणों में, रे! अन्तर आलोकित करदो।
प्रभु तेरे मेरे अन्तर को, अविलंब निरन्तर से भर दो।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धू-धू जलती दुख की ज्वाला, प्रभु त्रस्त निखिल जगतीतल है।
बेचेत पड़े सब देही हैं चलता फिर राग प्रभजंन है।।
यह धूम घूमरीखा-खाकर, उड़ रहा गगन की गलियों में।
अज्ञान-तमावृत चेतन ज्यों, चौरासी की रंग रलियों में।।
संदेश धूप का तात्त्विक प्रभु, तुम हुये ऊर्ध्वगामी जग से।
प्रगटे दशांग प्रभुवर तुम को, अन्तःदशांग की सौरभ से।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ-अशुभ वृत्ति एकांत दुःख अत्यन्त मलिन संयोगी है।
अज्ञान विधाता है इनका, निश्चित चैतन्य विरोधी है।।
काँटों सी पैदा हो जाती, चैतन्य सदन के आँगन में।
चंचल छाया की माया-सी, घटती क्षण में बढ़ती क्षण में।।
तेरी फल-पूजा का फल प्रभु! हों शांत शुभाशुभ ज्वालायें।
मधुकल्प फलों सी जीवन में, प्रभु! शांति-लतायें छा जावें।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्मल जल-सा प्रभु निजस्वरूप, पहिचान उसी में लीन हुए।
भव ताप उतरने लगा तभी, चंदन-सी उठीं हिलोर हिये।।
अभिराम भवन प्रभु अक्षत का, सब शक्ति प्रसून लगे खिलने।
क्षुत् तृषा अठारह दोष क्षीण, कैवल्य प्रदीप लगा जलने।।

मिट चली चपलता योगों की, कर्मों के ईधन ध्वस्त हुए।
फल हुआ प्रभो! ऐसा मधुरिम, तुम धवल निरंजन स्वस्थ हुए।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

वैदेही हो देह में, अतः विदेही नाथ।
सीमंधर नीज सीम में, शाश्वत करो निवास।।
श्री जिन पूर्व विदेह में, विद्यमान अरहंत।
वीतराग सर्वज्ञ श्री, सीमंधर भगवंत।।

(पद्धरी)

हे ज्ञान स्वभावी सीमंधर! तुम हो असीम आनन्दरूप।
अपनी सीमा में सीमित हो, फिर भी हो तुम त्रैलोक्य भूप।।
मोहान्धकार के नाश हेतु, तुम ही हो दिनकर अति प्रचण्ड।
हो स्वयं अखंडित कर्म शत्रु को, किया आपने खंड-खंड।।
गृहवास राग की आग त्याग, धारा तुमने मुनिपद महान।
आतमस्वभाव साधन द्वारा, पाया तुमने परिपूर्ण ज्ञान।।
तुम दर्शन ज्ञान दिवाकर हो, वीरज मंडित आनंदकंद।
तुम हुए स्वयं में स्वयं पूर्ण, तुम ही हो सच्चे पूर्णचन्द।।
पूरब विदेह में हे जिनवर! हो आप आज भी विद्यमान।
हो रहा दिव्य उपदेश, भव्य पा रहे नित्य अध्यात्मज्ञान।।
श्री कुन्द कुन्द आचार्यदेव को, मिला आपसे दिव्यज्ञान।
आत्मानुभूति से कर प्रमाण, पाया उनने आनन्द महान।।

पाया था उनने समयसार, अपनाया उनने समयसार।
समझाया उनने समयसार, हो गये स्वयं वे समयसार।।
दे गये हमें वे समयसार, गा रहे आज हम समयसार।
है समयसार बस एक सार, है समयसार बिन सब असार है।।
मैं हूँ स्वभाव से समयसार, परणति हो जावे समयसार।
है यही चाह, है यही राह, जीवन हो जावे समयसार।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये जयमाला महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

समयसार है सार, और सार कुछ है नहीं।
महिमा अपरम्पार, समयसारमय आपकी।।

इत्याशीर्वादः

भाई! प्रातःकाल उठते ही तुझे वीतराग भगवान की याद नहीं आती, धर्मात्मा–संत मुनि याद नहीं आते और संसार के अखबार, व्यापार–धन्धा अथवा स्त्री आदि की याद आती है तो तू ही विचार कि तेरी परिणति किस तरफ जा रही है? संसार की तरफ या धर्म की तरफ? आत्मप्रेमी हो, उसका तो जीवन ही मानो देव–गुरुमय हो जाता है। कहा भी है....

हरतां फरतां प्रगट हरि देखूं रे....
मारुं जीव्युं सफल तब लेखूं रे....

–पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

श्री सीमन्धर पूजन - 2

जय जयति जय श्रेयांस नृप सुत सत्यदेवी नन्दनम्।
चऊ घाति कर्म विनष्ट कर्त्ता ज्ञान सूर्य निरन्जनम्।।
जय जय विदेहीनाथ जय जय धन्य प्रभु सीमन्धरम्।
सर्वज्ञ केवलज्ञानधारी जयति जिन तीर्थंकरम्।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिन ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिन ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिन ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

यह जन्म मरण का रोग, हे प्रभु नाश करूँ।
दो समरस निर्मल नीर, आत्म प्रकाश करूँ।।
शाश्वत जिनवर भगवन्त, सीमन्धर स्वामी।
सर्वज्ञ देव अरहंत, प्रभु अन्तरयामी।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन हरता तन ताप, तुम भव ताप हरो।
निज समशीतल हे नाथ मुझको आप करो।।शाश्वत.।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

इस भव समुद्र से नाथ, मुझको पार करो।
अक्षय पद दे जिनराज, अब उद्धार करो।।शाश्वत.।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

कन्दर्प दर्प हो चूर, शील स्वभाव जगे।
भव सागर के उस पार, मेरी नाव लगे।।शाश्वत.।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

यह क्षुधा ज्वाल विकराल, हे प्रभु शांत करूँ।
चरु चरण चढ़ाऊँ देव मिथ्या भ्रांति हरूँ ।।शाश्वत.।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मद मोह कुटिल विष रूप, छाया अंधियारा।
दो सम्यक्ज्ञान प्रकाश, फैले उजियारा।।शाश्वत.।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्मों की शक्ति विनष्ट, अब प्रभुवर कर दो।
मैं धूप चढ़ाऊँ नाथ, भव बाधा हर दो।।शाश्वत.।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल चरण चढ़ाऊँ नाथ, फल निर्वाण मिले।
अन्तर में केवलज्ञान, सूर्य महान खिले।।शाश्वत.।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जब तक अनर्घ पद प्राप्त हो न मुझे सत्वर।
मैं अर्घ चढ़ाऊँ नित्य चरणों में प्रभुवर।।शाश्वत.।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री कल्याणक अर्घ्यावली

जम्बू द्वीप सुमेरु सुदर्शन पूर्व दिशा में क्षेत्र विदेह।
देश पुष्कलावती राजधानी है पुण्डरीकिणी गेह।।
रानी सत्यवती माता के उर में स्वर्ग त्याग आये।
सोलह स्वप्न लखे माता ने रत्न सुरों ने वर्षाये।।

ॐ ह्रीं गर्भमंगलमण्डिताय श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नृप श्रेयांसराय के गृह में तुमने स्वामी जन्म लिया।
इन्द्रसुरों ने जन्ममहोत्सव कर निज जीवन धन्य किया।।
गिरि सुमेरु पर पांडुक वन में रत्नशिला सुविराजित कर।
क्षीरोदधि से न्हवन किया प्रभु दशों दिशा अनुरंजित कर।।

ॐ ह्रीं जन्ममंगलमण्डिताय श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एक दिवस नभ में देखे बादल क्षणभर में हुए विलीन।
बस अनित्य संसार जान वैराग्य भाव में हुए सुलीन।।
लौकान्तिक देवर्षि सुरों ने आकर जय जयकार किया।
अतुलित वैभव त्याग आपने वन में जा तप धार लिया।।

ॐ ह्रीं तपोमंगलमण्डिताय श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्म ध्यानमय शुक्ल ध्यान धर कर्मघातिया नाश किया।
त्रेसठ कर्म प्रकृतियाँ नाशी केवलज्ञान प्रकाश लिया।।
समवसरण में गंध कुटि में अंतरीक्ष प्रभु रहे विराज।
मोक्षमार्ग सन्देश दे रहे भव्य प्राणियों को जिनराज।।

ॐ ह्रीं केवलज्ञान मण्डिताय श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

शाश्वत विद्यमान तीर्थंकर सीमन्धर प्रभु दया निधान।
दे उपदेश भव्य जीवों को करते सदा आप कल्याण।।
कोटि पूर्व की आयु पाँच सौ धनुष स्वर्ण सम काया है।
सकल ज्ञेय ज्ञाता होकर भी निज स्वरूप ही भाया है।।
देव तुम्हारे दर्शन पाकर जागा है उर में उल्लास।
चरण कमल में नाथ शरण दो सुनो प्रभो मेरा इतिहास।।
मैं अनादि से था निगोद में प्रति पल जन्म मरण पाया।
अग्नि, भूमि, जल, वायु, वनस्पति कायक थावर तन पाया।।
दो इन्द्रिय त्रस हुआ भाग्य से पार न कष्टों का पाया।
जन्म तीन इन्द्रिय भी धारा दुख का अन्त नहीं आया।।
चौ इन्द्रियधारी बनकर मै विकलत्रय में भरमाया।
पंचेन्द्रिय पशु सैनी और असैनी हो बहु दुख पाया।।

बड़े भाग्य से प्रबल पुण्य से फिर मानव पर्याय मिली।
मोह महामद के कारण ही नहीं ज्ञान की कली खिली।।
अशुभ पाप आस्रव के द्वारा नर्क आयु का बन्ध गहा।
नारकीय बन नरको में रह उष्ण शीत दुख द्वन्द सहा।।
शुभ पुण्यास्रव के कारण मैं स्वर्गलोक तक हो आया।
ग्रैवेयक तक गया किन्तु शाश्वत सुख चैन नहीं पाया।।
देख दूसरों के वैभव को आर्त्त रौद्र परिणाम किया।
देव आयु क्षय होने पर एकेन्द्रिय तक में जन्म लिया।।
इस प्रकार धर धर अनन्त भव चारों गतियों में भटका।
तीव्र मोह मिथ्यात्व पाप के कारण इस जग में अटका।।
महापुण्य के शुभ संयोग से फिर यह तन मन पाया है।
देव आपके चरणों को पाकर यह मन हर्षाया है।।
जनम जनम तक भक्ति तुम्हारी रहे हृदय में हे जिनदेव।
वीतराग सम्यक् पथ पर चल पाऊँ सिद्ध स्वपद स्वयंमेव।।
भरतक्षेत्र से कुन्द कुन्द मुनि ने विदेह को किया प्रयाण।
प्रभु तुम्हारे समवसरण में दर्शन कर हो गये महान।।
आठ दिवस चरणों में रह कर ओंकार ध्वनि सुनी प्रधान।
भरत क्षेत्र में लौटे मुनिवर सुनकर वीतराग विज्ञान।।
करुणा जागी जीवों के प्रति रचा शास्त्र श्री प्रवचनसार।
समयसार पंचास्तिकाय श्रुत नियमसार प्राभृत सुखकार।।
रचे देव चौरासी पाहुड़ प्रभु वाणी का ले आधार।
निश्चयनय भूतार्थ बताया अभूतार्थ सारा व्यवहार।।
पाप पुण्य दोनों बन्धन हैं जग में भ्रमण कराते हैं।
राग मात्र को हेय जान ज्ञानी निज ध्यान लगाते हैं।।

निज का ध्यान लगाया जिसने उसको प्रगटा केवलज्ञान।
परम समाधि महासुखकारी निश्चय पाता पद निर्वाण।।
इस प्रकार इस भरत क्षेत्र के जीवों पर अनन्त उपकार।
हे सीमन्धरनाथ आपके करो देव मेरा उद्धार।।
समकित ज्योति जगे अन्तर में हो जाऊँ मैं आप समान।
पूर्ण करो मेरी अभिलाषा हे प्रभु सीमन्धर भगवान।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सीमन्धर प्रभु के चरण भाव सहित उर धार।
मन वच तन जो पूजते वे होते भव पार।।

।। पुष्पांजलिम् क्षिपेत् ।।

अशरीरी–सिद्ध भगवान....

अशरीरी–सिद्ध भगवान, आदर्श तुम्हीं मेरे।
अविरुद्ध शुद्ध चिद्घन, उत्कर्ष तुम्हीं मेरे।।टेक।।
सम्यक्त्व सुदर्शन ज्ञान अगुरुलघु अवगाहन।
सुक्ष्मत्व वीर्य गुणखान, निर्बाधित सुखवेदन।।
हे गुण अनन्त के धाम, वन्दन अगणित मेरे।।1।।

रागादि रहित निर्मल, जन्मादि रहित अविकल।
कुल गोत्र रहित निश्कुल, मायादि रहित निश्चल।।
रहते निज में निश्चल, निश्कर्म साध्य मेरे।।2।।

रागादि रहित उपयोग, ज्ञायक प्रतिभासी हो।
स्वाश्रित शाश्वत–सुख भोग, शुद्धात्म विलासी हो।।
हे स्वयं सिद्ध भगवान, तुम साध्य बनो मेरे।।3।।

भविजन तुम–सम निज–रूप, ध्याकर तुम–सम होते।
चैतन्य पिण्ड शिव–भूप, होकर सब दुख खोते ।।
चैतन्य राज सुखखान, दुख दूर करो मेरे।।4।।

श्री बाहुबली स्वामी पूजन

जयति बाहुबलि स्वामी जय जय, करूँ वन्दना बारम्बार।
निज स्वरूप का आश्रय लेकर आप हुए भव सागर पार।।
हे त्रैलोक्यनाथ, त्रिभुवन में छाई महिमा अपरम्पार।
सिद्ध स्वपद की प्राप्ति हो गई हुआ जगत में जय जयकार।।
पूजन करने मैं आया हूँ अष्ट द्रव्य का ले आधार।
यही विनय है चारों गति के दुख से हो मेरा उद्धार।।

ॐ ह्रीं श्री जिन बाहुबलिस्वामिन् अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री जिन बाहुबलिस्वामिन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री जिन बाहुबलिस्वामिन् अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

उज्ज्वल निर्मल जल प्रभु पद पंकज में आज चढ़ाता हूँ।
जन्म मरण का नाश करूँ आनन्दकन्द गुण गाता हूँ।।
श्री बाहुबलिस्वामी प्रभु चरणों में शीश झुकाता हूँ।
अविनश्वर शिव सुख पाने को नाथ शरण में आता हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री जिन बाहुबलिस्वामिने जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शीतल मलय सुगन्धित पावन चन्दन भेंट चढ़ाता हूँ।
भव आताप नाश हो मेरा ध्यान अपका ध्याता हूँ।।श्री बाहु.।।

ॐ ह्रीं श्री जिन बाहुबलिस्वामिने संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तम शुभ्र अखण्डित तन्दुल हर्षित चरण चढ़ाता हूँ।
अक्षयपद की सहज प्राप्ति हो यही भावना भाता हूँ।।श्री बाहु.।।

ॐ ह्रीं श्री जिन बाहुबलिस्वामिने अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

काम शत्रु के कारण अपना शील स्वभाव न पाता हूँ।
काम भाव का नाश करूँ मैं सुन्दर पुष्प चढ़ाता हूँ।।श्री बाहु.।।

ॐ ह्रीं श्री जिन बाहुबलिस्वामिने कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

तृष्णा की भीषण ज्वाला से प्रति पल जलता जाता हूँ।
क्षुधारोग से रहित बनूँ मैं शुभ नैवेद्य चढ़ाता हूँ।।श्री बाहु.।।
ॐ ह्रीं श्री जिन बाहुबलिस्वामिने क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोह ममत्व आदि के कारण सम्यक् मार्ग न पाता हूँ।
यह मिथ्यात्वतिमिर मिट जाये प्रभुवर दीप चढ़ाता हूँ।।श्री बाहु.।।
ॐ ह्रीं श्री जिन बाहुबलिस्वामिने मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

है अनादि से कर्मबन्ध दुखमय न प्रथक् कर पाता हूँ।
अष्टकर्म विध्वंस करूँ अतएव सु धूप चढ़ाता हूँ।।श्री बाहु.।।
ॐ ह्रीं श्री जिन बाहुबलिस्वामिने अष्टकर्म विनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज सम्पदा युक्त स्वयं होकर भी भव दुख पाता हूँ।
परम मोक्षपद शीघ्र मिले उत्तम फल चरण चढ़ाता हूँ।।श्री बाहु.।।
ॐ ह्रीं श्री जिन बाहुबलिस्वामिने महामोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

पुण्यभाव से स्वर्गादिक पद बार बार पा जाता हूँ।
निज अनर्घपद मिला न अब तक इससे अर्घ चढ़ाता हूँ।।श्री बाहु.।।
ॐ ह्रीं श्री जिन बाहुबलिस्वामिने अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

आदिनाथ सुत बाहुबली प्रभु मात सुनन्दा के नन्दन।
चरम शरीरी कामदेव तुम पोदनपुर पति अभिनन्दन।।
छह खण्डों पर विजय प्राप्तकर भरत चढ़े वृषभाचल पर।
अगणितचक्री हुए नाम लिखने को मिला न थल तिलभर।।
मैं ही चक्री हुआ अहं का मान धूल हो गया तभी।
एक प्रशस्ति मिटाकर अपनी लिखी प्रशस्ति स्वहस्त जभी।।
चले अयोध्या किन्तु नगर में चक्र प्रवेश न कर पाया।
ज्ञात हुआ लघु भ्रात बाहुबलि सेवा में न अभी आया।।

भरत चक्रवर्ती ने चाहा बाहुबली आधीन रहे।
ठुकराया आदेश भरत का तुम स्वतंत्र स्वधीन रहे।।
भीषण युद्ध छिड़ा दोनों भाई के मन संतप्त हुए।
दृष्टि, मल्ल, जल, युद्ध, भरत से करके विजयी आप हुए।।
क्रोधित होकर भरत चक्रवर्ती ने चक्र चलाया है।
तीन प्रदक्षिणा देकर कर में चक्र आपके आया है।।
विजय चक्रवर्ती पर पाकर उर वैराग्य जगा तत्क्षण।
राजपाट तज ऋषभदेव के समवशरण को किया गमन।।
धिक् धिक् यह संसार और इसकी असारता को धिक्कार।
तृष्णा की अनन्त ज्वाला में जलता आया है संसार।।
जग की नश्वरता का तुमने किया चिंतवन बारम्बार।
देह भोग संसार आदि से हुई विरक्ति पूर्ण साकार।।
आदिनाथ प्रभु से दीक्षा ले व्रत संयम को किया ग्रहण।
चले तपश्या करने वन में रत्नत्रय को कर धारण।।
एक वर्ष तक किया कठिन तप कायोत्सर्ग मौन पावन।
किंतु खटक थी एक हृदय में भरत भूमि पर है आसन।।
केवलज्ञान नहीं हो पाया अल्पराग ही के कारण।
परिषह शीत ग्रीष्म वर्षादिक जय करके भी अटका मन।।
भरत चक्रवर्ती ने आकर श्री चरणों में किया नमन।
कहा कि वसुधा नहीं किसी की मान त्याग दो हे भगवन्।।
तत्क्षण राग विलीन हुआ तुम शुक्ल ध्यान में लीन हुए।
फिर अन्तरमुहुर्त में स्वामी मोह क्षीण स्वाधीन हुए।।
चार घातिया कर्म नष्ट कर आप हुए केवलज्ञानी।
जय जयकार विश्व में गूंजा जगती सारी मुस्कानी।।
झलका लोकालोक ज्ञान में सर्व द्रव्य गुण पर्यायें।
एक समय में भूत भविष्यत् वर्तमान सब दर्शायें।।

फिर अघातिया कर्म विनाशे सिद्ध लोक में गमन किया।
पोदनपुर से मुक्ति हुई तीनों लोकों ने नमन किया।।
महामोक्ष फल पाया तुमने ले स्वभाव का अवलम्बन।
हे भगवान् बाहुबलि स्वामी कोटि कोटि शत् शत् वन्दन।।
आज आपका दर्शन करने चरणों में मैं आया हूँ।
शुद्ध स्वभाव प्राप्त हो मुझको यही भाव भर लाया हूँ।।
भाव शुभाशुभ भव निर्माता शुद्ध भाव का दो प्रभु दान।
निज परणति में रमण करूँ प्रभु हो जाऊँ मैं आप समान।।
समकित दीप जले अन्तर में तो अनादि मिथ्यात्व गले।
राग-द्वेष परणति हट जाये पुण्य पाप संताप टले।।
त्रैकालिक ज्ञायक स्वभाव का आश्रय लेकर बढ़ जाऊँ।
शुद्धात्मानुभूति के द्वारा मुक्ति शिखर पर चढ़ जाऊँ।।
मोक्ष लक्ष्मी को पाकर भी निजानन्द रसलीन रहूँ।
सादि अनन्त सिद्ध पद पाऊँ सदा सुखी स्वाधीन रहूँ।।
आज आप का रूप निरखकर निज स्वरूप का भान हुआ।
तुम सम बने भविष्यत् मेरा यह दृढ़ निश्चय ज्ञान हुआ।।
हर्ष विभोर भक्ति से पुलकित होकर की है यह पूजन।
प्रभु पूजन का सम्यक् फल हो कटें हमारे भव बन्धन।।
चक्रवर्ती इन्द्रादिक पद की नहीं कामना है स्वामी।
शुद्ध बुद्ध चैतन्य परम पद पायें हे अन्तरयामी।।

ॐ ह्रीं श्री जिन बाहुबलिस्वामिने अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

घर घर मंगल छाये जग में वस्तु स्वभाव धर्म जानें।
वीतराग विज्ञान ज्ञान से शुद्धातम को पहिचानें।।

।। पुष्पांजलिम् क्षिपेत् ।।

श्री तुंगीगिरि-गजपंथ-देवलाली पूजन

(वीरछंद)

तुंगीगिरि है क्षेत्र मनोहर, मांगीतुंगी इसका नाम,
रामचन्द्र बलभद्र निन्यानव कोटि मुनियों के सिद्धिधाम।
श्री गजपंथ क्षेत्र अति मनहर, छोटा सा पर्वत अभिराम,
सातों ही बलभद्र अरु आठ क्रोड मुनिवर पद निर्वाण।
शान्तिनाथ स्वामी की प्रतिमा, अति मनोज्ञ है स्वर्ण समान,
आदिनाथ श्री भरत बाहुबलि, महावीर जिन बिम्ब महान।
जिन चौबीसी नमन करने, मैं समवशरण सादर वन्दूँ,
सीमन्धर मानस्तम्भ पूजूँ, निज स्वभाव को अभिनन्दूँ।
परमागम है भव्य जिनालय, स्वर्णमयी है शान्तिनाथ,
पंच परमश्रुत अक्षर रत्नो टंकोत्कीर्ण हुआ है आज।
सर्व सिद्ध प्रभु अरिहन्तों को, सादर सविनय नमन करूँ,
इस अनादि के मिथ्यात्व को, हे स्वामी सम्पूर्ण हरूँ।

ॐ ह्रीं श्री तुगीगिरि, गजपंथ, देवलाली स्थित जिनालय संबंधी सर्व जिन बिम्बेभ्यो अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं। ॐ ह्रीं श्री तुगीगिरि, गजपंथ, देवलाली स्थित जिनालय संबंधी सर्व जिन बिम्बेभ्यो अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। ॐ ह्रीं श्री तुगीगिरि, गजपंथ, देवलाली स्थित जिनालय संबंधी सर्व जिन बिम्बेभ्यो अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(वीरछंद)

तुंगीगिरि से मोक्ष गये श्री रामचंद्र बलभद्र प्रधान,
गजपंथ से सातों ही बलभद्र मोक्ष में गये महान।
पंच परम श्रुत मंदिर में श्री शान्तिनाथ को नमन करूँ,
जन्म-जरा-मरणादि नाश कर मोह क्षोभ को दूर करूँ।

ॐ ह्रीं श्री तुगीगिरि, गजपंथ, देवलाली स्थित जिनालय संबंधी सर्व जिन बिम्बेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

तुंगीगिरि से मोक्ष गये श्री रामचंद्र बलभद्र प्रधान,
गजपंथ से सातों ही बलभद्र मोक्ष में गये महान।
पंच परम श्रुत मंदिर में श्री शान्तिनाथ को नमन करूँ,
भव आतप को जयकर स्वामी मोह क्षोभ को दूर करूँ।

ॐ ह्रीं श्री तुंगीगिरि, गजपंथ, देवलाली स्थित जिनालय संबंधी सर्व जिन बिम्बेभ्यो संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

तुंगीगिरि से मोक्ष गये श्री रामचंद्र बलभद्र प्रधान,
गजपंथ से सातों ही बलभद्र मोक्ष में गये महान।
पंच परम श्रुत मंदिर में श्री शान्तिनाथ को नमन करूँ,
अक्षयपद की प्राप्ति करूँ मैं, मोह क्षोभ को दूर करूँ।

ॐ ह्रीं श्री तुंगीगिरि, गजपंथ, देवलाली स्थित जिनालय संबंधी सर्व जिन बिम्बेभ्यो अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

तुंगीगिरि से मोक्ष गये श्री रामचंद्र बलभद्र प्रधान,
गजपंथ से सातों ही बलभद्र मोक्ष में गये महान।
पंच परम श्रुत मंदिर में श्री शान्तिनाथ को नमन करूँ,
कामबाण विध्वंस करूँ मैं मोह क्षोभ को दूर करूँ।

ॐ ह्रीं श्री तुंगीगिरि, गजपंथ, देवलाली स्थित जिनालय संबंधी सर्व जिन बिम्बेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

तुंगीगिरि से मोक्ष गये श्री रामचंद्र बलभद्र प्रधान,
गजपंथ से सातों ही बलभद्र मोक्ष में गये महान।
पंच परम श्रुत मंदिर में श्री शान्तिनाथ को नमन करूँ,
क्षुधा व्याधि को नष्ट करूँ मैं मोह क्षोभ को दूर करूँ।

ॐ ह्रीं श्री तुंगीगिरि, गजपंथ, देवलाली स्थित जिनालय संबंधी सर्व जिन बिम्बेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तुंगीगिरि से मोक्ष गये श्री रामचंद्र बलभद्र प्रधान,
गजपंथ से सातों ही बलभद्र मोक्ष में गये महान।
पंच परम श्रुत मंदिर में श्री शान्तिनाथ को नमन करूँ,
मोह तिमिर अज्ञान नष्ट कर मोह क्षोभ को दूर करूँ।

ॐ ह्रीं श्री तुंगीगिरि, गजपंथ, देवलाली स्थित जिनालय संबंधी सर्व जिन बिम्बेभ्यो मोहान्धकार विनासनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

तुंगीगिरि से मोक्ष गये श्री रामचंद्र बलभद्र प्रधान,
गजपंथ से सातों ही बलभद्र मोक्ष में गये महान।
पंच परम श्रुत मंदिर में श्री शान्तिनाथ को नमन करूँ,
अष्टकर्म सम्पूर्ण नष्ट कर मोह क्षोभ को दूर करूँ।

ॐ ह्रीं श्री तुंगीगिरि, गजपंथ, देवलाली स्थित जिनालय संबंधी सर्व जिन बिम्बेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

तुंगीगिरि से मोक्ष गये श्री रामचंद्र बलभद्र प्रधान,
गजपंथ से सातों ही बलभद्र मोक्ष में गये महान।
पंच परम श्रुत मंदिर में श्री शान्तिनाथ को नमन करूँ,
महामोक्ष फल पाऊँ स्वामी मोह क्षोभ को दूर करूँ।

ॐ ह्रीं श्री तुंगीगिरि, गजपंथ, देवलाली स्थित जिनालय संबंधी सर्व जिन बिम्बेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

तुंगीगिरि से मोक्ष गये श्री रामचंद्र बलभद्र प्रधान,
गजपंथ से सातों ही बलभद्र मोक्ष में गये महान।
पंच परम श्रुत मंदिर में श्री शान्तिनाथ को नमन करूँ,
पद अनर्घ्य अविलम्ब प्राप्ति हित मोह क्षोभ को दूर करूँ।

ॐ ह्रीं श्री तुंगीगिरि, गजपंथ, देवलाली स्थित जिनालय संबंधी सर्व जिन बिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(वीरछंद)

सिद्धक्षेत्र तुंगीगिरि पावन रामचन्द्र का मोक्ष स्थान,
गव गवाख्य नील महानील तथा सुग्रीव सुडील महान।।
इसी क्षेत्र से मुक्त हुए हैं महा योद्धा श्री हनुमान,
निन्यानव कोटि मुनियों ने तप कर पाया सिद्ध विमान।।
भव्य तलहटी में बहु जिन मंदिर हैं अति सुन्दर पावन,
कठिन चढ़ाई इस पर्वत की भव्य जनों को मन भावन।।
गजपंथा से आठ कोटि मुनि मुक्त हुए धरकर निज ध्यान,
हुए सप्त बलभद्र मुक्ति प्राप्त, करके शुक्ल ध्यान बलवान।।
नीचे जिन मंदिर अति मनहर जिन प्रतिमा पूजूं वसुयाम,
ज्ञान भावना भाऊँ स्वामी पाऊँ मैं निज में विश्राम।।
नगर देवलाली में सुन्दर नगर कहान मनोहर है,
समवशरण है चौबीसी है महावीर जिन मंदिर है।।
आदिनाथ श्री भरत बाहुबली शान्तिनाथ सीमंधर नाथ,
पार्श्वनाथ की चरण शरण प्रातः पूजूं वसुयाम।।
कहान नगर के प्रांगण में सुशोभित है सीमंधर मानस्तंभ महान,
परमागम है भव्य जिनालय अतिसुन्दर सोलहवें श्री तीर्थंकर महान।।
स्वाध्याय मंदिर है अतिसुन्दर सरस्वती जिनभवन महान,
श्री कानजी स्वामी की ध्वनि गूंजति भाई तू है भगवान समान।।
सर्वसिद्ध अरहंतों को मैं नमन करूँ भव दुःख क्षय हेतु,
स्वानुभूति निज अंतरंग पा पाऊँ भवसागर का सेतु।।

पूजा का फल यही चाहता आत्मज्ञान की महिमा हो प्राप्त,
आत्मा की अनुभूति करूँ मैं निज शिवसुख हो प्राप्त।।

ॐ ह्रीं श्री ... तुंगीगिरि, गजपंथ, देवलाली स्थित जिनालय संबंधी सर्व जिन बिम्बेभ्यो पूर्ण जयमाला अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

तुंगीगिरि गजपंथ को सविनय करूँ प्रणाम,
भव्य देवलाली नगर पूजूँ जिनवर धाम।
तत्वज्ञान की भावना भाऊँ मैं दिन-रात,
सम्यक्‌दर्शन प्राप्त कर पाऊँ ज्ञान प्रभात।

।। इत्याशीर्वाद ।।
पुष्पांजलिम् क्षिपेत्

संत साधु बन के विचरूँ.....

संत साधु बन के विचरूँ वह घड़ी कब आयेगी।
चल पडूं मैं मोक्ष पथ में, वह घड़ी कब आयेगी।।टेक।।
हाथ में पीछी कमण्डलु, ध्यान आतम राम का।
छोड़कर घरबार दीक्षा की घड़ी कब आयेगी।।1।।
आयेगा वैराग्य मुझको, इस दु:खी संसार से।
त्याग दूंगा मोह ममता, वह घड़ी कब आयेगी।।2।।
पाँच समिति तीन गुप्ति बाईस परीषह भी सहूँ।
भावना बारह जु भाऊँ, वह घड़ी कब आयेगी।।3।।
बाह्य उपाधि त्याग कर निज तत्व का चिंतन करूँ।
निर्विकल्प होवे समाधि वह घड़ी कब आयेगी।।4।।
भव भ्रमण का नाश होवे इस दु:खी संसार से।
विचरूँ मैं निज आत्मा में, वह घड़ी कब आयेगी।।5।।

श्री सप्त ऋषि पूजन - 1

स्थापना (छप्पय)

प्रथम नाम श्रीमन्व दुतिय स्वरमन्व ऋषीवर।
तृतीय मुनि श्री निचय सर्व सुन्दर चौथो वर।।
पंचम श्री जयवान विनयलालस षष्ठम भनि।
सप्तम जय मित्राख्य सर्व चारित्र-धाम गनि।।

ये सातों चारण-ऋद्धि-धर, करूँ तास पद थापना।
मैं पूजूँ मन वचन काय करि, जो सुख चाहूँ आपना।।

ॐ ह्रीं श्री मन्वादि चारणर्द्धिधर सप्तर्षीश्वराः ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री मन्वादि चारणर्द्धिधर सप्तर्षीश्वराः ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री मन्वादि चारणर्द्धिधर सप्तर्षीश्वराः ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(हरिगीतिका)

शुभ-तीर्थ-उद्भव-जल अनूपम, मिष्ट शीतल लायकैं।
भव-तृषा-कंद-निकंद-कारण, शुद्ध घट भरवायकैं।।
मन्वादि चारण-ऋद्धि-धारक, मुनिनकी पूजा करूँ।
ता करें पातक हरें सारे, सकल आनन्द विस्तरूँ।।

ॐ ह्रीं श्री मन्व-स्वरमन्व-निचय-सर्वसुन्दर-जयवान-विनयलालस-जयमित्राख्य चारणद्धिभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीखण्ड कदलीनन्द केशर, मन्द-मन्द घिसायकैं।
तसु गन्ध प्रसरित दिग-दिगन्तर, भर कटोरी लायकैं।।मन्वादि.।।

ॐ ह्रीं श्री मन्वादिचारणसप्तर्षिभ्यो संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अति धवल अक्षत खण्ड-वर्जित, मिष्ट राजत भोग के।
कलधौत-थारा भरत सुन्दर, चुनित शुभ उपयोग के।।
मन्वादि चारण-ऋद्धि-धारक, मुनिनकी पूजा करूँ।
ता करें पातक हरें सारे, सकल आनन्द विस्तरूँ।।

ॐ ह्रीं श्री मन्वादिचारणसप्तर्षिभ्यो अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

बहु-वर्ण सुवरण-सुमन आछे, अमल कमल गुलाब के।
केतकी चंपा चारु मरुआ, चुने निज कर चावके ।।मन्वादि.।।

ॐ ह्रीं श्री मन्वादिचारणसप्तर्षिभ्यो कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पकवान नाना भाँति चातुर, रचित शुद्ध नये-नये।
सदमिष्ट लाडू आदि भर बहु, पुरट के थारा लये।।मन्वादि.।।

ॐ ह्रीं श्री मन्वादिचारणसप्तर्षिभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कलधौत-दीपक जड़ित नाना, भरित गोघृत-सारसों।
अतिज्वलित जग-मग ज्योति जाकी, तिमिर नाशन हारसों।।मन्वादि.।।

ॐ ह्रीं श्री मन्वादिचारणसप्तर्षिभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दिक्-चक्र गन्धित होत जाकर, धूप दश अंगी कही।
सो लाय मन-वच-काय शुद्ध, लगाय कर खेहूँ सही।।मन्वादि.।।

ॐ ह्रीं श्री मन्वादिचारणसप्तर्षिभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

वर दाख खारक अमित प्यारे, मिष्ट चुष्ट चुनायकैं।
द्रावडी दाडिम चारु पुंगी, थाल भर-भर लायकैं।।मन्वादि.।।

ॐ ह्रीं श्री मन्वादिचारणसप्तर्षिभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गन्ध अक्षत पुष्प चरुवर, दीप धूप सु लावना।
फल ललित आठौं द्रव्य-मिश्रित, अर्घ्य कीजे पावना।।मन्वादि.।।

ॐ ह्रीं श्री मन्वादिचारणसप्तर्षिभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(घत्ता)

वन्दूँ ऋषिराजा, धर्म-जहाजा, निज-पर-काजा करत भले।
करुणा के धारी, गगन-विहारी दुःख-अपहारी भरम दले।।
काटत जम-फन्दा, भवि-जन वृन्दा, करत अनन्दा चरणन में।
जो पूजैं ध्यावैं, मंगल गावैं, फेर न आवैं भव-वन में।।

(पद्धरी छन्द)

जय श्रीमनु मुनिराजामहन्त, त्रस थावर की रक्षा करन्त।
जय मिथ्या-तम-नाशक पतंग, करुणा रस-पूरित अंग-अंग।।
जय श्रीस्वरमनु अकलंकरूप, पद-सेव करत नित अमर-भूप।
जय पंच अक्ष जीते महान, तप तपत देह कंचन-समान।।
जय निचय सप्त तत्वार्थ भास, तप-रमातनों तन में प्रकाश।
जय विषय-रोध सम्बोध भान, परणति के नाशन अचल ध्यान।।
जय जयहिं सर्वसुन्दर दयाल, लखि इन्द्रजालवत जगत-जाल।
जय तृष्णाहारी रमण राम, निज-परणति में पायो विराम।।
जय आनन्दघन कल्याणरूप, कल्याण करत सबकौ अनूप।
जय मद-नाशन जयवानदेव, निरमद विरचित सब करत सेव।।
जय जयहिं विनय लालस अमान, सब शत्रु मित्र जानत समान।
जय कृशित-काय तप के प्रभाव, छवि छटा उड़ति आनन्द दाय।।
जय मित्र सकल जग के सुमित्र, अनगिनत अधम कीने पवित्र।
जय चन्द्र-वदन राजीव नैन, कबहूँ विकथा बोलत न बैन।।
जय सातों मुनिवर एक संग, नित गगन-गमन करते अभंग।
जय आये मथुरापुर मँझार, तहँ मरी रोग को अति प्रचार।।

जय-जय तिन चरणनि के प्रसाद, सब मरी देवकृत भई वाद।
जय लोक करे निर्भय समस्त, हम नमत सदा नित जोड़ हस्त।।
जय ग्रीष्म-ऋतु पर्वत मंझार, नित करत आतापन योगसार।
जय तृषा-परिषह करत जेर, कहूँ रंच चलत नहिं मन सुमेर।।
जय मूल अठाइस गुणनधार, तप उग्र तपत आनन्दकार।
जय वर्षा-ऋतु में वृक्ष तीर, तहं अति शीतल झेलत समीर।।
जय शीतकाल चौपट मंझार, कै नदि सरोवर तट विचार।
जय निवसत ध्यानारूढ़ होय, रंचक नहीं भटकत रोम कोय।।
जय मृतकासन व्रजासनीय, गौदूहन इत्यादिक गनीय।
जय आसन नाना भांति धार, उपसर्ग सहत ममता निवार।।
जय जपत तिहारो नाम कोय, लख पुत्र पौत्र कुल वृद्धि होय।
जय भरे लक्ष अतिशय भण्डार, दारिद्रतनो दुःख होय छार।।
जय चोर अग्नि डाकिन पिशाच, अरु ईति भीति सब नसत साँच।
जय तुम सुमरत सुख लहत लोक, सुर असुर नमत पद देत धोक।।

(रोला)

ये सातों मुनिराज, महातप लछमी धारी।
परमपूज्य पद धरैं सकल जग के हितकारी।।
जो मन वच तन शुद्ध होय सेवे ओ ध्यावै।
सो जन 'मनरंगलाल', अष्ट ऋद्धिनकौं पावै।।

(दोहा)

नमन करत चरनन परत, अहो गरीब निवाज।
पंच परावर्तननितैं, निरवारो ऋषिराज।।

ॐ ह्रीं श्री मन्वादिचारणसप्तर्षिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्री सप्त ऋषि पूजन - 2

जय जयति जय सुरमन्यु, जय श्रीमन्यु, निचय, मुनिश्वरम्।
जय सर्व सुन्दर, पूज्य श्री जयवान, परम यतिश्वरम्।।
जय विनयलालस और श्री जयमित्र, मुनिवर ऋषिवरम्।
जय ध्यानिपति, जय ज्ञान मति जिन साधु सप्त ऋषिवरम्।।
जय ऋद्धि सिद्धि महान धारी, महामुनि जगदीश्वरम्।
जय सकल जग कल्याणकारी, दयानिधि अवनिश्वरम्।।

ॐ ह्रीं श्री सुरमन्यु, श्रीमन्यु, निचय, सर्व सुन्दर, जयवान, विनय लालस, जय मित्र, सप्तर्षीश्वराः! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री सुरमन्यु, श्रीमन्यु, निचय, सर्व सुन्दर, जयवान, विनय लालस, जय मित्र, सप्तर्षीश्वराः! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री सुरमन्यु, श्रीमन्यु, निचय, सर्व सुन्दर, जयवान, विनय लालस, जय मित्र, सप्तर्षीश्वराः! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

सप्त तत्व श्रद्धान पूर्वक आत्म प्रतीत वरूँ स्वामी।
सप्त भयों से रहित बनूँ मैं जन्म मरण नाशूँ स्वामी।।
सुरमन्यु, श्रीमन्यु आदि जयमित्र सप्त ऋषीवर बन्दन।
श्रद्धा ज्ञान चरित्र शक्ति से काटूँ भव भव के बन्धन।।

ॐ ह्रीं श्रीसुरमन्यु, श्रीमन्यु आदि सप्तर्षिश्वरेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

सप्त दश नियम नित पालन कर सप्ताक्षरी मंत्र ध्याऊँ।
सप्त नरक, सुर, पशु, नर गतिमय भव आताप नशाऊँ।।सुरमन्यु.।।

ॐ ह्रीं श्री सुरमन्यु, श्रीमन्यु, आदि सप्तर्षिश्वरेभ्यो संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

सप्त सुगुण दाता के पाऊँ सप्त स्थान दान दूँ नित्य।
सप्त व्यसन तज निज आतम भज अक्षय पद पाऊँ निश्चय।।सुरमन्यु.।।

ॐ ह्रीं श्री सुरमन्यु, श्रीमन्यु, आदि सप्तर्षिश्वरेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

सप्त शुद्धिपूर्वक सामायिक करूँ त्रिकाल शुद्ध मन से।
सप्त शील को पाल काम अरि नाश करूँ निज चिन्तन से।।
सुरमन्यु, श्रीमन्यु आदि जयमित्र सप्त ऋषीवर बन्दन।
श्रद्धा ज्ञान चरित्र शक्ति से काटूँ भव भव के बन्धन।।

ॐ ह्रीं श्री सुरमन्यु, श्रीमन्यु, आदि सप्तर्षिश्वरेभ्यो कामबाण विध्वंशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

सप्त कुम्भ व्रत चार शतक छयानवे महा उपवास करूँ।
इनमें इकसठ करूँ पारणा क्षुधारोग फिर नाश करूँ।।सुरमन्यु.।।

ॐ ह्रीं श्री सुरमन्यु, श्रीमन्यु, आदि सप्तर्षिश्वरेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सप्त नयों के द्वारा स्वामी वस्तु तत्व का करूँ विचार।
मोहनाश हित सात प्रतिक्रमण करके पालूँ ज्ञानाचार।।सुरमन्यु.।।

ॐ ह्रीं श्री सुरमन्यु, श्रीमन्यु, आदि सप्तर्षिश्वरेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

सातभंगस्याद्वाद मयी जिन वाणी की छाया पाऊँ।
केवलज्ञान लब्धि को पाकर अष्टकर्म पर जय पाऊँ।।सुरमन्यु.।।

ॐ ह्रीं श्री सुरमन्यु, श्रीमन्यु, आदि सप्तर्षिश्वरेभ्यो अष्टकर्म विध्वंशनाय धुपं निर्वपामीति स्वाहा।

सप्त समुद्घातों में स्वामी केवली समुद्घात पाऊँ।
आठ समय पश्चात मोक्ष पा पूर्ण शाश्वत सुख पाऊँ।।सुरमन्यु.।।

ॐ ह्रीं श्री सुरमन्यु, श्रीमन्यु, आदि सप्तर्षिश्वरेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

सप्त परम स्थानों में निर्वाण स्थान शिवपुर जाऊँ।
पद अनर्घ से सादि अनन्त सिद्ध सुख पाऊँ हर्षाऊँ।।सुरमन्यु.।।

ॐ ह्रीं श्री सुरमन्यु, श्रीमन्यु, आदि सप्तर्षिश्वरेभ्यो अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

महा पूज्य पावन परम श्री सात ऋषिराज।
आत्म धर्म रथ सारथी तारण तरण ज़हाज।।
तीर्थंकर मुनि सुव्रत प्रभु का जब था शासनकाल महान।
रामचन्द्र बलभद्र नृपति के गूंजे थे जग में यशगान।।
धर्म भावना से करते थे अगणित जीव आत्म कल्याण।
चारण आदि ऋद्धियाँ पाकर पा लेते थे मुक्ति विहान।।
नगर प्रभापुर के अधिपति थे श्री नन्दन नृप वैभववान।
उनके सात सुपुत्र हुए धरणी रानी से अति विद्वान।।
सुरमन्यु, श्रीमन्यु, निश्चय, जयमित्र सर्व सुन्दर जयवान।
श्री विनयलालस गुणधारी सत्यशील से शोभावान।।
लाड़ प्यार में सर्व भौतिक सुख से भूषित सुकुमार।
राजकाज भी देखा करते थे सातों ही राजकुमार।।
नृप प्रीतिंकर मुनि बन घोर तपश्या में रत हुए महान।
शुक्ल ध्यान धर घाति कर्म हर पाया अनुपम केवलज्ञान।।
अगणित देवों ने स्वर्गों से आकर गाया जय जय गान।
पिता सहित सातों पुत्रों को भी आया निज आतम भान।।
प्रतिबोधित होकर दीक्षा मुनि पद अंगीकार किया।
अट्ठाइस मूल गुण धारे मोक्ष मार्ग स्वीकार किया।।
श्री नन्दन ने केवल ज्ञान प्राप्त कर सिद्धालय पाया।
सातों पुत्रों ने भी तप करके सप्त ऋषि नाम पाया।।
ये सातों ही एक साथ तप करते थे भव भय हारी।
महाशील का पालन करते अनुपम दान ब्रह्मचारी।।
कुछ दिन में इन चारणादि ऋद्धियों के स्वामी।
महा तपस्वी परम यशस्वी ऋद्धिश्वर जग में नामी।।

रामचन्द्रजी के लघुभ्राता करते थे मथुरा में राज।
न्यायपूर्वक प्रजा पालते थे शत्रुघ्न नृपति महाराज।।
मधु राजा को जीत राज मथुरा का इनने पाया था।
मधु का मित्र असुरपति एक चमरेन्द्र यक्ष तब आया था।।
अति क्रोधित हो रौद्र भावमय उसके मन में बैर जगा।
किया प्रकोप महामारी का मथुरा का सौभाग्य भगा।।
ईति भीति फैलाई इतनी नगरी सूनी हुई अरे।
जहाँ गीत मंगल होते थे वहाँ शोक के मेघ घिरे।।
हाहाकार मचा नगरी में शून्य हुए गृह मानवों से।
पाप उदय हो तो क्या कोई पार पा सका दानवों से।।
पुण्योदय से इक दिन श्री सप्त ऋषि मथुरा में आये।
गगन विहारी नभ से उतरे जन जन ने दर्शन पाये।।
तत्क्षण रोग महामारी का नष्ट हुआ सब हर्षाये।
राजा प्रजा सभी ने अति हर्षित होकर मंगल गाये।।
मुनि चरणों के शुभ प्रताप से सारी नगरी धन्य हुई।
सात महा ऋषियों के दर्शन करके पुरी अनन्य हुई।।
जल थल नभ से सप्त ऋषियों की गुंज्जी जय जयकार।
धन्य तपश्या धन्य महामुनि धन्य हुआ तुमसे संसार।।
सीताजी ने नगर अयोध्या में इनको आहार दिया।
विनय भाव से वन्दन करके अक्षय पुण्य अपार किया।।
श्री सप्त ऋषि परम ध्यान धर हुए भवार्णव के उस पार।
परम मोक्ष मंगल के स्वामी सकल लोक को मंगलकार।।
महा ऋद्धिधारी ऋषियों को सादर शीश झुकाऊँ मैं।
मन वच काय त्रियोग पूर्वक चरण शरण में आऊँ मैं।।

ऐसा दिन कब आयेगा प्रभु जब जिन मुनि बन जाऊँगा।
जिन स्वरूप का अवलम्बन ले आठों कर्म नशाऊँगा।।
सप्त भूमि अथवा निगोद आदि भव व्यथा मिटाऊँगा।
जिन गुण सम्पत्ति हेतु महाव्रत धार सब राग नशाऊँगा।।
सप्ताहार दोष मैं टालूँ सात विषय करो नित नाश।
तजूँ सप्त पक्षमासों को पाऊँ सम्यक्ज्ञान प्रकाश।।
सप्त रत्न का लोभ ना जागे ना चौदह रत्नों का राग।
सप्त विंशति अधिक शताक्षरी मंत्र जपूँ कर निज अनुराग।।
मनुज देव पशु नर्क निगोदादिक में दुख ही दुःख पाया।
भव संताप मिटाने का प्रभु आज स्वर्ण अवसर आया।।
सप्त तपों ऋद्धियाँ प्राप्तकर वीतरागता उर लाऊँ।
पाप पुण्य पर भाव नाश हित श्री सप्त ऋषि को ध्याऊँ।।
द्वादश तप की महिमा पाऊँ शुद्धातम के गुण गाऊँ।
ग्रीष्म शीत वर्षा ऋतु में भी निज आत्म लख मुस्काऊँ।।
विविध भांति के व्रत मैं पालूँ निरतिचार हो शल्य रहित।
प्रभो सिंह निष्क्रीडित आदिक तप व्रत परिसख्यान सहित।।
केवलज्ञान प्रगट कर स्वामी चार घातिया नाश करूँ।
सिद्ध शिला पर सदा विराजूँ आदिकाल मोक्ष प्रकार वरूँ।।
सप्त ईति और भीतिया पल में हो जाये अवसान।
अखिल विश्व में मंगल छाये सभी सुखी हों समतावान।।

ॐ ह्रीं श्री सुरमन्यु, श्रीमन्यु आदि सप्तर्षिश्वरेभ्यो पूर्णार्ध्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री सप्त ऋषिवर चरण जो लेते उर धार।
अष्ट ऋद्धियाँ प्राप्त कर हो जाते भव पार।।

।। पुष्पांजलिम् क्षिपेत्।।

श्री णमोकार मंत्र पूजन

ॐ णमो अरिहंताणं जप अरिहंतों का ध्यान करूँ।
णमो सिद्धाणं जप कर सिद्धों का गुणगान करूँ।।
ॐ णमो आयरियाणं जप आचार्यों को नमन करूँ।
ॐ णमो उवज्झायाणं जप उपाध्याय को नमन करूँ।।
णमो लोय सव्वसाहूणं जप सर्व साधुओं को वन्दन।
णमोकार का महा मन्त्र जप मिथ्यातम को करूँ वमन।।
ऐसो पंच णमोयारो सर्व पाप अवसान करूँ।
सर्व मंगलों में पहिला मंगल पढ़ मंगलगान करूँ।।
णमोकार का मन्त्र जपूँ मैं णमोकार का ध्यान करूँ।
णमोकार की महाशक्ति से निज आतम कल्याण करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री पंच नमस्कारमन्त्र अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री पंच नमस्कारमन्त्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री पंच नमस्कारमन्त्र अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

ज्ञानावरणी कर्मनाश हित मिथ्यातम का करूँ अभाव।
जन्म मरण दुख क्षयकर डालूँ प्राप्त करूँ निज शुद्धस्वभाव।।
णमोकार का मन्त्र जपूँ मैं णमोकार का ध्यान करूँ।
णमोकार की महाशक्ति से नाथ आत्म कल्याण करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री पंचनमस्कार मंत्राय ज्ञानावरणी कर्म विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

दर्शनावरणी क्षय करने चिर अविरति का करूँ अभाव।
यह संसार ताप क्षयकरने प्राप्त करूँ निज शुद्धस्वभाव।।णमो.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचनमस्कार मंत्राय दर्शनावरणी कर्म विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

वेदनीय की पीड़ा हरने करलूँ पंच प्रमाद अभाव।
अक्षयपद पानेको स्वामी प्राप्त करूँ निज शुद्धस्वभाव।।णमो.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचनमस्कार मंत्राय वेदनीयकर्मविनाशनाय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहनीय का दर्प कुचलदूँ करलूँ पूर्ण कषाय अभाव।
कामबाण की व्याधि मिटाऊँ प्राप्त करूँ निज शुद्धस्वभाव।।
णमोकार का मन्त्र जपूँ मैं णमोकार का ध्यान करूँ।
णमोकार की महाशक्ति से नाथ आत्म कल्याण करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री पंचनमस्कार मंत्राय मोहनीयकर्म विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

आयुकर्म के सर्वनाश हित शीघ्र करूँ त्रय योग अभाव।
क्षुधा व्याधि का नाश करूँ मैं प्राप्त करूँ निज शुद्धस्वभाव।।णमो.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचनमस्कार मंत्राय आयुकर्मविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नाम कर्म का मूल मिटादूँ नष्ट करूँ में सर्व विभाव।
भ्रम अज्ञान विनाश करूँ मैं प्राप्त करूँ निज शुद्धस्वभाव।।णमो.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचनमस्कार मंत्राय नामकर्मविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

गोत्रकर्म को दग्ध करूँ मैं कर्म प्रकृति सब करूँ अभाव।
अष्टकर्म विध्वंस करूँ मैं प्राप्त करूँ निज शुद्धस्वभाव।।णमो.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचनमस्कार मंत्राय गोत्रकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अन्तराय मूलोच्छेद कर सर्व बंध का करूँ अभाव।
परममोक्ष फल पाऊँ स्वामी प्राप्त करूँ निज शुद्धस्वभाव।।णमो.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचनमस्कार मंत्राय अन्तरायकर्मविनाशनाय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

परमभेद विज्ञान प्राप्त कर करलूँ मैं संसार अभाव।
पद अनर्घ पाने को स्वामी प्राप्त करूँ निज शुद्धस्वभाव।।णमो.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचनमस्कारमंत्राय अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

णमोकार जिन मंत्र का जाप करूँ दिन रात।
पाप पुण्य को नाश कर पाऊँ मोक्ष प्रभात।।

छयालीस गुणधारी स्वामी नमस्कार अरिहन्तों को।
अष्ट स्वगुणधारी अनन्तगुण मंडित बन्दूँ सिद्धों को।।

हैं छत्तीस गुणों से भूषित नमस्कार आचार्यों को।
हैं पच्चीस गुणों से शोभित नमस्कार उपाध्यायों को।।
अट्ठाईस मूल गुणधारी नमस्कार सब मुनियों को।
ॐ शब्द में गर्भित पाँचों परमेष्ठी प्रभु गुणियों को।।
सर्व मंगलों में सर्वोत्तम सर्वश्रेष्ठ मंगल दाता।
ह्रीं शब्द में गर्भित चौबीसों तीर्थंकर विख्याता।।
णमोकार पैंतीस अक्षर का मन्त्र पवित्र ध्यान कर लूँ।
यह नवकार मन्त्र अड़सठ अक्षर से युक्त ज्ञान कर लूँ।।
"अर्हत् सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधु नमः" भज लूँ।
सोलह अक्षर का यह पावन मंत्र जपूँ दुष्कृत तज लूँ।।
छह अक्षर का मंत्र जपूँ "अरहंत सिद्ध" को नमन करूँ।
"अ सि आ उ सा" पंचाक्षर का मन्त्र जपूँ अघशमन करूँ।।
अक्षर चार मंत्र जप लूँ "अरहंत" देव का ध्यान करूँ।
"अर्हम्" अक्षर तीन, मन्त्र जप स्व पर भेद विज्ञान करूँ।।
दो अक्षर का 'सिद्ध" मन्त्र जप सर्व सिद्धियाँ प्रकट करूँ।
अक्षर एक "ॐ" ही जपकर सब पापों को विघट करूँ।।
सप्ताक्षर का मन्त्र "णमो अरहंताणं" का मैं जाप करूँ।
छह अक्षर का मन्त्र "णमो सिद्धाणं" जप भव ताप हरूँ।।
सप्ताक्षर का मन्त्र "णमो आइरियाणं" जप हर्षाऊँ।
सप्ताक्षर का "णमो उवज्झायाणं" जप कर मुस्काऊँ।।
नौ अक्षर का मंत्र "णमो लोए सव्वसाहूणं" ध्याऊँ।
"ऐसो पंच णमोयारो" जप सर्व पाप हर सुख पाऊँ।।
नव पद या नवकार पाँच पद का मैं णमोकार ध्याऊँ।
एक शतक सत्ताईस अक्षर का चत्तारि पाऊँ गाऊँ।।

"चत्तारि मंगलम्" श्रेष्ठ मंगल है जग में परम प्रधान।
"अरिहंता मंगलम्" पाठ कर गाऊँ निज आतम के गान।।
"सिद्धा मंगलम्" "साहू मंगलम्" का मैं भाव हृदय भरलूँ।
"केवली पण्णत्तों धम्मो मंगलम्" स्वधर्म प्राप्त करलूँ।।
"चत्तारि लोगोत्तमा" ही सर्वोत्तम है परम शरण।
"अरिहंता लोगोत्तमा" ही से होगा भव कष्ट हरण।।
"सिद्धा लोगोत्तमा" सु "साहु लोगोत्तमा" परम पावन।
"केवली पण्णतो धम्मो लोगोत्तमा" मोक्ष साधन।।
"चत्तारि शरणं पव्वज्जामि" का गूंजे जय जय गान।
"अरिहंतेशरणं पव्वज्जामि" का हो प्रभु लक्ष्य महान।।
"सिद्धेशरणं पव्वज्जामि" मोक्ष सिद्ध को मैं पाऊँ।
"साहुशरणं पव्वज्जामि" शुद्ध भावना ही भाऊँ।।
"केवली पण्णत्तो धम्मो शरणं पव्वजामि" है ध्येय।
महामोक्ष मंगल शिवदाता पाँचों परमेष्ठी प्रभु श्रेय।।
महामन्त्र निःकाक्षित होकर शुद्ध भाव से नित ध्याऊँ।
पंच परम परमेष्ठी का सम्यक् स्वरूप उर में लाऊँ।।
णमों कार का मंत्र जपूं मैं णमोकार का ध्यान करूँ।
महामन्त्र की महाशक्ति पा नाथ आत्म कल्याण करूँ।।
अर्हं अर्हं अर्हं जपकर निज शुद्धातम करलूँ भान।
नमः सर्व सिद्धेभ्यः जपकर मोक्ष मार्ग मे करूँ प्रयाण।।

ॐ ह्रीं श्री पंचनमस्कारमंत्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

णमोकार के मन्त्र की महिमा अगम अपार।
भाव सहित जो ध्यावते हो जाते भव पार।।

।। पुष्पांजलिम् क्षिपेत्।।

जाप्य मंत्र :- ॐ ह्रीं श्री णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोएसव्वसाहूणं।

श्री भक्तामरस्तोत्र पूजन

जय जयति जय स्त्रोत भक्तामर परम सुख कारणम्।
जय ऋषभदेव जिनेन्द्र जय जय जय भवोदधितारणम्।।
जय वीतराग महान जिनपति विश्वबंध महेश्वरम्।
जय आदिदेव सु महादेव सुपूज्य प्रभु परमेश्वरम्।।
जय ज्ञान सूर्य अनन्त गुणपति आदिनाथ जिनेश्वरम्।
जय मानतुंग मुनीश पूजित प्रथम जिन तीर्थेश्वरम्।।
मैं भाव पूर्वक करूँ पूजन स्वपद ज्ञान प्रकाशकम्।
दो भेदज्ञान महान अनुपम अष्टकर्म विनाशनम्।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्र अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

जन्म मरण भयहारी स्वामी, आदिनाथ प्रभु को वंदन।
त्रिविध दोष ज्वर हरने को, चरणों में जल करता अर्पण।।
ऋषभदेव के चरण कमल में, मन वच काया सहित प्रणाम।
भक्तामर स्त्रोत पाठकर, मैं पाऊँ निज में विश्राम।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव आताप विनाशक स्वामी, आदिनाथ प्रभु को वंदन।
भवदावानल शीतल करने चन्दन करता हूँ अर्पण।।ऋषभ.।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

भव समुद्र उद्धारक स्वामी, आदिनाथ प्रभु को वंदन।
अक्षयपद की प्राप्ति हेतु प्रभु अक्षत करता हूँ अर्पण।।ऋषभ.।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

काम व्यथा संहारक स्वामी, आदिनाथ प्रभु को वंदन।
मैं कन्दर्प दर्प हरने को सहज पुष्प करता अर्पण।।ऋषभ.।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षुधारोग के नाशक स्वामी, आदिनाथ प्रभु को वंदन।
अब अनादि क्षुधा मिटाऊ प्रभु नैवेद्यं करूँ अर्पण।।ऋषभ.।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वपर प्रकाशक ज्ञान ज्योतिमय, आदिनाथ प्रभु को वंदन।
मोह तिमिर अज्ञान हटाने दीपक चरणों में अर्पण।।ऋषभ.।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्म व्यथा के नाशक स्वामी, आदिनाथ प्रभु को वंदन।
अष्टकर्म विध्वंस हेतु भावों की धूप करूँ अर्पण।।ऋषभ.।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

नित्य निरंजन महामोक्ष पति आदिनाथ प्रभु को वंदन।
मोक्ष सुफल पाने को स्वामी चरणों में फल है अर्पण।।ऋषभ.।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंधाक्षत पुष्प सुचरु दीप धूप फल अर्घ सुमन।
पद अनर्घ पाने को स्वामी चरणों मे सादर अर्पण।।ऋषभ.।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

वृषभांकित जिनराज पद वन्दू बारम्बार।
वृषभदेव परमात्मा परम सौख्य आधार।।

भक्तामर की यशोपताका फहराते हैं साधु भक्त जन।
भाव पूर्वक पाठ मात्र से कट जाते सब संकट तत्क्षण।।

भक्तामर रच मानतुंग ने निजपरका कल्याण किया था।
अड़तालीस काव्यरचनाकार शुभअमरत्व प्रदान किया था।।
नृपकारा से मुक्त हुए मुनि श्रुतउपदेश महान दिया था।
आदिनाथ की स्तुति करके निजस्वरूप का ध्यान किया था।।
मै भी प्रभु की महिमा गाकर भाव पुष्प करता हूँ अर्पण।
त्रैलोक्यश्वर महादेव जिन आदि देव को सविनय वन्दन।।
नाभिराय मरुदेवी के सुत आदिनाथ तीर्थंकर नामी।
आज आपकी शरण प्राप्त कर अति हर्षित हूँ अन्तर्यामी।।
मैंने कष्ट अनंतानन्त उठाये हैं अनादि से स्वामी।
आत्मज्ञान बिन भटक रहा हूँ चारों गति में त्रिभुवन नामी।।
नर सुर नारक पशु पर्यायों में प्रभु मैंने अति दुख पाये।
जड़ पुद्गल तन अपना माना निज चैतन्य गीत ना गाये।।
कभी नर्क में कभी स्वर्ग में कभी निगोद आदि में भटका।
सुखाभास की आकांक्षा ले चार कषायों में ही अटका।।
एक बार भी कभी भूलकर निजस्वरूप का किया न दर्शन।
द्रव्यलिंग भी धारा मैंने किंतु न भाया आत्म चिंतवन।।
आज सुअवसर मिला भाग्य से भक्तामर का पाठ सुन लिया।
शब्द अर्थ भावों को जाना निज चैतन्य स्वरूप गुन लिया।।
अब मुझको विश्वास हो गया भव का अन्त निकट आया है।
भक्तामर का भाव हृदय में मेरे नाथ उमड़ आया है।।
भेद ज्ञान की निधि पाऊँगा स्व पर भेद विज्ञान करुँगा।
शुद्धात्मानुभूति के द्वारा अष्टकर्म अवसान करुँगा।।
इस पूजन का सम्यक्फल प्रभु मुझको आप प्रदान करो अब।
केवलज्ञान सूर्य की पावन किरणों का प्रभु दान करो अब।।

क्रोधमान माया लोभादिक सर्व कषाय विनष्ट करूँ मैं।
वीतराग निज पद प्रगटाऊँ भव बन्धन के कष्ट हरूँ मैं।।
स्वर्गादिक की नहीं कामना भौतिक सुख से नहीं प्रयोजन।
एक मात्र ज्ञायक स्वभाव निज का ही आश्रयलूँ हे भगवान।।
विषय भोग की अभिलाषाएँ पलक मारते चूर करूँ मैं।
शाश्वत निज अखण्ड पद पाऊँ पर भावों को दूर करूँ मैं।।
मिथ्यात्वादिक पाप नष्ट कर सम्यक्दर्शन को प्रगटाऊँ।
सम्यक्ज्ञान चारित्र शक्ति से घाति अघाति कर्म विघटाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभदेव जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भक्तामर स्त्रोत की महिमा अगम अपार।
भाव भासना जो करे हो जाएं भव पार।।

।। पुष्पांजलिम् क्षिपेत् ।।

भव्य जीवों को प्रातःकाल उठकर जिनेन्द्र देव तथा गुरु का दर्शन करना चाहिए, भक्ति पूर्वक उनकी वन्दना–स्तुति भी करना चाहिए और धर्म का श्रवण भी करना चाहिए। इसके बाद ही अन्य गृह आदि सम्बन्धी कार्य करने योग्य है, क्योंकि गणधर आदि महापुरुषों ने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष – इन चार पुरुषार्थों में धर्म का ही सबसे प्रथम निरुपण किया है तथा उसी को मुख्य माना है।

–उपासक संस्कार गाथा, 16–17
श्री पद्मनन्दि आचार्य

श्री कुन्दकुन्द आचार्य पूजन

कुन्द-कुन्द आचार्य देव के चरण कमल में करूँ नमन।
कुन्द-कुन्द आचार्य देव की वाणी के उर धरूँ सुमन।।
कुन्द-कुन्द आचार्य देव की भाव सहित करके पूजन।
निज स्वभाव के साधन द्वारा मोक्ष प्राप्ति का करूँ यतन।।
१"परिणामों बंधो परिणामो मोक्खो" करूँ आत्म दर्शन।
सिद्ध स्वपद की प्राप्ति हेतु मैं निज स्वरूप में करूँ रमन।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्द-कुन्द आचार्य देव चरणाग्रेषु पुष्पांजलि क्षिपामि।

समयसार वैभव के जल से उर में उज्ज्वलता लाऊँ।
२"दंसण मूलोधम्मो" सम्यक्दर्शन निज में प्रगटाऊँ।।
कुन्द-कुन्द आचार्य देव के चरण पूज निज को ध्याऊँ।
सब सिद्धों को वन्दन कर ध्रुव अचल सु अनुपमगति पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्द-कुन्द आचार्य देवाय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

समयसार वैभव चन्दन से निज सुगन्ध को विकसाऊँ।
३"वत्थु सहावोधम्मो" सम्यक्दर्शन सूर्य को प्रगटाऊँ।कुन्द.।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्द-कुन्द आचार्य देवाय संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

समयसार वैभव के उत्तम अक्षत गुण निज में लाऊँ।
४"चारित्तं खलु धम्मो" सम्यक्चारित रथ पर चढ़ जाऊँ।कुन्द.।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्द-कुन्द आचार्य देवाय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

---

(१) परिणामों से बंध और परिणामों से मोक्ष होता है।
(२) अष्ट पाहुड़ २-धर्म का मूल सम्यक्दर्शन है।
(३) वस्तु स्वभाव ही धर्म है।
(४) प्रवचन सार ७-चरित्र ही धर्म है।

समयसार वैभव के पावन पुष्पों में मैं रम जाऊँ।
५"दाणं पूजा मुख्खयसावधायधम्मो" शीलस्वगुण पाऊँ।कुन्द.।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्द-कुन्द आचार्य देवाय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

समयसार वैभव के मनभावन नैवेद्य हृदय लाऊँ।
६"जो जाणदि अरिहंतं" निजज्ञायक स्वभाव आश्रय पाऊँ।कुन्द.।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्द-कुन्द आचार्य देवाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समयसार वैभव के ज्योतिर्मय दीपक उर में लाऊँ।
७"दसणं भट्ठा-भट्ठा" मिथ्या मोह तिमिर हर सुख पाऊँ।कुन्द.।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्द-कुन्द आचार्य देवाय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

समयसार वैभव का शुचिमय ध्यान धूप उर में ध्याऊँ।
८"ववहारोभ्भूयत्थो" निश्चय आश्रित हो शिव पद पाऊँ।कुन्द.।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्द-कुन्द आचार्य देवाय अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

समयसार वैभव के भव्य अपूर्व मनोरम फल पाऊँ।
९"णियमं मोक्ख उवायो" द्वारा महामोक्ष पद प्रगटाऊँ।कुन्द.।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्द-कुन्द आचार्य देवाय महामोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

समयसार वैभव का निर्मल भाव अर्घ उर में लाऊँ।
१०"अहमिक्कोखलुसुद्धो" चिन्तन कर अनर्घ पद को पाऊँ।कुन्द.।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्द-कुन्द आचार्य देवाय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

---

(५) रयणसार १० -श्रावक धर्म में दान पूजा मुख्य है।
(६) प्रवचन सार ८० -जो अरहन्त को .....जानता है।
(७) अष्ट पाहुड़ ३ -जो पुरुष दर्शन से भ्रष्ट है, वे भ्रष्ट हैं
(८) समयसार ११ -व्यवहार नय अभूतार्थ है।
(९) नियमसार ६ -(रत्नत्रयरूप) नियम मोक्ष का उपाय है।
(१०) समयसार १८, ७३ -मैं निश्चय से एक हूँ, शुद्ध हूँ।

जयमाला

मंगलमय भगवान वीर प्रभु मंगलमय गौतम गणधर।
मंगलमय श्री कुन्द-कुन्द मुनि, मंगल जैन धर्म सुखकर।।
कन्नड प्रान्त बड़ा दक्षिण में कोण्डकुण्ड था ग्राम अपूर्व।
कुन्दकुन्द ने जन्म लिया था दो सहस्त्र वर्षो के पूर्व।।
ग्यारह वर्ष आयु थी जब तुमने स्वामी वैराग्य लिया।
श्रेष्ठ महाव्रत धारण करके मुनिपद का सौभाग्य लिया।।
एक दिवस जंगल में बैठे घोर तपस्या में थे लीन।
कंचन सी काया तपती थी आत्म ध्यान में थे तल्लीन।।
उसी समय इक पूर्व जन्म का मित्र देव व्यंतर आया।
देख तपस्या रत भू पर आ श्रद्धा से मस्तक नाया।।
ध्यान पूर्ण होने पर मुनि ने जब अपनी आँखें खोली।
देखा देव पास बैठा है बोले तब हित मित बोली।।
धर्म वृद्धि हो, धर्म वृद्धि हो, धर्म वृद्धि हो तुम हो कौन।
हर्षित पुलकित गद् गद् होकर तोड़ा तब व्यंतर ने मौन।।
नमस्कार कर भक्ति भाव से पूर्व जन्म का दे परिचय।
पिछले भव में परम मित्र थे क्षमा करे मेरी अविनय।।
सीमंधर स्वामी के दर्शन को विदेह भू जाता हूँ।
यही प्रार्थना चले आप भी नम्र विनय मन लाता हूँ।।
चिर इच्छा साकार हुई मुनिवर ने स्वर्ण समय जाना।
बोले श्री जिनवाणी सुनकर मुझे लौट भारत आना।।
मुनि को साथ लिया उसने आकाश मार्ग से गमन किया।
तीर्थंकर सर्वज्ञ देव को जा विदेह में नमन किया।।

सीमंधर के समवशरण को देखा मन में हर्षाये।
जन्म जन्म के पातक क्षय कर अनुपम ज्ञान रत्न पाये।।
सीमंधर प्रभु के चरणों में झुककर किया विनय वन्दन।
प्रभु की शांतमधुर छवि लखकर धन्य हुए भारत नन्दन।।
प्रभु से प्रश्न हुआ लघु मुनिवर कौन कहाँ से आये हैं।
खिरी दिव्य ध्वनि कुन्द कुन्द मुनि भरतक्षेत्र से आये हैं।।
सीमंधर ने दिव्य ध्वनि में कुन्दकुन्द का नाम लिया।
भवभव के अघ नष्ट हो गये मुनि ने विनय प्रणाम किया।।
विनयी होकर कुन्द कुन्द ने जिनवाणी का पान किया।
अष्ट दिवस रह समवसरण में द्वादशांग का ज्ञान लिया।।
अक्षयज्ञान उदधि मन में भर और हृदय में प्रभु का नाम।
सीमंधर तीर्थंकर प्रभु को करके बारम्बार प्रणाम।।
फिर विदेह से चले और नभ पथ से भरत में आये।
तीर्थंकर वाणी का सागर मन मन्दिर में लहराये।।
जो सुनकर आये जिनवाणी फिर उसको लिपि रूप दिया।
जगत जीव कल्याण करें निज, ऐसा शास्त्र स्वरूप दिया।।
राग मात्र को हेय बताया उपादेय निज शुद्धातम।
भाव शुभाशुभ का अभाव कर होता चेतन परमातम।।
समयसार में निश्चय नय का पावनमय सन्देश भरा।
श्री पंचास्तिकाय को रचकर द्रव्य तत्व उपदेश भरा।।
प्रवचनसार बनाया तुमने भेदज्ञान को बतलाया।
मूलाचार लिखा मुनिजन हित साधु मार्ग को दर्शाया।।
नियमसार की रचना अनुपम रयणसार गूंथा चितलाय।
लघु सामायिक पाठ बनाया लिखा सिद्ध प्राभृत सुखदाय।।

श्री अष्टपाहुड़ षट्प्राभृत द्वादशानुप्रेक्षा के बोल।
चौरासी पाहुड़ लिक्खे जो ज्ञात नहीं हमको अनमोल।।
ताड़ पत्र पर लिखे ग्रन्थ तब सफल हुई चिर अभिलाषा।
जन जन की वाणी कल्याणी धन्य हुई प्राकृत भाषा।।
जीवों के प्रति करुणा जागी मोक्ष मार्ग उपदेश दिया।
और तपश्या भूमि बनाकर गिरि कुन्द्रादि पवित्र किया।।
अमृतचन्द्राचार्य देव की टीका आत्मख्याति विख्यात।
पद्मप्रभ मलधारी देवकी टीका नियमसार प्रख्यात।।
श्री जयसेनाचार्य रचित तात्पर्यवृत्ति टीका पावन।
श्री कानजीस्वामी के भी अनुपम समयसार प्रवचन।।
पद्मनन्दि गुरु बक्रग्रीव । मुनि एलाचार्य आपके नाम।
गृद्धपृच्छ आचार्य यतीश्वर कुन्दकुन्द हे गुण के धाम।।
हे आचार्य आपके गुण वर्णन करने की शक्ति नहीं।
पथ पर चलें आपके ऐसी भी तो अभी विरक्ति नहीं।।
भक्ति विनय के सुमन आपके चरणों में अर्पित हैं देव।
भव्य भावना यही एक दिन मैं सर्वज्ञ बनूँ स्वयमेव।।
११"जीवादी सद्दहणं सम्मत्तं" पाऊँ प्रभु करूँ प्रणाम।
इन चरणों की पूजन का फल पाऊँ सिद्धपुरी का धाम।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्दआचार्यदकवाय अनर्घपद प्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कुन्दकुन्द मुनि के वचन भाव सहित उर धार।
निज आतम को ध्यांवते पाते ज्ञान अपार।।

इत्याशीर्वादः

---

(११) समयसार - १५५ जीवादि पदार्थों का श्रद्धान सम्यक्दर्शन है।

सरस्वती (जिनवाणी) पूजन - 1

स्थापना (दोहा)

जन्म-जरा-मृतु छय करै, हरै कुनय जड़ रीति।
भवसागरसों ले तिरै, पूजैं जिन वच प्रीति।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री जनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

(त्रिभंगी)

छीरोदधिगंगा, विमल तरंगा, सलिल अभंगा सुखसंगा।
भरि कंचन झारी, धार निकारी, तृषा निवारी हितचंगा।।
तीर्थंकर की धुनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनिज्ञानमई।
सो जिनवर वानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदैव्य जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

करपूर मंगाया, चंदन आया, केशर लाया रंग भरी।
शारदपद वन्दों, मन अभिनन्दों पाप निकंदों दाह हरि।।तीर्थंकर.।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदैव्य संसारताप विनासनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

सुखदास कमोदं, धारकमोदं, अति अनुमोदं चंदसमं।
बहुभक्ति बढ़ाई, कीरति गाई, होहु सहाई मातममं।।तीर्थंकर.।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदैव्य अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

बहुफूल सुवासं, विमल प्रकाशं, आनन्दरासं, लाय धरे।
मम काम मिटायो, शील बढ़ायो, सुख उपजायो दोष हरे।।तीर्थंकर.।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदैव्य कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पकवान बनाया, बहुघृत लाया, सब विधि भाया मिष्ट महा।
पूजूँ थुति गाऊँ प्रीति बढ़ाऊँ क्षुधा नशाऊं हर्ष लहा।।तीर्थंकर.।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदैव्य क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

करि दीपक ज्योतं, तमछय होतं, ज्योति उदोतं तुमहिं चढ़ै।
तुम हो परकाशक, भरमविनाशक, हम घट भासक ज्ञान बढ़ै।।
तीर्थंकर की धुनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनिज्ञानमई।
सो जिनवर वानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै मोहान्धकार विनासनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभगंध दशोंकर, पावक में धर, धूप मनोहर खेवत हैं।
सब पाप जलावैं, पुण्य कमावैं, दास कहावैं सेवत हैं।।तीर्थंकर.।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बादाम छुआरी, लोंग सुपारी, श्रीफल भारी, ल्यावत हैं।
मनवांछित दाता, मेट असाता तुम गुण माता गावत हैं।।तीर्थंकर.।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

नयनन सुखकारी, मृदुगुणधारी, उज्ज्वल भारी मोल धरैं।
शुभगन्ध सम्हारा, वसन निहारा, तुम तन धारा ज्ञान करैं।।तीर्थंकर.।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै दिव्यज्ञान प्राप्तये वस्त्रं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चन्दन अच्छत, फूलचरुचत, दीप धूप फल अति लावैं।
पूजा को ठानत, जो तुम जानत, सो नर द्यानत सुख पावैं।।तीर्थंकर.।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(सोरठा)

ओंकार धुनिसार, द्वादशांगवाणी विमल।
नमों भक्ति उर धार, ज्ञान करे जड़ता हरै।।

(चौपाई)

पहलो आचारांग बखानों, पद अष्टादश सहस प्रमानो।
दूजो सूत्रकृतं अभिलाषं, पद छत्तीस सहस गुरु भाषं।।

तीजो ठाना अंग सु जानं, सहस बयालिस पद सरधानं।
चौथो समवायांग निहारं, चौसठ सहस लाख इक धारं।।
पंचम व्याख्या प्रज्ञप्ति दरसं, दोय लाख अट्ठाइस सहसं।
छट्ठो ज्ञातृकथा विस्तारं, पाँच लाख छप्पन हज्जारं।।
सप्तम उपासकाध्ययनंगं, सत्तर सहस ग्यार लख भंगं।
अष्टम अन्तकृत दश ईसं, सहस अट्ठाईस लाख तेईसं।।
नवम अनुत्तर दश सुविशालं, लाख बानवै सहस चवालं।
दशम प्रश्न व्याकरण विचारं, लाख तिरानवै सोल हजारं।।
ग्यारम सुत्रविपाक सु भाखं, एक कोड़ चौरासी लाखं।
चार कोड़ी अरु पन्द्रह लाखं, दो हजार सब पद गुरु भाखं।।
द्वादश दृष्टिवाद पनभेदं, इकसौ आठ कोड़िपनवेदं।
अड़सठ लाख सहस छप्पन हैं, सहित पंचपद मिथ्या हन हैं।।
इकसौ बासठ कोड़ि बखानो, लाख तिरासी ऊपर जानो।
ठावन सहस पंच अधिकाने, द्वादश अंग सर्व पद माने।।
कोड़ि इकावन आठ ही लाखं, सहस चुरासी छह सौ भाखं।
साड़े इक्कीस श्लोक बताये, एक-एक पद के ये गाये।।

(दोहा)

जा वानी के ज्ञात तै, सूझै लोक-अलोक।
'द्यानत' जग जयवन्त हो, सदा देत हों धोक।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्य अनर्घ्यपद प्राप्तये जयमाला महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्री जिनवाणी पूजन - 2

जयजय श्री जिनवाणी जय जग कल्याणी जय जय जय।
तीर्थंकर की दिव्यध्वनि जय, गुरु गणधर गुम्फित जय जय।।
स्याद्वाद पीयूषमयी जय लोकालोक प्रकाशमयी।
द्वादशांग श्रुत ज्ञानमयी जय वीतराग विज्ञानमयी।।
श्री जिनवाणी के प्रताप से मैं अनादि मिथ्यात्व हरूँ।
श्री जिनवाणी मस्तक धारूँ बारम्बार प्रणाम करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

मिथ्यात्व कलुषता के कारण पाया न बिन्दु समताजल का।
अपने ज्ञायकस्वभाव का भी अब तक प्रतिभास नहीं झलका।।
मैं श्री जिनवाणी चरणों में मिथ्यातम हरने आया हूँ।
श्री महावीर की दिव्यध्वनि हृदयंगम करने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री जिन मुखोद्भव सरस्वतीदैव्य जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रद्धा विपरीत रहो मेरी निज पर का ज्ञान नहीं भाया।
चन्दन सम शीतलता मय हूँ इतना भी ध्यान नहीं आया।मैं श्री।।

ॐ ह्रीं श्री जिन मुखोद्भव संसारताप विनासनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

यह आधि व्याधि पर की उपाधि भव भ्रमण बढ़ाती आई है।
अक्षय अखण्ड निज की समाधि अब तक न कभी भी पाई है।मैं श्री।।

ॐ ह्रीं श्री जिन मुखोद्भव सरस्वतीदैव्य अक्षय पद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

एकत्व बुद्धि करके पर में कर्त्तापन का अभिमान किया।
मैं निज का कर्ता भोक्ता हूँ ऐसा न कभी भी भान किया।मैं श्री।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदैव्य कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

यह माया अनन्तानुबन्धी प्रति समय जाल उलझाती है।
चारों कषाय की यह तृष्णा उलझन न कभी सुलझती है।मैं श्री।।

ॐ ह्रीं श्री जिन मुखोद्भव सरस्वतीदैव्य क्षुधारोग विनासनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तत्वों के सम्यक् निर्णय बिन श्रद्धा की ज्योति न जल पाई।
अज्ञान अंधेरा हटा नहीं सन्मार्ग न देता दिखलाई।मैं श्री।।

ॐ ह्रीं श्री जिन मुखोद्भव सरस्वतीदैव्य मोहान्धकार विनासनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

होकर अनन्त गुण का स्वामी, पर का ही दास रहा अबतक।
निज गुणकी सुरभि नहीं भाई भवदधि में कष्ट सहा अबतक।मैं श्री।।

ॐ ह्रीं श्री जिन मुखोद्भव सरस्वतीदैव्य अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं तीन लोक का नाथ पुण्य धूल के पीछे पागल हूँ।
चिन्तामणी रत्न छोड़कर मैं रागों में आकुल-व्याकुल हूँ।मैं श्री।।

ॐ ह्रीं श्री जिन मुखोद्भव सरस्वतीदैव्य महा मोक्ष फल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अब तक जितना पुण्य शेष हर्षित हो अर्पण करता हूँ।
अनुपम अनर्घ पद पा जाऊँ मैं यही भावना भरता हूँ।मैं श्री।।

ॐ ह्रीं श्री जिन मुखोद्भव सरस्वतीदैव्य अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

जय जय जय ओंकार दिव्यध्वनि योगीजननित करते ध्यान।
मोहतिमिर मिथ्यात्व विनाशक ज्ञान प्रकाशक सूर्य समान।।
वस्तु स्वरूप प्रकाशक निज पर भेद ज्ञान की ज्योति महान।
सप्तभंग, स्याद्वाद नयाश्रित द्वादशांग श्रुत ज्ञान प्रमाण।।
द्वादश अंग पूर्व चौदह, परिक्रर्म सूत्र से शोभित है।
पंच चूलिका चौ अनुयोग प्रकीर्णक चौदह भूषित है।।

जय जय आचारांग प्रथम जय सूत्र कृतांग द्वितीय नमन।
स्थानांग तृतीय नमन जय चौथा समवायांग नमन।।
जय व्याख्याप्रज्ञप्ति पाँचवां षष्टम् ज्ञातृधर्मकथांग।
उपासकाध्ययनांग सातवाँ अष्टम् अन्तःकृतदशांग।।
अनुत्तरोत्पादक दशांग नौ प्रश्न व्याकरण अंग दशम्।
जय विपाकसूत्रांग ग्यारहवाँ दृष्टिवाद द्वादशम् परम्।।
दृष्टिवाद के चौदह भेद रूप है चौदह पूर्व महान।
ग्यारह अंगपूर्व नौ तक का द्रव्यलिंगि कर सकता ज्ञान।।
पहला है उत्पाद पूर्व दूजा अग्रायणीय जानो।
तीजा है वीर्यानुवाद चौथा है अस्तिनास्ति मानो।।
पंचम ज्ञानप्रवाद कि षष्टम् सत्यप्रवाद पूर्व जानो।
सप्तम आत्मप्रवाद, आठवाँ कर्मप्रवाद पूर्व मानो।।
नवमा व्याख्यानप्रवाद सु दशवाँ विद्यानुवाद जान।
ग्यारहवाँ कल्याणवाद बारहवाँ प्राणानुवाद महान।।
तेरहवाँ क्रिया विशाल चौदहवाँ लोक बिन्दु है सार।
अंग प्रविष्ट अरु अंग बाह्य के भेद प्रभेद सदा सुखकार।।
दृष्टिवाद का भेद पाँचवां पंच चूलिका नाम यथा।
जलगत थलगत मायागत अरु रूपगता आकाशगता।।
पाँच भेद परिकर्म उपांग के प्रथम चन्द्र प्रज्ञप्ति महान।
दूजा सूर्यप्रज्ञप्ति तीसरा जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति प्रधान।।
चौथा द्वीप-समूह प्रज्ञप्ति पंचम व्याख्या प्रज्ञप्ति जान।
सूत्र आदि अनुयोग अनेकों है उपांग धन-धन श्रुत ज्ञान।।
तत्वों के सम्यक् निर्णय से होता शुद्धातम का ज्ञान।
सरस्वती माँ के आश्रय से होता है शाश्वत कल्याण।।

इसीलिए जिनवाणी का अध्ययन चिंतवन मैं कर लूँ।
काल लब्धि पाकर अनादि अज्ञान निविड़तम को हरलूँ।।
नव पदार्थ छह द्रव्य काल त्रय सात तत्व को मैं जानूँ।
तीन लोक पंचास्तिकाय छह लेश्याओं को पहचानूँ।।
षट्कायक की दया पालकर समिति गुप्तिव्रत को पालूँ।
द्रव्यभाव चारित्र धार कर तप संयम को अपना लूँ।।
निज स्वभाव में लीन रहूँ मैं निज स्वरूप में मुस्काऊँ।
क्रम-क्रम से मैं चार घातियाँ नाश करूँ निज पद पाऊँ।।
प्राप्त चतुर्दश गुणस्थान कर पूर्ण अयोगी बन जाऊँ।
निज सिद्धत्व प्रगट कर सिद्धशिला पर सिद्धस्वपद पाऊँ।।
यह मानव पर्याय धन्य हो जाये माँ ऐसा बल दो।
सम्यक्दर्शन ज्ञान चरित रत्नत्रय पावन निर्मल दो।।
भव्य भावना जगा हृदय में जीवन मंगलमय कर दो।
हे जिनवाणी माता मेरा अन्तर ज्योतिर्मय कर दो।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्य पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनवाणी का सार है भेद-ज्ञान सुखकार।
जो अन्तर में धारते, हो जाते भव पार।।

इत्याशीर्वादः

जो भव्य जीव जिनेन्द्र भगवान को भक्ति पूर्वक देखते हैं तथा उनकी पूजा-स्तुति करते हैं; वे भव्य जीव तीनों लोक में दर्शनीय तथा पूजा के योग्य होते हैं अर्थात् सर्व लोक उनको भक्ति से देखता है तथा उनकी पूजा-स्तुति करता है।

-उपासक संस्कार गाथा-14
श्री पद्मनन्दि आचार्य

श्री समयसार पूजन

जय जय जय ग्रन्थाधिराज श्री समयसार जिन श्रुत बन्दन।
कुन्दकुन्द आचार्य रचित परमागम को सादर वन्दन।।
द्वादशांग जिनवाणी का है इसमें सार परम पावन।
आत्म तत्व की सहज प्राप्ति का है अपूर्व अनुपम साधन।।
सीमंधर प्रभु की दिव्य ध्वनि इसमें गूंज रही प्रतिक्षण।
इसको हृदयंगम करते ही हो जाता सम्यक्दर्शन।।
समयसार का सार प्राप्त कर सफल करुं मानव जीवन।
सब सिद्धों का वन्दन करके करता विनय सहित पूजन।।

ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसाराय पुष्पांजलि क्षिपामि।

निज स्वरूप को भूल आज तक चारों गति में किया भ्रमण।
जन्म मरण क्षय करने को अब निज स्वरूप में करुँ रमण।।
समयसार का करुँ अध्ययन समयसार का करुँ मनन।
कारण समयसार को ध्याऊँ समयसार को करुँ नमन।।

ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसार जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव ज्वाला में प्रतिफल जलजल करता रहा करुण क्रन्दन।
निज स्वभाव ध्रुव का आश्रय ले काटूँगा जग के बन्धन।।समय।।

ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसार संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

पुण्य पाप के मोह जाल में बढ़ी सदा भव की उलझन।
संवरभाव जगा उर में तो, भव समुद्र का हुआ पतन।।समय।।

ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसार अक्षय पद प्राप्तये-अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

कामभोग बन्धन की कथनी सुनी अनन्तों बार सघन।
चिर परिचित जिन श्रुत अनुभूति न जागी मेरे अंतर्मन।।समय।।

ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसार कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षुधारोग की औषधि पाने का न किया है कभी जतन।
आत्मभान करते ही महका वीतरागता का उपवन।।
समयसार का करूँ अध्ययन समयसार का करूँ मनन।
कारण समयसार को ध्याऊँ समयसार को करूँ नमन।।
ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसार क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भ्रम अज्ञान तिमिर के कारण पर में माना अपनापन।
सत्य बोध होते ही पाई ज्ञान सूर्य की दिव्य किरण।।समय।।
ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसार मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

आर्त रौद्र ध्यानों में पड़कर पर भावों में रहा मगन।
शुचिमय ध्यान धूप देखी तो धर्म ध्यान की लगी लगन।।समय।।
ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसार अष्टकर्म विनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

भव तरु के विषमय फल खाकर करता आया भाव मरण।
सिद्ध स्वपद की चाहजगी तो यह पर्याय हुई धन धन।।समय।।
ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसार महा मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

आश्रव बंधभाव का कारण मिटा राग का एक न कण।
द्रव्य दृष्टि बनते ही पाया निज अनर्घ पद का दर्शन।।समय।।
ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसार अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

समयसार के ग्रन्थ की महिमा अगम अपार।
निश्चय नय भूतार्थ है अभूतार्थ व्यवहार।।

दुर्नय तिमिर निवारण कारण समयसार को करूँ प्रणाम।
हूँ अबद्धस्पृष्ट नियत अविशेष अनन्य मुक्ति का धाम।।
सप्त तत्त्व अरूँ नव पदार्थ का इसमें सुन्दर वर्णन है।
जो भूतार्थ आश्रय लेता पाता सम्यक्दर्शन है।।

जीव अजीव अधिकार प्रथम में भेद ज्ञान की ज्योति प्रधान।
१"जो पस्सदि अप्पाणं", णियंदं हो जाता सर्वज्ञ महान।।
कर्ता कर्म अधिकार समझकर कर्ता बुद्धि विनाश करूँ।
२ "सम्मद्दंसणं णाणं एसो" निज शुद्धात्म प्रकाश करूँ।।
पुण्य पाप अधिकार जान दोनों में भेद नहीं मानूँ।
ये विभाव परिणति से हैं उत्पन्न बंधमय ही जानूँ।।
३ "रत्तों बंधदि कम्मं" जानूँ उर विराग ले कर्म हरूँ।
राग शुभाशुभ का निषेध कर निज स्वरूप को प्राप्त करूँ।।
मैं आस्रव अधिकार जानकर राग द्वेष अरु मोह हरूँ।
भिन्न द्रव्य आस्रव से होकर भावास्रव को नष्ट करूँ।।
मैं संवर अधिकार समझकर संवरमय ही भाव करूँ।
४"अप्पाणं झायंतो" दर्शन ज्ञानमयी निज भाव करूँ।।
मैं अधिकार निर्जरा जानूँ पूर्ण निर्जरावन्त बनूँ।
पूर्व उदय में सम रहकर मैं चेतन ज्ञायक मात्र रहूँ।।
५"अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो" सारे कर्म झराऊंगा।
मैं रतिवन्त ज्ञान में होकर शाश्वत शिव सुख पाऊंगा।।
बन्ध अधिकार बन्ध की ही तो सकल प्रक्रिया बतलाता।
बिन समकित जप, तप व्रत संयम बंध मार्ग है कहलाता।।
राग-द्वेष भावों से विरहित जीव बन्ध से रहता दूर।
६"णिच्छय णया सिदापुणमुणिणो" अष्टकर्म करता चकचूर।।

(१) स. सा. १५ अपनी आत्मा को ....नियत देखता है....
(२) स. सा. १४४ सम्यक्दर्शन ज्ञान ऐसी संज्ञा मिलती है...
(३) समयसार १५० -रागी जीव कर्म बांधता है...
(४) स. सा. १८६ -आत्मा को ध्याता हुआ....
(५) स. सा. २१०-११-१२-१३-अनिच्छुक को अपरिग्रही कहा है....
(६) स. सा. १७२ -निश्चय नयाश्रित मुनि मोक्ष प्राप्त करते हैं....

जान मोक्षअधिकार शीघ्र ही नष्ट करूँ विष-कुम्भ-विभाव।
आत्म स्वरूप प्रकाशित करके प्रकटाऊँ परिपूर्ण स्वभाव।।
शुद्ध आत्मा ग्रहण करूँ मैं सर्व बंध का कर छेदन।
निशंकित होकर पाऊँगा मुक्ति शिला का सिंहासन।।
सर्व विशुद्ध ज्ञान का है अधिकार अपूर्व अमूल्य महान।
पर कर्तृत्व नष्ट हो जाता होता शिव पथ पर अभियान।।
कर्म फलों को मूढ़ भोगता ज्ञानी उनका ज्ञाता है।
इसीलिये अज्ञानी दुख पाता ज्ञानी सुख पाता है।।
भाव भासना नौ अधिकारों से कर निज में वास करूँ।
७"मिच्छत्तं अविरमणं कसाय जोग" की सत्ता नाश करूँ।।
कुन्दकुन्द ने समयसार मन्दिर का किया दिव्य निर्वाण।
वीतराग सर्वज्ञ देव की दिव्य-ध्वनि का इसमें ज्ञान।।
सर्व चार सौ पन्द्रह गाथाएं प्राकृत भाषा में जान।
सारभूत निज समयसार को ही अनुभव लूँ भव्य महान।।
अमृतचन्द्राचार्य देव ने आत्मख्याति टीका लिखकर।
कलश चढ़ाये दो सौ अठहत्तर स्वर्णिम अनुपम सुन्दर।।
श्री जयसेनाचार्य स्वामी की सरस तात्पर्यवृत्ति टीका।
ऋषि मुनि विद्वानों ने लिक्खा वर्णन समयसार जी का।।
ज्ञानी ध्यानी मुनियों ने भी तोरण द्वार सजाये हैं।
समयसार के मधुर गीत गा वन्दनवार चढ़ाये हैं।।
भिन्न-भिन्न भाषाओं में इसके अनुवाद हुए सुन्दर।
काव्य अनेकों लिखे गये हैं समयसारजी पर मनहर।।

(७) स. सा. १६४ -मिथ्यात्व अविरति कषाय योग ये आश्रव है।

श्री कानजी स्वामी ने भी करके समयसार प्रवचन।
समयसार मन्दिर पर सविनय हर्षित किया ध्वजारोहण।।
समयसार पढ़ सम्यक्दर्शन ज्ञान चरित्र प्रगटाऊँगा।
८"तिब्बं मंद सहावं" क्षयकर वीतराग पद पाऊँगा।।
पंच परावर्तन अभाव कर सिद्ध लोक में जाऊँगा।
काल लब्धि आई है मेरी परम मोक्ष पद पाऊँगा।।
भक्ति भाव से समयसार की मैंने पूजन की है देव।
कारण समंयसार की महिमा उरमें जाग उठी स्वयमेव।।
नमः समयसाराय स्वानुभाव ज्ञान चेतनामयी परम।
एक शुद्ध टंकोत्कीर्ण, चिन्मात्र पूर्ण चिद्रुप स्वयम्।।
नय पक्षों से रहित आत्मा ही है समयसार भगवान।
समयसार ही सम्यक्दर्शन समयसार ही सम्यक्ज्ञान।।

समयसार के भाव को जो लेते उर धार।
निज अनुभव को प्राप्तकर हो जाते भव पार।।

इत्याशीर्वादः

जो मनुष्य परिग्रह रहित तथा ज्ञान–ध्यान–तप में लीन गुरुओं को नहीं मानते हैं, उनकी उपासना, भक्ति नहीं करते हैं; उन पुरुषों के अंतरंग में अज्ञानरूपी अंधकार सदा विद्यमान रहता है। इसलिए सूर्य का उदय होने पर भी वे अन्धे हीं बने रहते हैं; अतः भव्य जीवों को चाहिए कि वे अज्ञानरूपी अंधकार को नाश करने के लिए गुरुओं की सेवा करें।

–उपासक संस्कार गाथा–19
श्री पद्मनन्दि आचार्य

(८) स. सा. २८८ -बन्धन के तीव्र मन्द स्वभाव को....

श्री निर्वाणक्षेत्र पूजन - 1

परम पूज्य चौबीस, जिहँ जिहँ थानक शिव गये।
सिद्धभूमि निश-दीस, मन वच तन पूजा करौं।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकर निर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकर निर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकर निर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

(गीता)

शुचि क्षीर-दधि-सम नीर निरमल, कनक-झारी में भरौं।
संसार पार उतार स्वामी, जोर कर विनती करौं।।
सम्मेदगढ़ गिरनार चम्पा, पावापुरि कैलासकों।
पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाण भूमि-निवासकों।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा।

केशर कपूर सुगन्ध चन्दन, सलिल शीतल विस्तरौं।
भव-ताप को सन्ताप मेटो, जोर कर विनती करौं।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

मोती-समान अखण्ड तन्दुल, अमल आनन्द धरि तरौं।
औगुन-हरौ गुन करौ हमको, जोर कर विनती करौं।।सम्मेद.।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ फूल-रास सुवास-वासित, खेद सब मन को हरौं।
दुःख-धाम काम विनाश मेरो, जोर कर विनती करौं।।सम्मेद.।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज अनेक प्रकार जोग मनोग धरि भय परिहरौं।
यह भूख-दूखन टार प्रभुजी, जोर कर विनती करौं।।
सम्मेदगढ़ गिरनार चम्पा, पावापुरि कैलासकों।
पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाण भूमि-निवासकों।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीपक-प्रकाश उजास उज्ज्वल, तिमिरसेती नहिं डरौं।
संशय-विमोह-विभरम-तम-हर, जोरकर विनती करौं।।सम्मेद.।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ-धूप परम-अनूप पावन, भाव पावन आचरौं।
सब करम पुंज जलाय दीज्यो, जोर कर विनती करौं।।सम्मेद.।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बहु फल मँगाय चढ़ाय उत्तम, चार गतिसों निरवरौं।
निहचै मुकति-फल देहु मोको, जोर कर विनती करौं।।सम्मेद.।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गन्ध अच्छत फूल चरु फल, दीप धूपायन धरौं।
'द्यानत' करो निरभय जगतसों, जोर कर विनती करौं।।सम्मेद.।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(सोरठा)

श्रीचौबीस जिनेश, गिरि कैलाशादिक नमों।
तीरथ महाप्रदेश महापुरुष निरवाणतैं।।

(चौपाई १६ मात्रा)

नमों ऋषभ कैलासपहारं, नेमिनाथ गिरनार निहारं।
वासुपूज्य चम्पापुर वन्दौं, सन्मति पावापुर अभिनन्दौं।।

वन्दौं अजित अजित-पद-दाता, वन्दौं सम्भव भव-दुःख घाता।
वन्दौं अभिनन्दन गण-नायक, वन्दौं सुमति सुमति के दायक।।
वन्दौं पद्म मुकति - पद्माकर, वन्दौं सुपास आश-पासहर।
वन्दौं चन्द्रप्रभ प्रभु चन्दा, वन्दौं सुविधि सुविधि-निधि-कन्दा।।
वन्दौं शीतल अघ-तप-शीतल, वन्दौं श्रेयान्स श्रेयान्स महीतल।
वन्दौं विमल-विमल उपयोगी, वन्दौं अनन्त-अनन्त सुखभोगी।।
वन्दौं धर्म-धर्म विस्तारा, वन्दौं शान्ति, शान्ति मनधारा।
वन्दौं कुन्थु, कुन्थु रखवालं, वन्दौं अर अरि हर गुणमालं।।
वन्दौं मल्लि काम मल चूरन, वन्दौं मुनिसुव्रत व्रत पूरन।
वन्दौं नमि जिन नमित सुरासुर, वन्दौं पास-पास भ्रम जगहर।।
बीसों सिद्धभूमि जा ऊपर, शिखर सम्मेद महागिरि भू पर।
एक बार बन्दै जो कोई, ताहि नरक पशुगति नहीं होई।।
नरपतिनृप सुर शक्र कहावै, तिहुँ जग भोग भोगि शिव पावै।
विघन विनाशन मंगलकारी, गुण-विलास वन्दौं भवतारी।।

(घत्ता)

जो तीरथ जावै पाप मिटावै, ध्यावै गावै, भगति करै।
ताको जस कहिये, संपति लहिये, गिरि के गुण को बुध उचरै।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो अनर्घपद प्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

जिनेन्द्र देव की पूजा, निर्ग्रन्थ गुरुओं की सेवा, स्वाध्याय, संयम, योग्यतानुसार तप औ दान – ये छह कर्म श्रावकों को प्रतिदिन करने योग्य हैं।

–उपासक संस्कार गाथा–7
श्री पद्मनन्दि आचार्य

श्री तीर्थंकर निर्वाणक्षेत्र पूजन - 2

अष्टापद कैलाश श्री सम्मेदाचल चम्पापुर धाम।
उर्ज्जयंत गिरनार शिखर पावापुर सबको करूँ प्रणाम।।
ऋषभादिक चौबीस जिनेश्वर मुक्ति वधु के कंत हुए।
पंच तीर्थों से तीर्थंकर परम सिद्ध भगवन्त हुए।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाण क्षेत्राणि ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाण क्षेत्राणि ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाण क्षेत्राणि ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

जन्म मरण से व्यथित हुआ हुँ भव अनादि से दुखपाया।
परम पारिणामिक स्वभाव का निर्मल जल पाने आया।।
अष्टापद सम्मेद शिखर, चम्पापुर, पावापुर, गिरनार।
चौबीसों तीर्थंकर की निर्वाण भूमि वन्दू सुखकार।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव आतप से दग्ध हुआ मैं प्रतिपल दुःख अनन्त पाया।
परम पारिणामिक स्वभाव का निज चंदन पाने आया।।अष्टा.।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो संसार ताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

भव समुद्र में चहुँगति की भंवरों में डूबा उतराया।
परम पारिणामिक स्वभाव से अक्षयपद पाने आया।।अष्टा.।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

कामभोग बंधन में पड़कर शील स्वभाव नहीं पाया।
परम पारिणामिक स्वभाव के सहज पुष्प पाने आया।।अष्टा.।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

तृष्णा की ज्वाला में जल जल तृप्त नहीं में हो पाया।
परम पारिणामिक स्वभाव के शुचिमय चरु पाने आया।।अष्टा.।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्ज्ञान बिना प्रभु अब तक निज स्वरूप ना लख पाया।
परम पारिणामिक स्वभाव की दीप ज्योति पाने आया।।
अष्टापद सम्मेद शिखर, चम्पापुर, पावापुर, गिरनार।
चौबीसों तीर्थंकर की निर्वाण भूमि वन्दू सुखकार।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टकर्म की क्रूर प्रकृतियों में ही निज को उलझाया।
परम पारिणामिक स्वभाव की सजल धूप पाने आया।।अष्टा.।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

मोक्ष प्राप्ति के बिना आज तक सुख का एक न कण पाया।
परम पारिणामिक स्वभाव के शिवमय फल पाने आया।।अष्टा.।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध त्रिकाली अपना ज्ञायक आत्म स्वभाव न दर्शाया।
परम पारिणामिक स्वभाव से पद अनर्घ पाने आया।।अष्टा.।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

श्रीचौबीस जिनेश को वन्दन करूँ त्रिकाल।
तीर्थंकर निर्वाण भू हरे कर्म जंजाल।।

अष्टापद कैलाश आदि प्रभु ऋषभ देव पद करूँ प्रणाम।
चम्पापुर में वासु पूज्य जिनवर के पद बन्दूँ अभिराम।।
उर्ज्जयन्त गिरनार शिखर पर नेमिनाथ पद में वन्दन।
पावापुर में वर्द्धमान प्रभु के चरणों को करूँ नमन।।
बीस तीर्थंकर सम्मेदाचल के पर्वत पर वन्दूँ।
बीस टोंक पर बीस जिनेश्वर सिद्ध भूमि को अभिनन्दूँ।।

कूटसिद्धवर अजितनाथ के चरण कमल को नमन करूँ।
धवलकूट पर सम्भवजिन पद पूजूँ निज का मनन करूँ।।
मैं आनन्दकूट पर अभिनन्दन स्वामी को करूँ नमन।
अविचलकूट सुमति जिनवर के पद कमलों में हे वन्दन।।
मोहनकूट पदम प्रभु के चरणों में सादर करूँ नमन।
कूट प्रभास सुपार्श्वनाथ प्रभु के मैं पूजूँ भव्य चरण।।
ललितकूट पर चन्दा प्रभु को भाव सहित सादर वन्दूँ।
सुप्रभकूट सुविधि जिनवर श्री पुष्पदन्त पद अभिनन्दूँ।।
विद्युतकूट श्री शीतल जिनवर के चरण कमल पावन।
संकुल कूट चरण श्रेयान्सनाथ के पूजूँ मन भावन।।
श्री सुवीरकुल कूट भाव से विमलनाथ के पद बन्दूँ।
चरण अनन्तनाथ स्वामी के कूट स्वयं भू पर बन्दूँ।।
कूट सुदत्त पूजता हूँ मैं धर्मनाथ के चरण कमल।
नमूँ कुन्दप्रभ कूट मनोहर शान्तिनाथ के चरण विमल।।
कुन्थुनाथ स्वामी को वन्दूँ कूट ज्ञानधर भव्य महान।
नाटक कूट श्री अरनाथ जिनेश्वर पद का ध्याऊँ ध्यान।।
संबलकूट मल्लि जिनवर के चरणों की महिमा गाऊँ।
निर्जरकूट श्री मुनिसुव्रत चरण पूजकर हर्षाऊँ।।
कूट मित्रधर श्री नमीनाथ तीर्थंकर पद करूँ प्रणाम।
स्वर्णभद्र श्री पार्श्वनाथ प्रभु को नित वन्दूँ आठों याम।।
तीर्थंकर निर्वाण भूमियाँ तीर्थ क्षेत्र कहलाती हैं।
मुनियों की निर्वाण भूमियाँ सिद्ध क्षेत्र कहलाती हैं।।
गर्भ जन्म तप ज्ञान भूमियाँ अतिशय क्षेत्र कहलाती है।
इन सब तीर्थों की यात्रा से उर पवित्रता आती है।।

अपना शुद्ध स्वभाव लक्ष्य में लेकर जो निज ध्यान धरूँ।
सादि अनन्त समाधि प्राप्त कर परम मोक्ष निर्वाण वरूँ।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सिद्ध भूमि जिनराज की महिमा अगम अपार।
निज स्वभाव को साधते वे होते भव पार।।

इत्याशीर्वादः

.....तो तुझे धर्म का प्रेम ही नहीं है

बड़े-बड़े धर्मात्माओं को जिन भगवान की प्रतिष्ठा का, उनके उनके दर्शन का ऐसा भाव आता है और तू कहता है कि मुझे दर्शन करने का अवकाश नहीं मिलता अथवा मुझे पूजा करते शर्म आती है तो तुझे धर्म की रुचि नहीं, देव-गुरु का तुझे प्रेम नहीं। पाप के काम में तुझे अवकाश मिलता है और यहाँ तुझे अवकाश नहीं मिलता -यह तो तेरा व्यर्थ का बहाना है। जगत् के पाप कार्यों में, काला बाजार आदि के करने में तुझे शर्म नहीं आती और यहाँ भगवान के समीप जाकर पूजा करने में तुझे शर्म आती है; वाह ! बलिहारी है तेरी औंधाई की।

शर्म तो पापकार्य करने में आनी चाहिये, उसके बदले वहाँ तो तुझे प्रसन्नता होती है और धर्म के कार्य में शर्म आने की बात कहता है, वास्तव में तुझे धर्म का प्रेम ही नहीं है।

-पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी
श्रावक धर्म प्रकाश

श्री समस्त सिद्धक्षेत्र पूजन

मध्यलोक में ढ़ाई द्वीप के सिद्ध क्षेत्रों को वन्दन।
जम्बूद्वीप सुभरत क्षेत्र के तीर्थक्षेत्रों को वन्दन।।
श्री कैलाश आदि निर्वाण भूमियों को मैं करूँ नमन।
श्रद्धा भक्ति विनयपूर्वक हर्षित हो करता पूजन।।
शुद्ध भावना यही हृदय में मैं भी सिद्ध बनूँ भगवन।
रत्नत्रय पथ पर चलकर मैं नाशूँ चहुँ गति का क्रन्दन।।

ॐ ह्रीं श्री समस्त सिद्ध क्षेत्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री समस्त सिद्ध क्षेत्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री समस्त सिद्ध क्षेत्र ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

ज्ञान स्वभावी निर्मल जल का सागर उर में लहराता।
फिर भी भव सागर भंवरों में जन्म मरण के दुःख पाता।।
श्री सिद्धक्षेत्रों का दर्शन पूजन वन्दन सुखकारी।
जो स्वभाव का आश्रय लेता उसको है भव दुख हारी।।

ॐ ह्रीं श्री समस्त सिद्धक्षेत्रेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान स्वभावी शीतलतामय चंदन निज में भरा अपार।
फिर भी भव दावानल में जल बहु दुख पाया बारम्बार।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री समस्त सिद्धक्षेत्रेभ्यो संसार ताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान स्वभावी उज्ज्वल अक्षत पुंज हृदय में भरे अटूट।
फिर भी अविनाशी अखंड होकर भी पा न सका निज कूट।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री समस्त सिद्धक्षेत्रेभ्यो अक्षयपंद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान स्वभावी दिव्य सुगन्धित पुष्पों का निज में उपवन।
फिर भी भव माया में पड़ निष्काम न बन पाया भगवन्।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री समस्त सिद्धक्षेत्रेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान स्वभावी सरस मनोरम तृप्ति पूर्ण नैवेद्य स्वयम्।
फिर भी क्षुधारोग से व्याकुल तृष्णा हुई न तिलभर कम।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री समस्त सिद्धक्षेत्रेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान स्वभावी स्व पर प्रकाशी केवलरवि निज में अनुपम।
फिर भी अघमय अंधियारे में भटका मिटा न मिथ्यातम।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री समस्त सिद्धक्षेत्रेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान स्वभावी सहजानंदी विमल धूप से हूँ परिपूर्ण।
फिर भी प्रभो नहीं कर पाया अब तक अष्टकर्म अरिचूर्ण।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री समस्त सिद्धक्षेत्रेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान स्वभावी शिवफलधारी अविकारी हूँ सिद्ध स्वरूप।
फिर भी भव अटवी में अटका होकर मैं त्रिभुवन का भूप।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री समस्त सिद्धक्षेत्रेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान स्वभावी चिदानन्द चैतन्य अनन्त गुणों से पूर।
फिर भी पद अनर्घ ना पाया रह कर निज परिणति से दूर।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री समस्त सिद्धक्षेत्रेभ्यो अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

तीर्थंकर ऋषि आदि मुनि गये जहाँ निर्वाण।
उन क्षेत्रों को वंद्यकर करूँ आत्म कल्याण।।

जम्बूद्वीप धातकी खण्ड अरु पुष्करार्द्ध में क्षेत्र विदेह।
पंच भरत अरु पंच ऐरावत तीर्थ क्षेत्र बन्दूँ धर नेह।।
तीन लोक के सकल तीर्थ निर्वाण क्षेत्र सविनय वन्दूँ।
सिद्ध अनन्तानन्त विराजित सिद्धशिला नित प्रति वन्दूँ।।
अष्टापद कैलाशशिखर पर ऋषभदेव के पद वन्दूँ।
बाली महाबाली मुनि नागकुमार आदि मुनिवर वन्दूँ।।

श्री सम्मेदशिखर पर्वत पर बीस तीर्थंकर वन्दूँ।
अजितनाथ सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्म प्रभु को वन्दूँ।।
श्री सुपार्श्व चन्द्रप्रभ स्वामी, पुष्पदन्त, शीतल वन्दूँ।
प्रभु श्रेयान्स, विमल, अनन्त जिन, धर्म, शान्ति, कुन्थु वन्दूँ।।
श्री अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमिजिन, पार्श्वनाथ प्रभु को वन्दूँ।
मुनि अनन्त निर्वाण गये जो, उनके चरणाम्बुज वन्दूँ।।
चम्पापुर में वासुपूज्य तीर्थंकर को सादर वन्दूँ।
श्री मंदारगिरि से मुक्त हुए मुनियों के पद वन्दूँ।।
श्री गिरनार नेमि प्रभु शंबु प्रदुम्न अनिरुद्ध आदि वन्दूँ।
कोटि बहत्तर सात शतक मुनि मुक्त हुए उनको वन्दूँ।।
पावापुर में महावीर अन्तिम तीर्थंकर को वन्दूँ।
क्षेत्र गुणावा गौत्तम स्वामी के पद कमलों को वन्दूँ।।
तुन्गीगिरी श्री रामचन्द्र, हनुमान गवय, गवाक्ष वन्दूँ।
महानील, सुग्रीव, नील मुनि निन्यानवे कोटि वन्दूँ।।
शत्रुन्जय पर आठ कोटि मुनियों के चरणाम्बुज वन्दूँ।
भीम युधिष्ठिर अर्जुन पांडव और द्रविड़ राजा वन्दूँ।।
श्री गजपंथ शैल पर मैं बलभद्र सप्त के पद वन्दूँ।
आठ कोटि मुनि मुक्ति गये हैं भाव सहित उनको वन्दूँ।।
सोनागिरि पर नंग-अनंग कुमार आदि मुनि को वन्दूँ।
साड़े पाँच कोटि ऋषियों की यह निर्वाण भूमि वन्दूँ।।
रेवा तट पर रावण के सुत आदि मुनिश्वर को वन्दूँ।
साड़े पाँच कोटि मुनियों को सादर सविनय अभिनन्दूँ।।
पावागढ़ पर साड़े पाँच कोटि मुनियों के पद वन्दूँ।
रामचन्द्र सुत लव, मदनांकुश, लाड़देव के नृप वन्दूँ।।

तारंगागिरि साड़ेतीन कोटि मुनियों को मैं वन्दूँ।
श्री वरदत्तराय मुनिसागरदत्त आदि पद अभिनन्दूँ।।
श्री सिद्धवरकूट सनत, मघवा चक्री दोनों वन्दूँ।
कामदेव दस आदि ऋषिश्वर साड़ेतीन कोटि वन्दूँ।।
मुक्तागिरि से साड़े तीन कोटि मुनि मोक्ष गये वन्दूँ।
पावागिरि पर सुवर्णभद्र आदिक चारों मुनि को वन्दूँ।।
कोटि शिला से एक कोटि मुनि सिद्ध हुए उनको वन्दूँ।
देश कलिंग यशोधर नृप के पाँच शतक सुत मुनि वन्दूँ।।
श्री चूलगिरि इन्द्रजीत अरु कुम्भकरण ऋषिवर वन्दूँ।
कुन्थलगिरि पर श्री देशभूषण कुलभूषण मुनि वन्दूँ।।
रेशंदीगिरि वरदत्तादि पंच ऋषियों को मैं वन्दूँ।
द्रोणागिरि पर गुरुदत्तादिक मुनियों को सविनय वन्दूँ।।
पंच पहाड़ी राजगृही से मुक्त हुए मुनिवर वन्दूँ।
चरम केवली जम्बूस्वामी मथुरा मुक्ति भूमि वन्दूँ।।
पटना से श्री सेठ सुदर्शन मुक्त हुए उनको वन्दूँ।
कुण्डलपुर से मोक्ष गये श्रीधर स्वामी के पद वन्दूँ।।
पोदनपुर से सिद्ध हुए श्री बाहुबली स्वामी वन्दूँ।
भरत आदि चक्रेश्वर मुनियों की निर्वाण धरा वन्दूँ।।
श्रवण, द्रोण, वैभार, बलाहक, विंध्य, सह्य, पर्वत वन्दूँ।
प्रवर कुण्डली, विपुलाचल, हिमवान क्षेत्रों को वन्दूँ।।
तीर्थंकर के सभी गणधरों की निर्वाण भूमि वन्दूँ।
वृषभसेन आदिक गौत्तम, चौदह सौ उनसठ ऋषि वन्दूँ।।
कामदेव बलभद्र चक्री जो मुक्त हुए उनको वन्दूँ।
जल थल नभ से सिद्ध हुए उपसर्ग केवली सब वन्दूँ।।

ज्ञात और अज्ञात सभी निर्वाण भूमियों को वन्दूँ।
भूत भविष्यत् वर्तमान की सिद्ध भूमियों को वन्दूँ।।
मन वच काय त्रियोग पूर्वक सर्व सिद्ध भगवन वन्दूँ।
सिद्ध स्वपद की प्राप्ति हेतु मैं पाँचों परमेष्ठी वन्दूँ।।
सिद्ध क्षेत्रों के दर्शन कर निज स्वरूप दर्शन करलूँ।
शुद्ध चेतना सिंधु नीर पी मोक्ष लक्ष्मी को वर लूँ।।
सब तीर्थों की यात्रा करके आत्मतीर्थ की ओर चलूँ।
अजर-अमर अविकल अविनाशी सिद्ध स्वपद की ओर ढलूँ।।
भाव शुभाशुभ का अभाव कर शुद्धआत्म का ध्यान करूँ।
राग-द्वेष का सर्वनाश कर मंगलमय निर्वाण वरूँ।।

ॐ ह्रीं श्री समस्त सिद्धक्षेत्रेभ्यो अनर्घ पद प्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री निर्वाण क्षेत्र का पूजन वंदन जो जन करते हैं।
समकित का पावन वैभव पा मुक्ति वधू को वरते हैं।।

इत्याशीर्वादः

जो जीव पुण्य और पुण्य के फल के गीत गाता है वह वीतराग का भक्त नहीं हो सकता। पुण्य और पुण्य के फल में लाभ बुद्धि वाला अर्थात् स्वभाव की लाभ बुद्धि के अभाव वाला वस्तुतः भगवान के गीत गा ही नहीं सकता।

–पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी
जिन स्तवन प्रवचन

श्री तीर्थराज सम्मेदशिखर निर्वाणक्षेत्र पूजन

तीर्थराज सम्मेदाचल जय शाश्वत तीर्थ क्षेत्र जय जय।
मुनि अनंत निर्वाण गये हैं पाया सिद्ध स्वपद शिवमय।।
अजितनाथ, संभव, अभिनन्दन, सुमति, पद्म प्रभु मंगलमय।
श्री सुपार्श्व चन्दा प्रभु स्वामी पुष्पदन्त शीतल गुणमय।।
जय श्रेयान्स विमल, अनंत प्रभु धर्म, शान्ति जिन कुन्थसदय।
अरह, मल्लि, मुनिसुव्रत स्वामी नमिजिन, पार्श्वनाथ जय जय।।
बीस जिनेश्वर मोक्ष पधारे इस पर्वत से जय जय जय।
महिमा अपरम्पार विश्व में तीर्थराज की जय जय जय।।

ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

अगणित सागर पी डाले पर प्यास न कभी बुझा पाया।
अनुपम सुखमय निर्मल शीतल समता जल पीने आया।।
तीर्थराज सम्मेदशिखर की पूजन कर उर में हर्षाया।
बीस तीर्थंकर की यह निर्वाण भूमि लख सुख पाया।।

ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

पर भावों के संतापों में उलझ उलझ अति दुःख पाया।
ज्ञानानन्दी शुद्ध स्वभावी निज चंदन लेने आया।।तीर्थराज।।

ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो संसार ताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

निज चैतन्यरूप को भूला पर ममत्व में भरमाया।
अक्षय चेतन पद पाने को चरण शरण में मैं आया।।तीर्थराज।।

ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पर द्रव्यों से राग-हटाने का पुरुषार्थ न कर पाया।
शील स्वभाव शान्तपाने को काम नाश करने आया।।तीर्थराज।।

ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

तीन लोक का अन्न प्राप्तकर भूख न कभी मिटा पाया।
क्षुधाव्याधि का रागनशाने निज स्वभाव पाने आया।।तीर्थराज।।

ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोह तिमिर के कारण अब तक सम्यक्ज्ञान नहीं पाया।
आत्मदीप की ज्योति जगाने भेद ज्ञान करने आया।।तीर्थराज।।

ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्मध्यान बिन भव की भीषण ज्वाला में जल दुःख पाया।
अष्टकर्म सम्पूर्ण जलाने ध्यान अग्नि पाने आया।।तीर्थराज।।

ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पुण्य फलों में तीव्र राग कर सदा पाप ही उपजाया।
पाप-पुण्य से रहित शुद्ध परमातम पद पाने आया।।तीर्थराज।।

ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

है अनादि भव रोग न इसकी औषधि अब तक कर पाया।
निज अनर्घ पद पाने का अब तो अपूर्व अवसर आया।।तीर्थराज।।

ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

सम्मेदाचल शीश से तीर्थंकर मुनिराज।
सिद्ध हुए सम श्रेणी में ऊपर रहे विराज।।
प्रभु चरणाम्बुज पूज कर धन्य हुआ मैं आज।
भाव सहित वन्दन करूँ निज शिव सुख के काज।।

जय जय शाश्वत सम्मेदाचल तीर्थ विश्व में श्रेष्ठ प्रधान।
भूत भविष्यत् वर्तमान के तीर्थंकर पाते निर्वाण।।
परम तपस्या भूमि सुपावन है अनन्त मुनिराजों की।
सुपवित्र निर्वाण धरा है यह महान जिनराजों की।।
लक्ष लक्ष वृक्षों की हरियाली से पर्वत शोभित हैं।
वातावरण शान्तमय सुन्दर लखकर यह जग मोहित है।।

शीतल अरु गन्धर्व सलिल निर्झर जल धारायें न्यारी।
भाँति-भाँति के पक्षीगण करते हैं कलरव मनहारी।।
पर्वत पारसनाथ मनोरम यह सम्मेदशिखर अनुपम।
भाव सहित जो बन्दन करते उनका क्षय होता भ्रमतम।।
बीस टोंक पर बीस तीर्थंकर के चरण चिन्ह अभिराम।
शेष टोंक पर चार जिनेश्वर श्री मुनियों के चरण ललाम।।
प्रथम टोंक है कुन्थनाथ की प्रातः रवि बन्दन करता।
अन्तिम पार्श्वनाथ प्रभु की है संध्या सूर्य नमन करता।।
कूट सिद्धवर अजितनाथ का धवलकूट सुमतिजिनका।
अभिनन्दन आनन्दकूट जय अविचलकूट सुमतिजिन का।।
मोहनकूट पद्मप्रभु का है प्रभु सुपार्श्व का प्रभासकूट।
ललितकूट चंदाप्रभु स्वामी पुष्पदन्त जिन सुप्रभुकूट।।
विद्युतकूट श्री शीतलजिन श्रेयान्स का संकुलकूट।
श्री सुवीरकुलकूट विमलप्रभुनाथ अनन्त स्वयंभूकूट।।
जय प्रभु धर्म सुदत्तकूट जय शांति जिनेश कुन्दप्रभुकूट।
कुटज्ञानधर कुन्थनाथ का अरहनाथ का नाटक कूट।।
संवरकूट मल्लि जिनवर का, निर्जरकूट मुनि सुव्रतनाथ।
कूट मित्रधर श्री नमि जिनका स्वर्णभद्र प्रभु पारसनाथ।।
सर्व सिद्धवर कूट आदि प्रभु वासुपूज्य मन्दारगिरि।
उर्जयन्त है कूट नेमि प्रभु सन्मति का महावीर श्री।।
चौबीसों तीर्थंकर प्रभु के गणधर स्वामी सिद्ध भगवान।
गणधर कूट भाव से पूजूँ मैं भी पाऊँ पद निर्वाण।।
बीसकूट से बीस तीर्थंकर ने पाया पद मोक्ष महान।
इसी क्षेत्र से तो असंख्य मुनियों ने पाया है निर्वाण।।

भव्य गीत सम्यक्दर्शन का सहज सुनाई देता है।
रत्नत्रय की महिमा का फल यहाँ दिखाई देता है।।
सिद्ध क्षेत्र है तीर्थ क्षेत्र हैं पुण्य क्षेत्र है अति पावन।
भव्य दिव्य पर्वतमालायें ऊँची नीची मन भावन।।
मधुवन में मन्दिर अनेक हैं भव्य विशाल मनोहारी।
वृषभादिक चौबीस जिनेश्वर की प्रतिमाएँ सुखकारी।।
नन्दीश्वर की सुन्दर रचना श्री बाहुबली के दर्शन।
ऊँचा मानस्तम्भ सुशोभित पार्श्वनाथ का समवसरण।।
पुण्योदय से इस पर्वत की सफल यात्रा हो जाये।
नरक और पशुगति का निश्चित बंध नहीं होने पाये।।
मैं सम्यक्त्व ग्रहण कर प्रभु कब तेरह विधि चारित्र धरूँ।
पंच महाव्रत धार साधु बन इस भू पर निर्भय विचरूँ।।
सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्र तप आराधना चार चितधार।
शुद्ध आत्मा अनुभव से नित प्रति हो स्वरूप साधना अपार।।
नित द्वादश भावना चिन्तवन करके दृढ़ वैराग्य धरूँ।
भेद ज्ञान कर पर परणति तज निज परणति में रमण करूँ।।
इसी क्षेत्र से महामोक्ष फल सिद्ध स्वपद को मैं पाऊँ।
अष्टकर्म को नष्ट करूँ मैं परम शुद्ध प्रभु बन जाऊँ।।
मन वच काया शुद्धि पूर्वक भाव सहित की है पूजन।
ये संसार भ्रमण मिट जाए हे प्रभु! पाऊँ मुक्ति गगन।।

ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री सम्मेदशिखर का दर्शन-पूजन जो जन करते हैं।
मुक्तिकन्त भगवंत सिद्ध बन भव सागर से तरते हैं।।

इत्याशीर्वादः

दशलक्षणधर्म पूजन - 1

स्थापना (संस्कृत)

उत्तमक्षान्तिकाद्यन्त-ब्रह्मचर्य-सुलक्षणम्।
स्थापय दशधा धर्ममुत्तमं जिनभाषितम्।।

(अडिल्ल) स्थापना (हिन्दी)

उत्तम क्षमा मार्दव आर्जव भाव हैं,
सत्य शौच संयम तप त्याग उपाव हैं।
आकिंचन ब्रह्मचर्य धरम दश सार हैं,
चहुँगति-दुखतैं काढ़ि मुकति करतार हैं।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

(सोरठा)

हेमाचल की धार, मुनि-चित सम शीतल सुरभि।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्येति दशलक्षणधर्माय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन केशर गार, होय सुवास दशों दिशा।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अमल अखण्डित सार, तन्दुल चन्द्र समान शुभ।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

फूल अनेक प्रकार, महकें ऊरध-लाकलों।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज विविध निहार, उत्तम षट्-रस-संजुगत।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बाति कपूर सुधार, दीपक-ज्योति सुहावनी।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अगर धूप विस्तार, फैले सर्व सुगन्धता।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल की जाति अपार, घ्रान-नयन-मन-मोहने।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

आठों दरब संवार, 'द्यानत' अधिक उछाहसौं।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अंगपूजा

(सोरठा)

पीडैं दुष्ट अनेक, बाँध मार बहुविधि करैं।
धरिये छिमा विवेक, कोप न कीजै पीतमा।।

उत्तम छिमा गहो रे भाई, इह-भव जस पर भव सुखदाई।
गाली सुनि मन खेद न आनो, गुन को औगुन कहै अयानो।।
कहि है अयानो वस्तु छीनै, बाँध मार बहुविधि करै।
घर तैं निकारै तन विदारै, बैर जो न तहाँ धरै।।

ते करम पूरब किये खोटे सहै क्यों नहिं जीयरा।
अति क्रोध अग्नि बुझाय प्रानी, साम्य-जल ले सीयरा।।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मान महाविषरूप, करहि नीच-गति जगत में।
कोमल सुधा अनूप, सुख पावै प्रानी सदा।।
उत्तम मार्दव गुन मन माना, मान करन कौ कौन ठिकाना।
बस्यो निगोद माँहि तैं आया, दमरी रूंकन भाग बिकाया।।
रूंकन बिकाया भाग वशतैं, देव इक-इन्द्री भया।
उत्तम मुआ चाण्डाल हूवा, भूप कीड़ों में गया।।
जीतव्य जोवन धन गुमान, कहा करैं जल-बुदबुदा।
करि विनय बहु-गुन बड़े जन की ज्ञान का पावै उदा।।

ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कपट न कीजै कोय, चोरन के पुर ना बसै।
सरल सुभावी होय, ताके घर बहु सम्पदा।।
उत्तम आर्जव रीति बखानी, रंचक दगा बहुत दुखदानी।
मन में होय सो वचन उचरिये, वचन होय सोतन सौं करिये।।
करिये सरल तिहुँ जोग अपने देख निरमल आरसी।
मुख करै जैसा लखै तैसा, कपट-प्रीति अँगारसी।।
नहिं लहै लछमी अधिक छल करि, करम-बन्ध विशेषता।
भय त्यागि दूध बिलाव पीवै, आपदा नहीं देखता।।

ॐ ह्रीं उत्तमआर्जवधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कठिन वचन मति बोल, पर-निन्दा अरु झूठ तज।
साँच जवाहर खोल, सतवादी जग में सुखी।।

उत्तम सत्य-बरत पालीजै, पर-विश्वासघात नहिं कीजै।
साँचे-झूठे मानुष देखो, आपन पूत स्वपास न पेखो।।
पेखो तिहायत पुरुष साँचे को दरब सब दीजिये।
मुनिराज-श्रावक की प्रतिष्ठा साँच गुण लख लीजिये।।
ऊँचे सिंहासन बैठि वसु नृप, धरम का भूपति भया।
वच झूठ सेती नरक पहुँचा, सुरग में नारद गया।।

ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

धरि हिरदै सन्तोष, करहु तपस्या देह सों।
शौच सदा निर्दोष, धरम बड़ौ संसार मैं।।

उत्तम शौच सर्व जग जाना, लोभ पाप को बाप बखाना।
आशा-पास महा दुःखदानी, सुख पावै सन्तोषी प्रानी।।
प्रानी सदा सुचि शील जप तप, ज्ञान ध्यान प्रभावतैं।
नित गंग जमुन समुद्र न्हाये, अशुचि-दोष स्वभावतैं।।
ऊपर अमल मल भर्‌यो भीतर, कौन विधि घट शुचि कहै।
बहु देह मैली सुगुन-थैली, शौच-गुन साधु लहै।।

ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

काय छहों प्रतिपाल, पंचेन्द्रिय मन वश करो।
संजम-रतन संभाल, विषय-चोर बहु फिरत हैं।।

उत्तम संजम गहु मन मेरे, भव-भव के भाजैं अघ तेरे।
सुरग-नरक-पशुगति में नाहीं, आलस-हरन करनसुख ठाहीं।।
ठाहीं पृथी जल आग मारुत, रूख त्रस करूना धरो।
सपरसन रसना घ्रान नैना, कान मन सब वश करो।।
जिस बिना नहिं जिनराज सीझे, तू रुल्यो जग-कीच में।
इक घरी मत विसरो करो नित, आव जम-मुख बीच में।।

ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तप चाहैं सुरराय, करम-शिखर को वज्र है।
द्वादशविधि सुखदाय, क्यों न करै निज सकति सम।।
उत्तम तप सब माँहि बखाना, करम-शैल को वज्र-समाना।
बस्यो अनादि निगोद मँझारा, भू विकलत्रयपशुतन धारा।।
धारा मनुष तन महादुर्लभ, सुकुल आयु निरोगता।
श्री जैनवानी तत्वज्ञानी, भई विषय-पयोगता।।
अति महा दुरलभ त्याग विषय, कषाय जो तप आदरैं।
नर-भव अनुपम कनक घर पर, मणिमयी कलसा धरैं।।

ॐ ह्रीं उत्तमतपोधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दान चार परकार, चार संघ को दीजिए।
धन बिजुली उनहार, नर-भव लाहो लीजिए।।
उत्तम त्याग कह्यो जग सारा, औषध शास्त्र अभय अहारा।
निहचैं राग-द्वेष निरवारै, ज्ञाता दोनों दान सँभारै।।
दोनौं सँभारै कूप-जल सम, दरब घर में परिनया।
निज हाथ दीजे साथ लीजे, खाय खोया बह गया।।
धनि साधु शास्त्र अभय दिवैया, त्याग राग विरोध को।
बिन दान श्रावक साधु दोनों, लहैं नाहीं बोध को।।

ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परिग्रह चौबीस भेद, त्याग करैं मुनिराजजी।
तिसना भाव उछेद, घटती जान घटाईए।।
उत्तम आकिंचन गूण जानो, परिग्रह-चिन्ता दुख ही मानो।
फाँस तनक-सी तन में सालै, चाह लंगोटी की दुख भालैं।।
भालैं न समता सुख कभी नर, बिना मुनि मुद्रा धरै।
धनि नगन पर तन-नगन ठाड़े, सुर-असुर पायनि परैं।।

घर माँहि तिसना जो घटावै, रुचि नहिं संसार सौं।
बहु धन बुरा हू भला कहिये, लीन पर-उपगार सौं।।

ॐ ह्रीं उत्तमआकिंचन्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शील-बाढ़ नौ राख, ब्रह्म-भाव अन्तर लखो।
करि दोनों अभिलाख, करहु सफल नर-भव सदा।।

उत्तम ब्रह्मचर्य मन आनौ, माता बहिन सुता पहिचानौ।
सहैं बान-वरषा बहु सूरे, टिकै न नैन-बान लखि कूरे।।
कूरे तिया के अशुचि तन में, काम-रोगी रति करैं।
बहु मृतक सड़हिं मसान माहिं, काग ज्यों चोंचे भरैं।।
संसार में विष बेल नारी तजि गये जोगीश्वरा।
'द्यानत' धरम दश पैड़ि चढ़ि कैं, शिव महल में पग धरा।।

ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय जयमाला

(दोहा)

दश लच्छन वन्दौं सदा, मनवांछित फलदाय।
कहों आरती भारती, हम पर होहु सहाय।।

(चौपाई)

उत्तम छिमा जहाँ मन होई, अन्तर-बाहिर शत्रु न कोई।
उत्तम मार्दव विनय प्रकासै, नानाभेद ज्ञान सब भासै।।
उत्तम आर्जव कपट मिटावै, दुरगति त्यागि सुगति उपजावै।
उत्तम सत्य वचन मुख बोलै, सौ प्रानी संसार न डोलै।।
उत्तम शौच लोभ परिहारी, सन्तोषी गुण रतन भण्डारी।
उत्तम संयम पालै ज्ञाता, नर-भव सफल करै ले साता।।

उत्तम तप निरवाँछित पालै, सो नर करम-शत्रु को टालै।
उत्तम त्याग करै जो कोई, भोगभूमि-सुर-शिवसुख होई।।
उत्तम आकिंचन व्रत धारै, परम समाधि दशा विसतारै।
उत्तम ब्रह्मचर्य मन लावै, नर-सुर सहित मुकति-फल पावै।।

(दोहा)

करै करम की निरजरा, भव पींजरा विनाशि।
अजर अमर पद कों लहैं, 'द्यानत' सुख की राशि।।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्तयागाकिंचन्यब्रह्मचर्येति दशलक्षणधर्माय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

वीतरागी भगवान की प्रतिष्ठा का विलल्प तो ज्ञानी–अज्ञानी दोनों को आता है; परन्तु मैं बाहर की क्रिया करता हूँ –ऐसी विपरीत मान्यता वाला अज्ञानी जीव उस शुभ भाव के समय मिथ्यात्व सहित पुण्य बांधता है और धर्मी –ज्ञानी जीव को उस शुभ भाव के समय आत्मभान होने से उसकी श्रद्धा के बल से शुद्धात्मा की ओर जुकाव होने से धर्म होता है। इस प्रकार धर्म का आधार तो आत्मा ही है, जबकि लोग बाह्य क्रिया के आधार से धर्म मानकर भटक रहे हैं।

–पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी
पंच कल्याणक प्रवचन

श्री दशलक्षणधर्म पूजन - 2

उत्तम क्षमा आत्मा का गुण उत्तम मार्दव विनय स्वरूप।
उत्तम आर्जव माया नाशक उत्तम शौच लोभहर भूप।।
उत्तम सत्य स्वभाव ज्ञानमय उत्तम संयम संवर रूप।
उत्तम तप निर्जरा कर्म की उत्तम त्याग स्वरूप अनूप।।
उत्तम आकिंचन विरागमय उत्तम ब्रह्मचर्य चिद्रूप।
धन्य धन्य दशधर्म परम पद दाता सुखमय मोक्ष स्वरूप।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य शौच, संयम, तप त्याग, आकिंचन, ब्रह्मचर्य दशलक्षणधर्म ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य शौच, संयम, तप त्याग, आकिंचन, ब्रह्मचर्य दशलक्षणधर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य शौच, संयम, तप त्याग, आकिंचन, ब्रह्मचर्य दशलक्षणधर्म ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

जल स्वभाव शीतल निर्मल पी कर भी प्यास न बुझ पाई।
जन्म मरण का चक्र मिटाने आज धर्म की सुधि आई।।
उत्तम क्षमा मार्दव आर्जव शौच सत्य संयम तप त्याग।
आकिंचन ब्रह्मचर्य धर्म के दशलक्षण से हो अनुराग।।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशधर्मांगाय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

दाह निकंदन चन्दन पाकर भी तो दाह न मिट पाई।
राग आग की ज्वाला बुझाने आज धर्म की सुधि आई।।उत्तम।।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशधर्मांगाय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ्र अखण्डित तन्दुल पाकर भी निज रुचि न सुहा पाई।
अजर अमर अक्षय पद पाने आज धर्म की सुधि आई।।उत्तम।।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशधर्मांगाय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

अगणित पुष्प सुवासित पाकर काम व्याधि न मिट पाई।
अब कन्दर्प दर्प हरने को आज धर्म की सुधि आई।।उत्तम।।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशधर्मांगाय कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ की रुचि के कारण अब तक निज की तृप्ति न हो पाई।
सहज तृप्त चेतन पद पाने आज धर्म की सुधि आई।।उत्तम।।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशधर्मांगाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मिथ्याभ्रम की चकाचौंध में दृष्टि शुद्ध न हो पाई।
मोह तिमिर का अन्त कराने आज धर्म की सुधि आई।।उत्तम।।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशधर्मांगाय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

आर्त रौद्र ध्यानों में रहकर धर्म ध्यान छवि ना भाई।
अष्टकर्म विध्वंस कराने आज धर्म की सुधि आई।।उत्तम।।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशधर्मांगाय अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

राग हेय परिणति फल पाकर निज परिणति ना मिल पाई।
फल निर्वाण प्राप्त करने को आज धर्म की सुधि आई।।उत्तम।।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशधर्मांगाय महा मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

चौरासी के क्रूर चक्र में उलझा शान्ति न मिल पाई।
निज अमरत्व प्राप्त करने को आज धर्म की सुधि आई।।उत्तम।।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशधर्मांगाय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अंगपूजा

उत्तम क्षमा धर्म है सुख का सागर तीन लोक में सार।
जन्म मरण दुख का अभाव कर शीघ्र नाश करता संसार।।
क्रोध कषाय विनाशक दुर्गति नाशक मुनियों द्वारा पूज्य।
व्रत संयम को सफल बनाता सुगति प्रदाता है अति पूज्य।।
जहाँ क्षमा है वहीं धर्म है स्वपर दया का मूल महान।
जय जय उत्तम क्षमा धर्म की जो है जग में श्रेष्ठ प्रधान।।

ॐ ह्रीं उत्तम क्षमा धर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तम मार्दव धर्म ज्ञानमय वसु मद रहित परम सुखकार।
मान कषाय नष्ट करता है विनय गुणों का है भण्डार।।
विनय बिना तत्वों का हो सकता न कभी सम्यक् श्रद्धान।
दर्शन ज्ञान चारित्र विनय तप बिना न होता सम्यक्ज्ञान।।
जहाँ मार्दव वहीं धर्म है वहीं मोक्ष नगरी का द्वार।
उत्तम मार्दव धर्म हमारा विनय भाव की जय जयकार।।

ॐ ह्रीं उत्तमार्दव धर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तम आर्जव धर्म कुटिलता से विरहित ऋजुता से पूर्ण।
निज आतम का परम मित्र है करता माया शल्य विचूर्ण।।
लेश मात्र भी मायाचारी कुगति प्रदायक अति दुख कार।
सरल स्वभाव चेतन गुण धारी टंकोत्कीर्ण महा सुख कार।।
शिवमय शाश्वत मोक्ष प्रदाता मंगलमय अनमोल परम।
उत्तम आर्जव धर्म आत्म का अभय रूप निश्चल अनुपम।।

ॐ ह्रीं उत्तम आर्जव धर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तम शौच धर्म सुखकारी मन वच काया करता शुद्ध।
लोभ कषाय नाश कर देता समकित होता परम विशुद्ध।।
ऋद्धि-सिद्धि का लोभ न किंचित इसके कारण हो पाता।
जो सन्तोषामृत पीता है वही आत्मा को ध्याता।।
शौच धर्म पावन मंगलमय से हो जाता है निर्वाण।
उत्तम शौच धर्म ही जग में करता है सबका कल्याण।।

ॐ ह्रीं उत्तम शौच धर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तम सत्य धर्म हितकारी निज स्वभाव शीतल पावन।
वचन गुप्ति के धारी मुनिवर 'ही पाते हैं मुक्ति सदन।।
सब धर्मों में यह प्रधान है भव तम नाशक सूर्य समान।
सुगति प्रदायक भव सागर से पार उतरने को जलयान।।

सत्य धर्म से अणुव्रत और महाव्रत होते हैं निर्दोष।
जय जय उत्तम सत्य धर्म त्रिभुवन में गूँज रहा जयघोष।।
ॐ ह्रीं उत्तम सत्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तम संयम तीन लोक में दुर्लभ, सहज मनुज गति में।
दो क्षण को पाने की क्षमता, देवों में न सुरपति में।।
पंचेन्द्रिय मन वश में करना, त्रस थावर रक्षा करना।
अनुकम्पा आस्तिक्य प्रशम संवेगधार मुनिपद धरना।।
धन्य धन्य संयम की महिमा तीर्थंकर तक अपनाते।
उत्तम संयम धर्म जयति जय हम पूजन कर हर्षाते।।
ॐ ह्रीं उत्तम संयम धर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तम तप है धर्म परम पावन स्वरूप का मनन जहाँ।
यही सु तप है अष्ट कर्म की होती है निर्जरा यहाँ।।
पंचेन्द्रिय का दमन सर्व इच्छाओं का निरोध करना।
सम्यक् तप धर निज स्वभाव से भाव शुभाशुभ को हरना।।
धन्य धन्य बाह्यन्तर द्वादश तप विध धन्य धन्य मुनिराज।
उत्तम तप जो धारण करते हो जाते हैं श्री जिनराज।।
ॐ ह्रीं उत्तमतपधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तम त्याग धर्म है अनुपम पर पदार्थ का निश्चय त्याग।
अभय शास्त्र औषधि अहार है चारों दान सरल शुभ राग।।
सरल भाव से प्रेम पूर्वक करते हैं जो चारों दान।
एक दिवस गृह त्याग साधु हो करते हैं निज का कल्याण।।
अहो दान की अद्भुत महिमा तीर्थंकर प्रभु लेते हैं आहार।
उत्तम त्याग धर्म की जय जय जो है स्वर्ग मोक्ष दातार।।
ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तम आकिंचन है धर्म स्वरूप ममत्व भाव से दूर।
चौदह अंतरंग दश बाहर के हैं जहाँ परिग्रह चूर।।
तृष्णाओं को जीता पर द्रव्यों से राग नहीं किंचित।
सर्व परिग्रह त्याग मुनिश्वर विचरें वन में आत्माश्रित।।
परम ज्ञानमय परम ध्यानमय सिद्ध स्वपद का दाता है।
उत्तम आकिंचन व्रत जग में श्रेष्ठ धर्म विख्याता है ।।

ॐ ह्रीं उत्तम आकिंचनधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तम ब्रह्मचर्य दुर्धर व्रत है सर्वोत्कृष्ट जग में।
काम वासना नष्ट किये बिन नहीं सफलता शिवमग में।।
विषय भोग अभिलाषा तज जो आत्मध्यान में रम जाते।
शील स्वभाव सजा दुर्मतिहर काम शत्रु पर जय पाते।।
परमशील की पवित्र महिमा ऋषि गणधर वर्णन करते।
उत्तम ब्रह्मचर्य के धारी ही भव सागर से तिरते।।

ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

उत्तम क्षमा धर्म को धारूँ क्रोध कषाय विनाश करूँ।
पर पदार्थ को इष्ट अनिष्ट न मानूँ आत्म प्रकाश करूँ।।
उत्तम मार्दव धर्म ग्रहण कर विनय स्वरूप विकास करूँ।
पर कर्त्तत्य मान्यता त्यागूँ अहंकार का नाश करूँ।।
उत्तम आर्जव धर्म धार माया कषाय संहार करूँ।
कपट भाव से रहित शुद्ध आतम का सदा विचार करूँ।।
उत्तम शौच धर्म धारण कर लोभ कषाय विनष्ट करूँ।
शुचिमय चेतन से अशुद्ध ये चार घातिया कर्म हरूँ।।

उत्तम सत्य धर्म से निर्मल निज स्वरूप को सत्य करूँ।
हितमित प्रिय सच बोलूँ नित निज परिणति के संग नृत्य करूँ।।
उत्तम संयम धर्म सभी जीवों के प्रति करुणा धारूँ।
समितिगुप्ति व्रत पालन करके निज आतम गुण विस्तारूँ।।
उत्तम तप धर शुक्ल ध्यान से आठों कर्मों को जारूँ।
अन्तरंग बहिरंग तपों से निज आतम को उजियारूँ।।
उत्तम त्याग पाँचों पापों का सर्व देश में त्याग करूँ।
योग्य पात्र को योग्य दान दें उर में सहज विराग भरूँ।।
उत्तम आकिंचन रागादिक भावों का परिहार करूँ।
सर्व परिग्रह से विमुक्ति हो मुनिपद अंगिकार करूँ।।
उत्तम ब्रह्मचर्य उर धारूँ आत्म ब्रह्म में लीन रहूँ।
कामबाण विध्वंस करूँ मैं शील स्वभावाधीन रहूँ।।
दशलक्षणव्रत की महिमा का निज प्रति जय जयगान करूँ।
दश धर्मों का पालन करके महामोक्ष निर्वाण वरूँ।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य शौच, संयम, तप त्याग, आकिंचन, ब्रह्मचर्य दशलधर्मेभ्यो पूर्णार्घ्यं नि. स्वाहा।

श्री दशलक्षण धर्म की महिमा अगम अपार।
जो भी इसको धारते होते भव से पार।।

इत्याशीर्वादः

अरे जीव! इस तीव्र संक्लेश से भरे संसार में भ्रमण करते हुए सम्यग्दर्शन की प्राप्ति अति दुर्लभ है। जिसने सम्यग्दर्शन प्रगट किया, उसने आत्मा में मोक्ष का वृक्ष बोया है; इसलिए सर्व उद्यम से सम्यग्दर्शन का सेवन कर।

–पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी

रत्नत्रय पूजन - 1

चहुँगति-फनि-विष-हरन-मणि, दुःख-पावक-जल-धार।
शिव-सुख-सुधा-सरोवरी, सम्यक्-त्रयी निहार।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयधर्म ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयधर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयधर्म ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(अष्टक सोरठा)

क्षीरोदधि उनहार, उज्ज्वल जल अति सोहनो।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन केसर गारि, परिमल-महा-सुगन्ध-मय।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय भवताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

तन्दुल अमल चितार, वासमति-सुखदास के।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

महकें फूल अपार, अलि गुंजैं ज्यों थुति करैं।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

लाडू बहु विस्तार, चीकन मिष्ट सुगन्ध युक्त।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप-रतनमय सार, जोत प्रकाशै जगत में।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप सुवास विथार, चन्दन अगर कपूर की।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल शोभा अधिकार, लोंग छुआरे जायफल।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

आठ दरब निरधार, उत्तम सो उत्तम लिये।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्दरशन ज्ञान, व्रत शिव-मग-तीनों मयी।
पार उतारन यान, 'द्यानत' पूजों व्रत सहित।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय अनर्घ्यपद प्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यग्दर्शन पूजन

(दोहा)

सिद्ध अष्ट-गुनमय प्रगट, मुक्त-जीव-सोपान।
ज्ञान चरित जिहँ बिन अफल,सम्यकदर्श प्रधान।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांग-सम्यकग्दर्शन ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री अष्टांग-सम्यकग्दर्शन ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री अष्टांग-सम्यकग्दर्शन ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

(सोरठा)

नीर सुगन्ध अपार, तृषा हरै मल छय करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांग-सम्यग्दर्शनाय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल केशर घनसार, ताप हरै सीतल करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांग-सम्यग्दर्शनाय भवताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांग-सम्यग्दर्शनाय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांग-सम्यग्दर्शनाय कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज विविध प्रकार, क्षुधा हरै थिरता करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांग-सम्यग्दर्शनाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप-ज्योति तम-हार, घट-पट परकाशै महा।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांग-सम्यग्दर्शनाय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप घ्रान-सुखकार, रोग विघन जड़ता हरै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांग-सम्यग्दर्शनाय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल आदि विथार, निहचैं सुर-शिव-फल करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांग-सम्यग्दर्शनाय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गन्धाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांग-सम्यग्दर्शनाय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

आप आप निहचै लखैं, तत्त्व-प्रीति व्योहार।
रहित दोष पच्चीस हैं, सहित अष्ट गुन सार।।

(चौपाई मिश्रित गीता)

सम्यक् दरशन-रतन गहिजे, जिन वच में सन्देह न कीजे।
इह-भव विभव-चाह दुःखदानी, पर-भव भोग चहै मत प्रानी।।
प्रानी गिलान न करि अशुचि लखि, धरम गुरु प्रभु परखिये।
पर-दोष ढकिये धरम डिगते, को सुथिर कर हरखिये।।
चहुँ संघको वात्सल्य कीजै, धरम की परभावना।
गुन आठसों गुन आठ लहिकैं, इहाँ फेर न आवना।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांगसहित पंचविंशतिदोषरहितसम्यग्दर्शनाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यग्ज्ञान पूजन

(दोहा)

पंच भेद जाके प्रगट, ज्ञेय-प्रकाशनभान।
मोह-तपन-हर-चन्द्रमा, सोई सम्यक्ज्ञान।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टविध-सम्यग्ज्ञान ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री अष्टविध-सम्यग्ज्ञान ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री अष्टविध-सम्यग्ज्ञान ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

(सोरठा)

नीर सुगन्ध अपार, तृषा हरै मल छय करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल केशर घनसार, ताप हरै शीतल करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय भवताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज विविध प्रकार, क्षुधा हरै थिरता करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप-ज्योति तम-हार, घट-पट परकाशै महा।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप घ्रान-सुखकार, रोग विघन जड़ता हरै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल आदि विथार, निहचैं सुर-शिव-फल करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गन्धाक्षत चारु, दीप धूप फल-फूल चरु।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

आप आप जानैं नियत, ग्रन्थ-पठन व्यौहार।
संशय-विभ्रम मोह बिन, अष्ट अंग गुनकार।।

सम्यक्ज्ञान-रतन मन भाया, आगम तीजा नैन बताया।
अच्छर शुद्ध अर्थ पहिचानो, अच्छर अरथ उभय संग जानो।।

जानो सुकाल पठन जिनागम, नाम गुरु ना छिपाइए।
तप रीति गहि बहुमान देकैं, विनय-गुन चित लाइए।।
ये आठ भेद करम उछेदक ज्ञान-दर्पन देखना।
इस ज्ञान ही सों भरत सीझा, और सब पठ पेखना।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपद प्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्चारित्र पूजन

(दोहा)

विषय-रोग औषध महा, दव-कषाय-जल-धार।
तीर्थंकर जाको धरै, सम्यक्चारित सार।।

ॐ ह्रीं त्रयोदशविध-सम्यक्चारित्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं त्रयोदशविध-सम्यक्चारित्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं त्रयोदशविध-सम्यक्चारित्र ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

(सोरठा)

नीर सुगन्ध अपार, तृषा हरै मल छय करै।
सम्यक्चारित सार, तेरह विधि पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल केशर घनसार, ताप हरै शीतल करै।
सम्यक्चारित सार, तेरह विधि पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय भवताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै।
सम्यक्चारित सार, तेरह विधि पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै।
सम्यक्चारित सार, तेरह विधि पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज विविध प्रकार, क्षुधा हरै थिरता करै।
सम्यक्चारित सार, तेरह विधि पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप-ज्योति तम-हार, घट-पट परकाशै महा।
सम्यक्चारित सार, तेरह विधि पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप घ्रान-सुखकार, रोग विघन जड़ता हरै।
सम्यक्चारित सार, तेरह विधि पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल आदि विथार, निहचैं सुर-शिव-फल करै।
सम्यक्चारित सार, तेरह विधि पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गन्धाक्षत चारु, दीप धूप फल-फूल चरु।
सम्यक्चारित सार, तेरह विधि पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

आप आप थिर नियत नय, तप संयम व्योहार।
स्व-पर-दया दोनों लिये, तेरहविध दुःखहार।।

सम्यक्चारित रतन संभालौ, पाँच पाप तजि के व्रत पालौं।
पंच समिति त्रय गुपति गहीजै, नर-भव सफल करहु तन छीजै।।
छीजै सदा तन को जतन यह, एक संजम पालिए।
बहु रुल्यो नरक-निगोद माहीं, विष-कषायनि टालिए।।

शुभ करम जोग सुघाट आयो, पार हो दिन जात है।
'द्यानत' धरम की नाव बैठो, शिव-पुरी कुशलात है।।

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय जयमाला

(दोहा)

सम्यक्दरशन-ज्ञान-व्रत, इन बिन मुक्ति न होय।
अन्ध पंगु अरु आलसी, जुदे जलैं दव लोय।।

(चौपाई)

जापै ध्यान सुथिर बन आवै, ताके करमबन्ध कट जावै।
तासों शिव-तिय प्रीति बढ़ावै, जो सम्यक्रत्नत्रय ध्यावै।।
ताको चहुँगति के दुःख नाहीं, सो न परे भव सागर माँहीं।
जनम-जरा-मृत दोष मिटावैं, जो सम्यक्रत्नत्रय ध्यावै।।
सोई दशलक्षण को साधैं, सो सोलह कारण आराधै।
सो परमातमपद उपजावै, जो सम्यक्रत्नत्रय ध्यावै।।
सोई शक्र-चक्रिपद लेई, तीनलोक के सुख विलसेई।
सो रागादिक भाव बहावै, जो सम्यक्रत्नत्रय ध्यावै।।
सोई लोकालोक निहारे, परमानन्ददशा विसतारे।
आप तिरै औरन तिरवावैं, जो सम्यक्रत्नत्रय ध्यावै।।

(दोहा)

एक स्वरूप-प्रकाश-निज, वचन कह्यो नहिं जाय।
तीन भेद व्योहार सब, 'द्यानत' को सुखदाय।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शन-सम्यक्ज्ञान-सम्यक्चारित्राय समुच्चय जयमाला अनर्घ्यपद प्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री रत्नत्रयधर्म पूजन - 2

जय जय सम्यक्‌दर्शन पावन मिथ्या भ्रम नाशक श्रद्धान।
जय जय सम्यक्‌ज्ञान तिमिर हर जय जय् वीतराग विज्ञान।।
जय जय सम्यक्‌चारित निर्मल मोह क्षोभ हर महिमावान।
अनुपम रत्नत्रय धारणकर मोक्ष मार्ग पर करूँ प्रयाण।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्‌रत्नत्रयधर्म ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री सम्यक्‌रत्नत्रयधर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री सम्यक्‌रत्नत्रयधर्म ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

सम्यक् सरिता सलिल जल द्वारा मिथ्यातम प्रभु दूर हटाव।
जन्म मरण का क्षय कर डालूं साम्य भाव रस मुझे पिलाव।।
दर्शन ज्ञान चारित्र साधना से पाऊँ निजशुद्ध स्वभाव।
रत्नत्रय की पूजन करके राग-द्वेष का करूँ अभाव।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्‌रत्नत्रयधर्माय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ भावों का चंदन घिस-घिस निज से किया सदा अलगाव।
भव ज्वाला शीतल हो जाये ऐसी आत्म प्रतीत जगाव।।दर्शन.।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्‌रत्नत्रयधर्माय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

भव समुद्र की भंवरों में फंस टूटी अब तक मेरी नाव।
पुण्योदय से तुमसा नाविक पाया मुझको पार लगाव।।दर्शन.।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्‌रत्नत्रयधर्माय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

काम क्रोध मद मोह लोभ से मोहित हो करता पर भाव।
दृष्टि बदल जाये तो सृष्टि बदल जाये यह सुमति जगाव।।दर्शन.।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्‌रत्नत्रयधर्माय कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पुण्य भाव की रूचि में रहता इच्छाओं का सदा कुभाव।
क्षुधारोग हरने को केवल निज की रूचि ही श्रेष्ठ उपाव।।दर्शन.।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्‌रत्नत्रयधर्माय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान ज्योति बिन अंधकार में किये अनेकों विविध विभाव।
आत्मज्ञान की दिव्यविभा से मोह तिमिर का करूँ अभाव।।
दर्शन ज्ञान चारित्र साधना से पाऊँ निजशुद्ध स्वभाव।
रत्नत्रय की पूजन करके राग-द्वेष का करूँ अभाव।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयधर्माय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

घाति कर्म ज्ञानावरणादि निज स्वरूप घातक दुर्भाव।
ध्रुव स्वभावमय शुद्ध दृष्टि दो अष्टकर्म से मुझे बचाव।।दर्शन.।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयधर्माय अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निज श्रद्धानज्ञान चारित्रमय निज परिणति से पा निज ठाँव।
महामोक्ष फल देने वाले धर्म वृक्ष की पाऊँ छाँव।।दर्शन.।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयधर्माय महामोक्ष फल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

दुर्लभ नर तन फिर पाया है चूक न जाऊँ अन्तिम दाव।
निज अनर्घ पद पाकर नाश करूँगा मैं अनादि का घाव।।दर्शन.।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयधर्माय अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यग्दर्शन पूजन

आत्म तत्व की प्रतीत निश्चय सप्ततत्त्व श्रद्धा व्यवहार।
सम्यक्दर्शन से हो जाते भव्य जीव भव सागर पार।।
विपरीताभिनिवेश रहित अधिगमज निसर्गज समकित सार।
औपशमिक क्षायिक क्षयोपशम होता है यह तीन प्रकार।।
आर्ष, मार्ग, बीज, उपदेश, सूत्र, संक्षेप अर्थ विस्तार।
समकित है अवगाढ़ और परमावगाढ़ दश भेद प्रकार।।
जिन वर्णित तत्त्वों में शंका लेश नहीं, निशंकित अंग।
सुरपद या लौकिकसुख बाँछा लेश नहीं, निःकांक्षित अंग।।

अशुचि पदार्थों में न ग्लानि हो शुचिमय निर्विचिकित्सा अंग।
देव-शास्त्र-गुरु धर्मात्माओं में रुचि अमूढ़ दृष्टि सुअंग।।
पर दोषों को ढकना स्वगुण वृद्धि करना उप गुहन अंग।
धर्म मार्ग से विचलित को थिर रखना स्थितिकरणसुअंग।।
साधर्मी में गौ बच्छसम पूर्ण प्रीति वात्सल्य सुअंग।
जिन पूजा तप दया दान मन से करना प्रभावाना अंग।।
आठ अंग पालन से होता है सम्यक्दर्शन निर्मल।
सम्यक्ज्ञान चरित्र उसी के कारण होता है उज्ज्वल।।
शंका कांक्षा विचिकित्सा अरु मूढ़ दृष्टि अनउपगुहन।
अस्थितिकरण अवात्सल्य अप्रभावना वसु दोष सघन।।
कुगुरु कुदेव कुशास्त्र और इनके सेवक छः अनातयन।
देव मूढ़ता गुरुमूढ़ता लोक मूढ़ता तीन जघन।।
जाति रूपकुल, ऋद्धि तपस्या पूजा और ज्ञान मद आठ।
मूल दोष सम्यक्दर्शन के यह पच्चीस तजो मद आठ।।
जय जय सम्यक्दर्शन आठों अंग सहित अनुपम सुखकार।
यही धर्म का सुदृढ़ मूल है इसकी महिमा अपरम्पार।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांग सम्यक्दर्शनाय अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यग्ज्ञान पूजन

निज अभेद का ज्ञान सुनिश्चय आठ भेद सब हैं व्यवहार।
सम्यक्ज्ञान परम हितकारी शिव सुखदाता मंगलकार।।
अक्षरपद वाक्यों का शुद्धोच्चारण है व्यंजनाचार।
शब्दों के यथार्थ अर्थ का अवधारण है अर्थाचार।।
शब्द अर्थ दोनों का सम्यक् जानपना है उभयाचार।
योग्यकाल में जिन श्रुत का स्वाध्याय कहाता कालाचार।।

नम्र रूप रह लेश न क्रुद्धत होना ही है विनयाचार।
सदा ज्ञान का आराधन, स्मरण सहित उपध्यानाचार।।
शास्त्रों की पाठी अरु श्रुत का आदर है बहुमानाचार।
नहीं छुपाना शास्त्र और गुरु नाम अनिन्हव है आचार।।
आठ अंग है यही ज्ञान के इनसे दृढ़ हो सम्यक्ज्ञान।
पाँच भेद हैं मति श्रुत अवधि मनःपर्यय अरु केवलज्ञान।।
मति होता है इन्द्रिय मन से तीन शतक अरु छत्तीस भेद।
श्रुत के प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं चउअनुयोग सु भेद।।
द्वादशांग चौदह पूरब परिकर्म चूलिका प्रकीर्णक।
अक्षर और अनक्षरात्मक भेद अनेकों है सम्यक्।।
अवधि ज्ञान त्रय देशावधि परमावधि सर्वावधि जानों।
भवप्रत्यय के तीन और गुणप्रत्यय के छह पहिचानों।।
मनः पर्यय ऋजुमति विपुलमति उपचार अपेक्षा से जानों।
नय प्रमाण से जान ज्ञान प्रत्यक्ष परोक्ष पृथक मानों।।
जय जय सम्यक्ज्ञान अष्ठ अंगों से युक्त मोक्ष सुखकार।
तीन लोक में विमल ज्ञान की गूँज रही हैं जय जयकार।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टविध सम्यक्ज्ञानाय अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्चारित्र पूजन

निज स्वरूप में रमण सुनिश्चय दो प्रकार चारित व्यवहार।
श्रावक त्रेपन किया साधु का तेरह विधि चारित्र अपार।।
पंच उदम्बर त्रय मकार तज, जीवदया, निशि भोजन त्याग।
देववन्दना जल गालन निशिभोजन त्यागी श्रावक जान।।
दर्शन ज्ञान चरित्रमयी ये त्रेपन क्रिया सरल पहिचान।
पाक्षिक नैष्ठिक साधक तीनों श्रावक के हैं भेद प्रधान।।

परम अहिंसा षट् कायक के जीवों की रक्षा करना।
परम सत्य है हितमित प्रिय वच सरल सत्य उर में धरना।।
परम अचौर्य, बिना पूछे तृण तक भी नहीं ग्रहण करना।
पंच महाव्रत यही साधु के पूर्ण देश पालन करना।।
ईर्या समिति सु प्रासुक भू पर चार हाथ भू लख चलना।
भाषा समिति चार विकथाओं से विहीन भाषण करना।।
श्रेष्ठ ऐषणा समिति अनु द्देषिक आहार शुद्धि करना।
है आदान निक्षेपण संयम के उपकरण देख धरना।।
प्रतिष्ठापना समिति देह के मल भू देख त्याग करना।
पंच समिति पालन कर अपने राग-द्वेष को क्षय करना।।
मनोगुप्ति है सब विभाव भावों का हो मन से परिहार।
वचनगुप्ति है आत्म चिंतवन ध्यान अध्ययन मौन संवार।।
काय गुप्ति है काय चेष्टा रहित भाव मय कायोत्सर्ग।
तीन गुप्ति धर साधु मुनिश्वर पाते हैं शिवमय अपवर्ग।।
षट् आवश्यक द्वादश तप पंचेन्द्रिय का निरोध अनुपम।
पंचाचार विनय आराधन द्वादश व्रत आदिक सुखतम।।
अट्ठाईस मूल गुण धारण सप्त भयों से रहना दूर।
निजस्वभाव आश्रय से करना पर विभाव को चकनाचूर।।
निरतिचार तेरह प्रकार का है चारित्र महान प्रधान।
इसके पालन से होता है सिद्ध स्वपद पावन निर्वाण।।
श्रेष्ठधर्म है श्रेष्ठमार्ग है श्रेष्ठ साधु पद शिव सुखकार।
सम्यक्चारित्र बिना न कोई हो सकता भव सागर पार।।

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधि सम्यक्चारित्राय अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

अष्ट अंगयुत निर्मल सम्यक्दर्शन मैं धारण करलूँ।
आठ अंगयुत निर्मल सम्यक्ज्ञान आत्मा में वरलूँ।।
तेरह विधि सम्यक् चारित्र से मुक्ति भवन में पग धरलूँ।
श्री अरिहंत सिद्ध पद पाऊँ सादि अनन्त सौख्य भरलूँ।।
निज स्वभाव का साधन लेकर मोक्ष मार्ग पर आ जाऊँ।
निज स्वभाव धर भाव शुभाशुभ परिणामों पर जय पाऊँ।।
एक शुद्ध निज चेतन शाश्वत दर्शन ज्ञान स्वरूपी जान।
ध्रुव टंकोत्कीर्ण चिन्मय चित्चमत्कार चिद्रूपी मान।।
इसका ही आश्रय लेकर मैं सदा इसी के गुण गाऊँ।
द्रव्यदृष्टि बन निज स्वरूप की महिमा से शिवसुख पाऊँ।।
रत्नत्रय को वन्दन करके शुद्धात्म का ध्यान करूँ।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित से परम स्वपद निर्वाण वरूँ।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शन-सम्यक्ज्ञान-सम्यक्चारित्रमयी रत्नत्रय धर्मेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय व्रत श्रेष्ठ की महिमा अगम अपार।
जो व्रत को धारण करे हो जाये भव पार।।

इत्याशीर्वादः

बीड़ी–तम्बाकू का व्यसन अथवा बासी अथाणा–मुरब्बा इन सब में त्रस हिंसा है, श्रावक को इन सब का सेवन नहीं होता। इस प्रकार त्रस हिंसा के जितने स्थान हों, जहाँ–जहाँ त्रस हिंसा की सम्भावना हो वैसे आचरण श्रावक को नहीं होते –ऐसा समझ लेना।

–पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी

सोलहकारण पूजन - 1

(अडिल्ल)

सोलह कारण भाय तीर्थंकर जे भये।
हरषे इन्द्र अपार मेरु पै ले गये।।
पूजा करि निज धन्य लख्यो बहु चावसौं।
हमहु षोडश कारन भावैं भावसौं।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(चौपाई आँचलीबद्ध)

कंचन-झारी निरमल नीर, पूजों जिनवर गुण गम्भीर।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।
दरशविशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थंकर-पद पाय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धि-विनयसंपन्नता-शीलव्रतेष्वनतिचार-अभीक्ष्णज्ञानोपयोग-संवेग-शक्तिस्त्याग-तपः -साधुसमाधि-वैयावृत्त्यकरण-अर्हद्भक्ति-आचार्यभक्ति-बहुश्रुतभक्ति-प्रवचनभक्ति-आवश्यकापरिहाणि -मार्गप्रभावना-प्रवचनवात्सल्य इति तीर्थंकरत्वकारणेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

चन्दन घसौं कपूर मिलाय, पूजौं श्री जिनवर के पाय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।दरश.।।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिशोडशकारणेभ्यो संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

तन्दुल धवल सुगन्ध अनूप, पूजौं जिनवर तिहुँ जग-भूप।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।दरश.।।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिशोडशकारणेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

फूल सुगन्ध मधुप-गुंजार, पूजौं जिनवर जग-आधार।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।दरश.।।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिशोडशकारणेभ्यो कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

सदनेवज बहुविधि पकवान, पूजों श्रीजिनवर गुणखान।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।
दरशविशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थंकर-पद पाय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिशोडशकारणेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीपक-ज्योति तिमिर छयकार, पूजूँ श्री जिनकेवलधार।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।दरश.।।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिशोडशकारणेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अगर कपूरगन्ध शुभ खेय,श्रीजिनवर आगे महकेय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।दरश.।।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिशोडशकारणेभ्यो अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल आदि बहुत फलसार पूजौं जिन वांछित-दातार।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।दरश.।।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिशोडशकारणेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जलफल आठों दरब चढ़ाय, 'द्यानत' वरत करों मनलाय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।दरश.।।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिशोडशकारणेभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

षोडस कारण गुण करै, हरै चतुरगति-वास।
पाप पुण्य सब नाशके, ज्ञान-भान परकाश।।

(चौपाई)

दरशविशुद्धि धरै जो कोई, ताको आवागमन न होई।
विनय महाधारै जो प्राणी, शिव-वनिताकी सखी बखानी।।

शील सदा दृढ़ जो नर पालै, सो औरनकी आपद टालै।
ज्ञानाभ्यास करै मनमाँहीं, ताके मोह-महातम नाहीं।।
जो संवेग-भाव विस्तारै, सुरग-मुकति-पद आप निहारै।
दान देय मन हरष विशेखै, इहभव जस परभव सुख देखै।।
जो तप तपै खपै अभिलाषा, चूरै करम-शिखर गुरु भाषा।
साधुसमाधि सदा मन लावै, तिहुँ जग भोग भोगि शिव जावै।।
निश-दिन वैयावृत्त्य करैया, सो निहचै भव-नीर तिरैया।
जो अरहंत भगति मन आनै, सो जन विषय कषाय न जानै।।
जो आचारज-भगति करै है, सो निरमल आचार धरै है।
बहुश्रुतवन्त-भगति जो करई, सो नर संपूरण श्रुत धरई।।
प्रवचन-भगति करै जो ज्ञाता, लहै ज्ञान-परमानन्द-दाता।
षट् आवश्यक नित जो साधै, सो ही रत्नत्रय आराधै।।
धरम-प्रभाव करै जे ज्ञानी, तिन शिव-मारग रीति पिछानी।
वत्सल अंग सदा जो ध्यावै, सो तीर्थंकर पदवी पावै।।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिशोडशकारणेभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

एही सोलह भावना, सहित धरै व्रत जोय।
देव-इन्द्र-नर वंद्यपद, 'द्यानत' शिवपद होय।।

(पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

✠✠✠

श्री सोलहकारण पूजन - 2

षोडस कारण पर्व धर्म का करूँ धर्म आराधना।
मुक्ति सुनिश्चित यदि इस व्रत की हो निजात्म में साधना।।
दुखी जगत के जीव मात्र का हित हो निज कल्याण हो।
अविनश्वर लक्ष्मी से परिणय मोक्ष प्रकाश महान हो।।
पूर्ण ज्ञान कैवल्य अनन्तानंत गुणों का वास हो।
तीर्थंकर पर दाता सोलहकारण धर्म विकास हो।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादि षोडशकारणेभ्यो षोडसकारणानि धर्म ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादि षोडशकारणेभ्यो षोडसकारणानि धर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादि षोडशकारणेभ्यो षोडसकारणानि धर्म! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

जल की उज्ज्वल निर्मलता से मिथ्यामैल न धो सका।
आकुलतामय जन्म मरण से रहित न अब तक हो सका।।
निर्विकल्प अविकल सुखदायक सोलहकारण भावना।
जय जय तीर्थंकर पद दायक सोलहकारण भावना।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धियादि षोडशकारणेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

भाव मरण प्रति समय किया है मैंने काल अनादि से।
भव संताप बढ़ाया चलकर उल्टी चाल अनादि से।।निर्वि.।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धियादि षोडशकारणेभ्यो संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

मुक्त नहीं हो पाया अब तक पर भावों के जाल से।
यह संसार चक्र मिट जाये धर्म चक्र की चाल से।।निर्वि.।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धियादि षोडशकारणेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

काम वेदना भव पीड़ामय पर परिणति दुखदायिनी।
काम विनाशक निज चेतन पद निज परिणति सुखदायिनी।।निर्वि.।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धियादि षोडशकारणेभ्यो कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

जग तृष्णा की व्याधि हजारों आकुल करती हैं मुझे।
क्षुधा रोग की माया नागिन भव भव डसती हैं मुझे।।
निर्विकल्प अविकल सुखदायक सोलहकारण भावना।
जय जय तीर्थंकर पद दायक सोलहकारण भावना।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धियादि षोडशकारणेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्मज्ञान रवि ज्योति प्रकाशित हो अब स्वपर प्रकाशिनी।
शुद्ध परम पद प्राप्ति भावना तम नाशक भव नाशिनी।।निर्वि.।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धियादि षोडशकारणेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

एक भूल कर्मों की संगति भव वन में उलझा रही।
अग्नि लोह की संगति करके घन की चोटें खा रही।।निर्वि.।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धियादि षोडशकारणेभ्यो अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निज स्वभाव बिन हुई सदा ही अष्टकर्म की जीत ही।
महामोक्षफल पाने का पुरुषार्थ किया विपरीत ही।।निर्वि.।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धियादि षोडशकारणेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल फलादि वसु द्रव्य अर्घ का अर्थ कभी आया नहीं।
अविचल अविनश्वर अनर्घ पद इसीलिए पाया नहीं।।निर्वि.।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धियादि षोडशकारणेभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

भव्य भावना षोडशकारण विमल मुक्ति निर्वाण पथ।
तीर्थंकर पदवी पाने का द्रुत गतिवान प्रयाणरथ।।
रागादिक मिथ्यात्व रहित समकित हो निज की प्रीतिमय।
दोष रहित दर्शनविशुद्धि भावना मुक्ति संगीतमय।।
मन वच काया शुद्धि पूर्वक रत्नत्रय आराध लें।
तप का आदर परम विनय सम्पन्न भावना साधलें।।

पंचव्रत सहित शील स्वगुण परिपूर्ण शीलमय आचरण।
निरतिचार भावना शीलव्रत दोषहीन अशरण शरण।।
शास्त्र पठन गुरु नमन पाठ उपदेश स्तवन ध्यानमय।
हो अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावना हृदय में ज्ञानमय।।
मित्र भ्रात पत्नि सुत आदिक और विषय संसार के।
इनमें पूर्ण विरक्ति रखें संवेग भावना धार के।।
हम उत्तम मध्यम जघन्य सत् पात्रों को पहिचान लें।
चार दान दे नित्य शक्ति तपस्त्याग भावना जान लें।।
मुक्ति प्राप्ति हित आत्म आचरण शक्ति भक्ति अनुरूप हो।
द्वादश विधि से तपश्चरण भावना शक्ति तप रूप हो।।
इष्ट वियोग अनिष्ट योग उपसर्ग मरण या रोग हो।
साधु समाधि भावना अनुपम कभी न दुखमय योग हो।।
रोगि मुनि की भक्ति पूर्वक सेवा सुश्रुषा करें।
भव्य भावना वैयावृत्यकरण मन मंजुषा भरें।।
मन वच काया से विजयी हो करें भक्ति अरहंत की।
निर्मल अर्हद भक्ति भावना शुद्ध रूप भगवन्त की।।
गुरु निर्ग्रन्थ चरण वन्दन पूजन नित विनय प्रणाम हो।
नमस्कार आचार्य भक्ति भावना हृदय वसु याम हो।।
लोकालोक प्रकाशक जिन श्रुत व्याख्यान अनुरूप हो।
बहु श्रुत भक्ति भावना मन में उपध्याय मुनि रूप हो।।
सप्त तत्व पंचास्तिकाय छह द्रव्य आदि सत् जान लें।
जिन आगम का पढ़ना प्रवचन भक्ति भावना मान लें।।
कायोत्सर्ग प्रतिक्रमण समता स्वाध्याय वन्दन विमल।
देव स्तुतिषट कृत्य भावना आवश्यक निर्मल सरल।।

जिन अभिषेक नृत्य गीतों वाद्यों से पूजन अर्चना।
श्रुत प्रवचन मार्ग प्रभावना जिनालयों की चर्चना।।
शीलवान चारित्रवान जिन मुनियों का आदर करें।
मृदुल भावना प्रवचनवत्सल मुनि चरणों में शिर धरें।।
इनके बाह्य आचरण ही से स्वर्ग सम्पदा झिल मिले।
आभ्यन्तर आचरण किया तो मोक्ष लक्ष्मी फल मिले।।
जितना अंश शुद्धि का होगा उतनी आत्म विशुद्धि रे।
सतत जाग्रत हो निजात्म में मुक्ति प्राप्ति की बुद्धि रे।।
पूर्ण शुद्धि होगी निजात्म में तब होगा निर्वाण रे।
ज्ञानानन्दी गुण अनन्तमय स्वयं सिद्ध भगवान रे।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धियादि षोडशकारणेभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सोलह कारण भावना हरे जगत दुख द्वन्द।
तीर्थंकर पद प्राप्त कर करो सदा आनन्द।।

इत्याशीर्वादः

अहो! मुनिदशा कैसी होती है? इसका भी लोगों को भान नहीं है। गणधरदेव भी जब नमस्कार मन्त्र बोलते हैं तब ''णमो लोए सव्व साहूणं'' इस पद के द्वारा उनका (गणधर भगवान का) नमस्कार सब मुनियों के चरणों में पहुँचता है तो यह मुनिदशा कैसी होगी? तीन लोक के नाथ भगवान महावीर, सीमन्धर आदि अनन्त तीर्थंकरों के धर्मवजीर, ऐसे गणधर जब शुभराग के समय नमस्कार मन्त्र बोलते हैं तब उसमें साधु के चरणों में भी नमस्कार आ जाता है। अहा! गणदेव भी जिसे नमस्कार करें, वह पद कैसा होगा?

–पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी
पंच कल्याणक प्रवचन

सोलह कारण के सोलह अर्घ

सवैया तेईसा

दर्शन शुद्ध न होवत जो लग, तो लग जीव मिथ्याती कहावे।
काल अनंत फिरो भव में, महादुःखन को कहुँ पार न पावे।।
दोष पचीस रहित गुण-अम्बुधि, सम्यक्दरश शुद्ध ठहरावे।
'ज्ञान' कहे नर सोहि बड़ो, मिथ्यात्व तजे जिनमारग ध्यावै।।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धिभावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देव तथा गुरुराय तथा, तप संयम शील व्रतादिक-धारी।
पाप के हारक काम के छारक, शल्य-निवारक कर्म-निवारी।।
धर्म के धीर कषाय के भेदक, पंच प्रकारं संसार के तारी।
'ज्ञान' कहे विनयो सुखकारक, भाव धरो मन राखो विचारी।।

ॐ ह्रीं विनयसम्पन्नता भावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शील सदा सुखकारक है, अतिचार-विवर्जित निर्मल कीजे।
दानव देव करें तसु सेव, विषानल भूत पिशाच पसीजे।।
शील बड़ो जग में हथियार, जु शील को उपमा काहे की दीजे।
'ज्ञान' कहे नहिं शील बराबर, तातें सदा दृढ़ शील धरीजे।।

ॐ ह्रीं शील भावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान सदा जिनराज को भाषित, आलस छोड़ पढ़े जो पढ़ावे।
द्वादस दोउ अनेकहूँ भेद, सुनाम मति श्रुति पंचम पावे।।
चारहुँ भेद निरन्तर भाषित, ज्ञान अभीक्षण शुद्ध कहावे।
'ज्ञान' कहे श्रुत भेद अनेक जु, लोकालोक हि प्रगट दिखावे।।

ॐ ह्रीं ॐ ह्रीं अभीक्ष्णज्ञानोपयोग भावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भ्रात न तात न पुत्र कलत्र न, दुर्जन सज्जन ए सब खोटो।
मन्दिर सुन्दर काय सखा, सबको इहको हम अंतर मेटो।।
भाउ के भाव धरी मन भेदन, नाहिं संवेग पदारथ छोटो।
'ज्ञान' कहे शिवसाधन को जैसो, साहको कामकरे जु बणोटो।।

ॐ ह्रीं संवेगभावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पात्र चतुर्विध देख अनुपम, दान चतुर्विध भावसुँ दीजे।
शक्ति समान अभ्यागत को, अति आदर से प्रणिपत्य करीजे।।
देवत जे नर दान सुपात्रहिं, तास अनेकहिं कारण सीजे।
बोलत 'ज्ञान' देहि शुभ दान जु, भोग सुभूमि महासुख लीजे।।

ॐ ह्रीं शक्तितस्त्यागभावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्म कठोर गिरावन को निज, शक्ति समान महातप कीजे।
बारह भेद तपे तप सुन्दर, पाप जलांजलि काहे न दीजे।।
भाव धरी तप घोर करो, नर, जन्म सदा फल काहे न लीजे।
'ज्ञान' कहे तप जे नर भावत, ताके अनेकहिं पातक छीजे।।

ॐ ह्रीं शक्तितस्तपोभावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

साधुसमाधि करो नर भावन, पुण्य बड़ो उपजे अघ छीजे।
साधु की संगति धर्म को कारण, भक्ति करे परमारथ सीजे।।
साधु समाधि करे भव छूटत, कीर्ति-छटा त्रैलोक में गाजे।
'ज्ञान' कहे यह साधु बड़ो, गिरिशृंग गुफा बिच जाय विराजे।।

ॐ ह्रीं साधुसमाधिभावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्म के योग व्यथा उदई मुनि, पुंगव को तसु भेषज कीजे।
पित कफानल सास भगन्धर, ताप को सूल महागद छीजे।।

भोजन साथ बनायके औषध, पथ्य कुपथ्य विचार के दीजे।
'ज्ञान' कहे नित ऐसी वैय्यावृत करे तसु देव पतीजे।।

ॐ ह्रीं वैयावृत्यकरणभावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देव सदा अरिहन्त भजो जई, दोष अठारा किये अति दूरा।
पाप पखाल भये अति निर्मल, कर्म कठोर किये चकचूरा।।
दिव्य अनन्त-चतुष्टयशोभित, घोर मिथ्यान्ध-निवारण सूरा।
'ज्ञान' कहे जिनराज अराधो, निरन्तर जै गुण-मन्दिर पूरा।।

ॐ ह्रीं अर्हद्भक्तिभावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देवत ही उपदेश अनेक सु, आप सदा परमारथ-धारी।
देश विदेश विहार करें, दश धर्म धरें भव पार उतारी।।
ऐसे अचारच भाव धरी भज, सो शिव चाहत कर्म निवारी।
'ज्ञान' कहे गुरु-भक्ति करो नर, देखत ही मनमांही विचारी।।

ॐ ह्रीं आचार्यभक्तिभावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आगम छन्द पुराण पढ़ावत, साहित तर्क वितर्क बखाने।
काव्य कथा नव नाटक पूजन, ज्योतिष वैद्यक शास्त्र प्रमाने।।
ऐसे बहुश्रुत साधु मुनिश्वर, जो मन में दोउ भावना आने।
बोलत 'ज्ञान' धरी मनसान जु, भाग्य विशेषतें जानहिं जाने।।

ॐ ह्रीं बहुश्रुतभक्तिभावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

द्वादश अंग उपांग सदागम, ताकी निरन्तर भक्ति करावे।
वेद अनुपम चार कहे तस, अर्थ भले मन मांहि ठरावे।।
पढ़ बहुभाव लिखो निजअक्षर, भक्ति करि बड़िपूज रचावे।
'ज्ञान' कहे जिन आगम भक्ति, करो सद्बुद्धि बहुश्रुत पावै।।

ॐ ह्रीं प्रवचनभक्तिभावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भाव धरे समता सब जीव सु स्त्रोत पढ़े मुख से मनहारी।
कायोत्सर्ग करे मन प्रीतसुं, वंदन देव-तणो भव तारी।।
ध्यान धरी मद दूर करी, दोउ बेर करे पड़कम्मन भारी।
'ज्ञान' कहे मुनि सो धनवन्त जु, दर्शन ज्ञान चरित्र उधारी।।

ॐ ह्रीं आवश्यकपरिहाणिभावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनपूजा रचो परमारथसूं, जिन आगे नृत्य महोत्सव ठाणो।
गावत गीत बजावत ढोल, मृदंग के नाद सुधांग बखाणो।।
संग प्रतिष्ठा रचो जल जातरा, सद्गुरु को साहमो कर आणो।
'ज्ञान' कहे जिनमार्ग प्रभावन, भाग्य विशेषसुं जानहिं जाणो।।

ॐ ह्रीं मार्गप्रभावनाभावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गौरव भाव धरो मन से मुनिपुंगव को नित वत्सल कीजे।
शील के धारक भव्य के तारक, तासु निरन्तर स्नेह धरीजे।।
धेनु यथा निज बालक के, अपने जिय छोड़ि न और पतिजे।
'ज्ञान' कहे भविलोक सुनो, जिन वत्सल भावधरे अघ छीजे।।

ॐ ह्रीं प्रवचनवात्सल्यभावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुन्दर षोड़शकारण भावन निर्मल चित्त सुधारक धारै,
कर्म अनेक हने अति दुर्धर जन्म जरा भय मृत्यु निवारे।
दुःख दारिद्र विपत्ति हरै भव सागर को तर पार उतारै,
'ज्ञान' कहे यहि षोड़सकारण, कर्म निवारण सिद्धि सुधारै।

श्री क्षमावाणी पूजन - 1

(स्थापना)

(छन्द-तांटक)

क्षमावाणी का पर्व सुपावन देता जीवों को संदेश।
उत्तम क्षमाधर्म को धारों जो अति भव्य जीव का वेश।।
मोह नींद से जागोचेतन अब त्यागो मिथ्याभिनिवेश।
द्रव्य दृष्टि बन निज स्वभाव से चलो शीघ्र सिद्धों के देश।।
क्षमा मार्दव, आर्जव, संयम, शौच, सत्य को अपनाओ।
त्याग, तपस्या, आकिंचन, व्रत ब्रह्मचर्य मय हो जाओ।।
एक धर्म का सार यही है समतामय ही बन जाओ।
सब जीवों पर क्षमाभाव रख स्वयं क्षमामय हो जाओ।।
क्षमा धर्म की महिमा अनुपम क्षमा धर्म ही जग में सार।
तीन लोक में गूंज रही है क्षमावाणी की जय जयकार।।
ज्ञाता दृष्टा हो समग्र को देखो उत्तम निर्मल भेष।
रागों से विरक्त हो जाओ रहे न दुख का किंचित लेश।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तम क्षमा धर्म ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री उत्तम क्षमा धर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री उत्तम क्षमा धर्म ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

जीवादिक नव तत्त्वों का श्रद्धान यही सम्यक्त्व प्रथम।
इनका ज्ञान ज्ञान है, रागादिक का त्याग चरित्र परम।।
"संते पुव्वणिबद्धं जाणदि"[१] वह अबंध का ज्ञाता है।
सम्यक्दृष्टि सुजीव आस्रव बंध रहित हो जाता है।।
उत्तम क्षमा धर्म उर धारूँ जन्म-मरण क्षय कर मानूँ।
पर द्रव्यों से दृष्टि हटाऊँ निज स्वभाव को पहिचानूँ।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

१. समयसार, गाथा १६६ - सत्ता में रहे हुए पूर्वबद्ध कर्मों को जानता है।

सप्त भयों से रहित निशंकित निज स्वभाव में सम्यक्दृष्टि।
मिथ्यात्विक भावों में जो रहता वह है मिथ्यादृष्टि।।
तीन मूढ़ता छह अनायतन तीन शल्य का नाम नहीं।
आठ दोष समकित के अरु आठों मद का कुछ काम नहीं।।
उत्तम क्षमा धर्म उर धारूँ जन्म-मरण क्षय कर मानूँ।
पर द्रव्यों से दृष्टि हटाऊँ निज स्वभाव को पहिचानूँ।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अशुभकर्म जाना कुशील शुभ को सुशील मानता अरे।
जो संसार बन्ध का कारण वो कुशील जानता न रे।।
कर्म फलों के प्रति जिनकी आकांक्षा उर में रही नहीं।
वह निकांक्षित सम्यक्दृष्टि भव की वांछा रही नहीं।।उत्तम.।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

राग शुभाशुभ दोनों ही संसार भ्रमण का कारण हैं।
शुद्ध भाव ही एक मात्र परमार्थ भवोदधि तारण है।।
वस्तु स्वभाव धर्म के प्रति जो लेश जुगुप्सा करे नहीं।
निर्विचित्सक जीव वही है निश्चय सम्यक्दृष्टि वही।।उत्तम.।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध आत्मा जो ध्याता वह पूर्ण शुद्धता पाता है।
जो अशुद्ध को ध्याता है वह ही अशुद्धता पाता है।।
पर भावों में जो न मूढ़ है दृष्टि यथार्थ सदा जिसकी।
वह अमूढ़दृष्टि का धारी सम्यक्दृष्टि सदा उसकी।।उत्तम.।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेधं निर्वपामीति स्वाहा।

राग द्वेष मोहादि आस्रव ज्ञानी को होते न कभी।
ज्ञाता दृष्टा को ही होते उत्तम संवर भाव सभी।।

शुद्धातम की भक्ति सहित जो पर भावों से नहिं जुड़ा।
उपगुहन का अधिकारी है सम्यक्दृष्टि महान बड़ा।।उत्तम.।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्म बन्ध के चारों कारण मिथ्या अविरति योग कषाय।
चेतयिता इनका छेदन कर, करता है निर्वाण उपाय।।
जो उन्मार्ग छोड़कर निज को निज में सुस्थापित करता।
स्थिति करणयुक्त होता वह सम्यक्दृष्टि स्वहित करता।।उत्तम.।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पुण्यपाप मय सभी शुभाशुभ योगों से रहता वह दूर।
सर्व संग से रहित हुआ वह दर्शन ज्ञान मयी सुख पूर।।
सम्यक्दर्शन ज्ञान चरितधारी के प्रति गौ वत्सल भाव।
वात्सल्य का धारी सम्यक्दृष्टि मिटाता पूर्ण विभाव।।उत्तम.।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान विहीन कभी भी पलभर ज्ञान स्वरूप नहीं होता।
बिना ज्ञान के ग्रहण किये कर्मों से मुक्त नहीं होता।।
विद्यारूपी रथ पर चढ़ जो ज्ञानरूप रथ चलवाता।
वह जिन-शासन की प्रभावना करता शिवपथदर्शाता।।उत्तम.।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

उत्तम क्षमा स्वधर्म को वन्दन करूँ त्रिकाल।
नाश दोष पच्चीस कर काटूँ भव जंजाल।।

(तांटक)

सोलहकारण पुष्पांजलि दशलक्षण रत्नत्रय व्रतपूर्ण।
इनके सम्यक् पालन से हो जाते हैं वसुकर्म विचूर्ण।।

भाद्र मास में सोलहकारण तीस दिवस तक होते हैं।
शुक्ल पक्ष में दश लक्षण पंचम से दस दिन होते हैं।।
पुष्पांजलि दिन पाँच पंचमी से नवमी तक होते हैं।
पावन रत्नत्रयव्रत अन्तिम तीन दिवस के होते हैं।।
अश्विन कृष्णा एकम् उत्सव क्षमावाणी का होता है।
उत्तमक्षमा धार उर श्रावक मोक्ष मार्ग को जोता है।।
भाद्र मास अरु माघ मास अरु चैत्र मास में आते हैं।
तीन बार आ पर्वराज जिनवर संदेश सुनाते हैं।।
''जीवे कम्मं बद्धं पुट्ठं''[1] यह तो है व्यवहार कथन।
है अबद्ध अस्पृष्ट कर्म से निश्चय नय का यही कथन।।
जीव देह को एक बताना यह है नय व्यवहार अरे।
जीव देह तो पृथक-पृथक हैं निश्चय नय कह रहा अरे।।
निश्चय नय का विषय छोड़ व्यवहार माँहि करते वर्तन।
उनको मोक्ष नहीं हो सकता और न ही सम्यक् दर्शन।।
''दोण्हविणयाण भणियं जाणई''[2] जो पक्षातिक्रांत होता।
चित्स्वरूप का अनुभव करता सकलकर्म मल को खोता।।
ज्ञानी ज्ञानस्वरूप छोड़कर जब अज्ञानरूप होता।
तब अज्ञानी कहलाता है पुद्गल बन्ध रूप होता।।
''जह विस भुव भुज्जंतोवेज्जो''[3] मरण नहीं पा सकता है।
ज्ञानी पुद्गल कर्म उदय को भोगे बन्ध न करता है।।

१. समयसार, गाथा १४१ - जरव कर्म से बंध है तथा स्पर्शित है।
२. समयसार, गाथा १४३ - दोनों ही नयों के कथन मात्र को जानता है।
३. समयसार, गाथा १९४ - जिस प्रकार वैद्य पुरुष विष को भोगता, खाता हुआ भी।

मुनि अथवा गृहस्थ कोई भी मोक्ष मार्ग है कभी नहीं।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित ही मोक्षमार्ग है सही-सही।।
मुनि अथवा गृहस्थ के लिंगों में जो ममता करता है।
मोक्ष मार्ग तो बहुत दूर भव अटवी में ही भ्रमता है।।
प्रतिक्रमण प्रतिसरण आदि आठों प्रकार के विष कुम्भ।
इनसे जो विपरीत वही है मोक्षमार्ग के अमृत कुम्भ।।
पुण्य भाव की भी तो इच्छा ज्ञानी कभी नहीं करता।
पर भावों से अरति सदा है निज का ही कर्ता धर्ता।।
कोई कर्म है कभी किसी को सुख-दुख दाता नहीं समर्थ।
जीव स्वयं ही अपने सुख-दुख का निर्माता स्वयं समर्थ।।
क्रोध, मान,माया, लोभादिक नहीं जीव के किंचित् मात्र।
रूप,गंध, रस, स्पर्श शब्द भी नहीं जीव के किंचित् मात्र।।
देह संहनन संस्थान भी नहीं जीव के किंचित् मात्र।
रागद्वेष मोहादि भाव भी नहीं जीव के किंचित् मात्र।।
सर्वभाव से भिन्न त्रिकाली पूर्ण ज्ञानमय ज्ञायक मात्र।
नित्य, ध्रोव्य, चिद्रूप, निरंजन, दर्शन ज्ञानमयी चिन्मात्र।।
वाक् जाल में जो उलझे वो कभी सुलझ न पायेंगे।
निज अनुभव रसपान किये बिन नहीं मोक्ष में जायेंगे।।
अनुभव ही तो शिवसमुद्र है अनुभव शाश्वत सुख का श्रोत।
अनुभव परमसत्य शिवसुन्दर अनुभव शिव से ओतप्रोत।।
निज स्वभाव के सन्मुख हो जा पर से दृष्टि हटा भगवान।
पूर्ण सिद्ध पर्याय प्रकट कर आज अभी पा ले निर्वाण।।

ज्ञान चेतना सिंन्धु स्वयं तू स्वयं अनन्त गुणों का भूप।
त्रिभुवन पति सर्वज्ञ ज्योतिमय चिन्तामणि चेतन चिद्रूप।।
यह उपदेश श्रवण कर हे प्रभु मैत्री भाव हृदय धारूँ।
जो विपरीत वृत्तिवाले हैं उन पर मैं समता धारूँ।।
धीरे-धीरे पाप, पुण्य शुभ-अशुभ आस्रव संहारूँ।
भव तन भोगों से विरक्त हो निज स्वभाव को स्वीकारूँ।।
दशधर्मों को पढ़कर सुनकर अन्तर में आये परिवर्तन।
व्रत उपवास तपादिक द्वारा करूँ सदा ही निज चिंतन।।
राग द्वेष अभिमान पाप हर काम क्रोध को चूर करूँ।
जो संकल्प विकल्प उठे प्रभु उनको क्षण-क्षण दूर करूँ।।
अणु भर भी यदि राग रहेगा नहीं मोक्षपद पाऊँगा।
तीन लोक में काल अनन्ता राग लिये भरमाऊँगा।।
राग शुभाशुभ के विनाश से वीतराग बन जाऊँगा।
शुद्धात्मानुभूति के द्वारा स्वयं सिद्ध पद पाऊँगा।।
पर्यूषण में दूषण त्यागूं बाह्य क्रिया में रमे न मन।
शिव पथ का अनुसरण करूँ मैं बन के नाथ सिद्ध नन्दन।।
जीव मात्र पर क्षमा भाव रख मैं व्यवहार धर्म पालूँ।
निज शुद्धातम पर करुणा कर निश्चय धर्म सहज पालूँ।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

मोक्ष-मार्ग दर्शा रहा क्षमावाणी का पर्व।
क्षमाभाव धारण करो राग-द्वेष हर सर्व।।

(पुष्पान्जलिं क्षिपेत्)

क्षमावाणी पूजन - 2

(छप्पय)

अंग क्षमा जिन-धर्मतनो दृढ़-मूल बखानो।
सम्यक् रतन संभाल हृदय में निश्चय जानो।।
तज मिथ्या विष मूल और चित्त निर्मल ठानो।
निजधर्मीसों प्रीत करो सब पातक भानो।।
रत्नत्रय गह भविक-जन जिन-आज्ञा सम चालिये।
निश्चय कर आराधना करम-रास को जालिये।।

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रय ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रय ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रय ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

नीर सुगन्ध सुहावनो, पदम-द्रहको लाय।
जन्म-रोग निरवारिये, सम्यक् रतन लहाय।।
क्षमा गहो उर जीवड़ा, जिनवर वचन गहाय।

ॐ ह्रीं निःशंकितांगाय निःकांक्षितांगाय निर्विचिकित्सतांगाय निर्मूढतांगाय उपगूहनांगाय सुस्थितीकरणांगाय वात्सल्यांगाय प्रभावनांगाय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय सम्यग्दर्शनाय जलं नि. स्वाहा।

ॐ ह्रीं व्यंजनव्यंजिताय अर्थसमग्राय तदुभयसमग्राय कालाध्ययनाय उपाध्यानोपहिताय विनयलब्धि प्रभावनाय गुरुवाधान्हवाय बहुमानोन्मानाय अष्टांगसम्यग्ज्ञानाय जलं नि. स्वाहा।

ॐ ह्रीं अहिंसामहाव्रताय सत्यमहाव्रताय अचौर्यमहाव्रताय ब्रह्मचर्यमहाव्रताय अपरिग्रह महाव्रताय मनोगुप्तये वचनगुप्तये कायगुप्तये ईर्यासमितये भाषासमितये एषणासमितये आदानिक्षेपणसमितये प्रतिष्ठापनसमितये त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

केसर चंदन लीजिये, संग कपूर घसाय।
अलि पंकति आवत घनि, वास सुगन्ध सुहाय।।
क्षमा गहो उर जीवड़ा, जिनवर वचन गहाय।

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय रत्नत्रयाय भवताप विनाशनाय चदनं नि. स्वाहा।

शालि अखण्डित लीजिये, कंचन थाल भराय।
जिनपद पूजौं भाव सौं, अक्षत पद को पाय।।
क्षमा गहो उर जीवड़ा, जिनवर वचन गहाय।

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय रत्नत्रयाय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतं नि. स्वाहा।

पारिजात अरु केतकी, पहुप सुगन्ध गुलाब।
श्रीजिन-चरण-सरोजकूँ, पूज हर्ष चित चाव।।
क्षमा गहो उर जीवड़ा, जिनवर वचन गहाय।

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय रत्नत्रयाय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

शक्कर घृत सुरभीतना, व्यंजन षट्रस स्वाद।
जिनके निकट बढ़ायकर, हिरदे धरि आह्लाद।।
क्षमा गहो उर जीवड़ा, जिनवर वचन गहाय।

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय रत्नत्रयाय क्षुधारोग विध्वंसनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

हाटकमय दीपक रचो, वाति कपूर सुधार।
शोधित धृत कर पूजिये, मोह तिमिर निरवार।।
क्षमा गहो उर जीवड़ा, जिनवर वचन गहाय।

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय रत्नत्रयाय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

कृष्णागर करपूर हो, अथवा दशविधि जान।
जिन-चरणन ढिग खेइये, अष्ट कर्म की हान।।
क्षमा गहो उर जीवड़ा, जिनवर वचन गहाय।

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय रत्नत्रयाय अष्टकर्म दहनाय धूपं नि. स्वाहा।

केला अम्ब अनार ही, नारि केल ले दाख।
अग्र धरो जिनपदतने, मोक्ष होय जिन भाख।।
क्षमा गहो उर जीवड़ा, जिनवर वचन गहाय।

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय रत्नत्रयाय मोक्षफल प्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

जल फल आदि मिलायके, अरघ करो हरषाय।
दुःख जलांजलि दीजिये, श्री जिन होय सहाय।।
क्षमा गहो उर जीवड़ा, जिनवर वचन गहाय।

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय रत्नत्रयाय अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

उनतीस अंग की आरती, सुनो भविक चित लाय।
मन-वच-तन सरधा करो, उत्तम नर भव पाय।।

(चौपाई)

जैन धर्म में शंक न आने, सो निःशंकित गुण चित ठानैं।
जप तप कर फल वांछै नांहीं, निःकांक्षित गुण हो जिस माहीं।।
पर को देख गिलानि न आनै, सो तीजा सम्यक् गुण ठानैं।
आन देवको रंच न मानैं, सो निर्मूढ़ता गुण पहिचानैं।।
परको औगुण देख जु ढ़ाकैं, सो उपगूहन श्रीजिन भाखैं।
जैनधर्मतैं डिगता देखैं, थोपे बहुरि स्थिति कर लेखैं।।
जिन-धरमीसों प्रीति निवहिये, गउ-वच्छवत वच्छल कहिये।
ज्यों त्यों करि उद्योत बढ़ावे, सो प्रभावना अंग कहावे।।
अष्ट अंग यह पाले जोई, सम्यक्दृष्टी कहिये सोई।
अब गुण आठ ज्ञान के कहिये, भाखे श्री जिन मन में गहिये।।

व्यंजन अक्षर सहित पढ़ीजै, व्यंजन-व्यंजित अंग कहिजै।
अर्थ सहित शुध शब्द उचारैं, दूजा अर्थ समग्रह धारैं।।
तदुभय तीजा अंग लखीजै, अक्षर अर्थ-सहित जु पढ़ीजै।
चौथा कालाध्ययन विचारैं, काल समय लखि सुमरण धारैं।।
पंचम अंग उपधान बतावैं, पाठ सहित तब बहुफल पावैं।
षष्टम विनय सुलब्धि सुनीजै, वाणी बहुत विनय सु पढ़ीजै।।
जापै पढ़े न लोपै जाई, अंग सप्तम गुरुवाद कहाई।
गुरुकीबहुत विनय जु करीजै, सो अष्टम अंग धर सुख लीजै।।
यह आठों अंग-ज्ञान पढ़ावै, ज्ञाता मन-वच-तन कर ध्यावैं।
अब आगे चारित्र सुनीजै, तेरह-विधि धर शिव सुख लीजै।।
छहों काय की रक्षा कर है, सोई अहिंसाव्रत चित घर है।
हित मित सत्य वचन मुख कहिये, सो सतवादी केवल लहिये।।
मन-वच-काय न चोरी करिये, सोई अचौर्य-व्रत चित धरिये।
मनमथ-भय मन रंच न आनै, सो मुनि ब्रह्मचर्य व्रत ठानै।।
परिग्रह देख न मूर्छित होई, पंच महाव्रत-धारक सोई।
महाव्रत ये पाँचों खरे हैं, सब तीर्थंकर इनको करे हैं।।
मन में विकल्प रंच न होई, मनोगुप्ति मुनि कहिये सोई।
वचन अलीक रंच नहीं भाखें, वचन गुप्ति मुनिवर राखैं।।
कायोत्सर्ग परीषह सहि हैं, ता मुनि काय-गुप्ति जिन कहि हैं।
पंच समिति अब सुनिये भाई, अर्थ सहित भाखों जिनराई।।
चार हाथ जब भूमि निहारे, तब मुनि ईर्य्या समिति धारे।
मिष्ट वचन मुख बोले सोई, भाषा समिति तास मुनि होई।।
भोजन छियालिस दूषण टारै, सो मुनि एषण शुद्ध विचारैं।
देखकै पोथी ले अरुधर हैं, सो आदान निक्षेपन वर हैं।।

मल मूत्र एकांत जु डारैं, परतिष्ठापन समिति संभारैं।
यह सब अंग उनतीस कहे हैं, श्रीजिनभाषे गणधरने गहे हैं।।
आठ आठ तेरह विधि जानों, दर्श ज्ञान चरित्र सुठानों।
तातैं शिवपुर पहुँचों जाई, रत्नत्रय को यह विधि भाई।।
रत्नत्रय पूरण जब होई, क्षमा क्षमा करियो सब कोई।
चैत्र माघ भादों त्रय बारा, क्षमा क्षमा हम उर में धारा।।

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अष्टांगसम्यग्ज्ञानाय त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय महार्घ्यं नि. स्वाहा।

(दोहा)

यह क्षमावणी आरती, पढ़ै सुनै जो कोय।
कहे 'मल्ल' सरधा करो, मुक्ति श्रीफल होय।।

(परिपुष्पान्जलिं क्षिपेत्, इत्याशीर्वादः)

(सोरठा)

दोष न गहिये कोय, गुण गहि पढ़िये भाव सों।
भूल-चूक जो होय, अर्थ विचारि जु शोधियो।।

अहो! वह मुनिदशा धन्य है। वस्तु के सनातन स्वभाव में दिगम्बर जिनमुद्रा के बिना मुनिपना नहीं होता। मुनि को शरीर पर वस्त्र नहीं होते। कमण्डल भी पानी पीने के लिये नहीं होता; शरीर की अशुचिता दूर करने के लिये होता। तीर्थंकर भगवान का शरीर तो स्वभाव से ही अशुचिता रहित होता है इसलिये उनके तो कमण्डल भी नहीं होता। अनन्त संतों के द्वारा स्वयं पाला हुआ और कहा हुआ यही मुक्ति का राजमार्ग है।

–पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी
पंच कल्याणक प्रवचन

पंचमेरु - पूजन - 1

(गीताछन्द)

तीर्थंकरों के न्हवन-जलतैं भये तीरथ शर्वदा,
तातैं प्रदच्छन देत सुर-गन पंचमेरुन की सदा।
दो जलधि ढाई द्वीप में सबगनत-मूल विराजहीं,
पूजों असी जिनधाम-प्रतिमा होहि सुख दुख भाजहीं।।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसंबन्धिअस्सीजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं पंचमेरुसंबन्धिअस्सीजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं पंचमेरुसंबन्धिअस्सीजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(चौपाई आंचलीबद्ध)

शीतल-मिष्ट-सुवास मिलाय, जलसों पूजौं श्री जिनराय।
महासुख होय देखे नाथ परम सुख होय।।
पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा को करौं प्रणाम।
महासुख होय देखे नाथ परम सुख होय।।

ॐ ह्रीं सुदर्शन-विजय-अचल-मंदर-विद्युन्मालीपंचमेरुसम्बन्धि अस्सीजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल केशर करपूर मिलाय, गंधसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय देखे नाथ परम सुख होय।।पाँचों०।।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धि अस्सीजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो चदनं नि. स्वाहा।

अमल अखण्ड सुगन्ध सुहाय, अच्छतसौं पूजौं जिनराय।
महासुख होय देखे नाथ परम सुख होय।।पाँचों०।।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धि अस्सीजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अक्षतान् नि. स्वाहा।

वरन अनेक रहे महकाय, फूलसौं पूजौं श्री जिनराय।
महासुख होय देखे नाथ परम सुख होय।।पाँचों०।।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धि अस्सीजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो पुष्पं नि. स्वाहा।

मन-बांछित बहु तुरत बनाय, चरुसौं पूजों श्री जिनराय।
महासुख होय देखे नाथ परम सुख होय।।
पाँचों मेरुअसी जिनधाम, सब प्रतिमा को करों प्रणाम।
महासुख होय देखे नाथ परम सुख होय।।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धि अस्सीजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो नैवेद्यं नि. स्वाहा।

तम हर उज्ज्वल ज्योति जगाय, दीपसौं पूजों श्रीजिनराय।
महासुख होय देखे नाथ परम सुख होय।।पाँचों०।।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धि अस्सीजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो दीपं नि. स्वाहा।

खेऊँ अगर अमल अधिकाय, धूपसौं पूजों श्रीजिनराय।
महासुख होय देखे नाथ परम सुख होय।।पाँचों०।।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धि अस्सीजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो धूपं नि. स्वाहा।

सुरस सुवर्ण सुगन्ध सुभाय, फलसौं पूजों श्रीजिनराय।
महासुख होय देखे नाथ परम सुख होय।।पाँचों०।।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धि अस्सीजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो फलं नि. स्वाहा।

आठ दरबमय अरघ बनाय, 'द्यानत' पूजों श्रीजिनराय।
महासुख होय देखे नाथ परम सुख होय।।पाँचों०।।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धि अस्सीजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

प्रथम सुदर्शन-स्वामि, विजय अचल मन्दर कहा।
विद्युन्माली नाम, पंचमेरु जग में प्रगट।।

(वेसरी छन्द)

प्रथम सुदर्शन मेरु विराजै, भद्रशाल वन भूपर छाजै।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मनवचतन वन्दना हमारी।।

ऊपर पंच शतक पर सोहै, नन्दन-वन देखत मन मोहै।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मनवचतन वन्दना हमारी।।
साढ़े बासठ सहस ऊँचाई, वन सुमनस शोभे अधिकाई।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मनवचतन वन्दना हमारी।।
ऊँचा जोजन सहस-छत्तीसं, पाण्डुक-वनसोहै गिरि-सीसं।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मनवचतन वन्दना हमारी।।
चारों मेरु समान बखाने, भूपर भद्रसाल चहुँ जाने।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मनवचतन वन्दना हमारी।।
ऊँचे पाँच शतक पर भाखे, चारों नन्दनवन अभिलाखे।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मनवचतन वन्दना हमारी।।
साढ़े पचपन सहस उतंगा, वन सौमनस चार बहुरंगा।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मनवचतन वन्दना हमारी।।
उच्च अठाइस सहस बताये, पाण्डुक चारों वन शुभ गाये।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मनवचतन वन्दना हमारी।।
सुर नर चारन वन्दन आवैं, सो शोभा हम किह मुख गावैं।
चैत्यालय अस्सी सुखकारी, मनवचतन वन्दना हमारी।।

(दोहा)

पंचमेरु की आरती, पढ़े सुनै जो कोय।
'द्यानत' फल जाने प्रभु, तुरत महासुख होय।।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धि अस्सीजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो जयमाला महार्घ्यं नि. स्वाहा।

(परिपुष्पान्जलिं क्षिपेत्)

श्री पंचमेरु पूजन - 2

मध्यलोक में ढाई द्वीप के पंच मेरु को करूँ प्रणाम।
मेरु सुदर्शन, विजय, अचल, मंदर, विद्युन्माली अभिराम।।
मेरु सुदर्शन एक लाख योजन ऊँचा है महिमावान।
शेष मेरु योजन चौरासी सहस्त्र उच्च हैं दिव्य महान।।
पाँचों मेरु अनादि निधन हैं स्वर्णमयी सुन्दर सुविशाल।
इन पर अस्सी जिन चैत्यालय वन्दूँ सदा झुकाऊँ भाल।।
इनका पूजन वन्दन करके मैं अनादि अघतिमिर हरूँ।
मन वच काया शुद्धि पूर्वक श्री जिनवर को नमन करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शन, विजय, अचल, मन्दर, विधुन्माली पंचमेरु संबन्धि जिनचैत्यालयस्थ जिनप्रतिमा समूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शन, विजय, अचल, मन्दर, विधुन्माली पंचमेरु संबन्धि जिनचैत्यालयस्थ जिनप्रतिमा समूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शन, विजय, अचल, मन्दर, विधुन्माली पंचमेरु संबन्धि जिनचैत्यालयस्थ जिनप्रतिमा समूह ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

यह अथाह भव सागर जल पीकर भी तृषा न शांत हुई।
जन्म मरण के चक्कर में पड़कर मेरी मति भ्रांत हुई।।
पंचमेरु के अस्सी जिन चैत्यालय को वन्दन करलूँ।
भक्ति भाव से पूजन करके मैं भव सागर दुख हरलूँ।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरु सम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो जलं नि. स्वाहा।

भव दावानल की भीषण ज्वाला में जल-जल दुख पाया।
ताप निकंदन निज गुण चन्दन शीतलता पाने आया।।पंचमेरु०।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरु सम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो चदनं नि. स्वाहा।

भव समुद्र की चारों गतिमय भंवरों में गोता खाया।
अक्षयपद पाने को हे प्रभु कभी न अक्षत गुण भाया।।पंचमेरु०।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरु सम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो अक्षतं नि. स्वाहा।

कामभाव से भव दुख की श्रृंखला बढ़ाता ही आया।
महाशील के सुमन प्राप्त करने को देवशरण आया।।
पंचमेरु के अस्सी जिन चैत्यालय को वन्दन करलूँ।
भक्ति भाव से पूजन करके मैं भव सागर दुख हरलूँ।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरु सम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो पुष्पं नि. स्वाहा।

जग के अनगिनती द्रव्यों को पाकर तृप्त न हो पाया।
इसीलिये निर्लोभ वृत्ति नैवेद्य प्राप्त करने आया।।पंचमेरु०।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरु सम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो नैवेद्यं नि. स्वाहा।

अन्धकार में मार्ग भूलकर भटक भटक अति दुख पाया।
सम्यक्ज्ञान प्रकाश प्राप्त करने को यह दीपक लाया।।पंचमेरु०।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरु सम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो दीपं नि. स्वाहा।

विकट जगत जंजाल कर्ममय इसको तोड़ नहीं पाया।
आत्म ध्यान की ध्यान अग्नि में कर्म जलाने मैं आया।।पंचमेरु०।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरु सम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो धूपं नि. स्वाहा।

भव अटवी में अटका अब तक नहीं धर्म का फल पाया।
चिदानन्द चैतन्य स्वभावी मोक्ष प्राप्त करने आया।।पंचमेरु०।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरु सम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो फलं नि. स्वाहा।

क्षमा शील संयम व्रत तप शुचि विनय सत्य उर में लाया।
निज अनंत सुख पाने को प्रभु मैं वसुद्रव्य अर्घ लाया।।पंचमेरु०।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरु सम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जम्बूद्वीप सुमेरु सुदर्शन परम पूज्य अति मन भावन।
भू पर भद्रशाल वन, पाँच शतक योजन पर नन्दन वन।।
साढ़े बासठ सहस्त्र योजन ऊँचा है सौमनस सुवन।
फिर छत्तीस सहस्त्र योजन की ऊँचाई पर पाण्डुक वन।।

चारों वन की चार दिशा में एक एक जिन चैत्यालय।
सोलह चैत्यालय हैं अनुपम विनय सहित वन्दूँ जय जय।।

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपसुदर्शनमेरु सम्बन्धि षोडशजिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं नि. स्वाहा।

खण्ड धातकी पूर्व दिशा में विजय मेरु पर्वत पावन।
भू पर भद्रशाल वन पाँच शतक योजन पर नंदन वन।।
साढ़े पचपन सहस्त्र योजन ऊँचा है सौमनस सुवन।
अट्ठाईस सहस्त्र योजन की ऊँचाई पर पांडुक वन।।चारों०।।

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीप पूर्व दिशा विजयमेरु सम्बन्धि षोडश जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं नि. स्वाहा।

खण्ड धातकी पश्चिम दिशि में अचल मेरु पर्वत सुन्दर।
विजयमेरु सम इस पर भी हैं सोलह चैत्यालय मन हर।।
प्रातिहार्य आठों वसुमंगल द्रव्यों से जिनगृह शोभित।
देव इन्द्र विद्याधर चक्री दर्शन कर होते हर्षित।।चारों०।।

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीप पश्चिमदिशा अचलमेरु सम्बन्धि षोडश जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं नि. स्वाहा।

पुष्करार्ध की पूर्व दिशा में मंदिर मेरु महासुखमय।
विजयमेरु सम इसकी रचना सोलह चैत्यालय जय जय।।
चन्द्र सूर्य सम कान्ति सहित हैं रत्नमयी प्रतिमा से युक्त।
दश प्रकार के कल्प वृक्ष की मालाओं से हैं संयुक्त ।।चारों०।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपपूर्वदिशा मंदिरमेरुसम्बन्धि षोडशजिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं नि. स्वाहा।

पुष्करार्ध की पश्चिम दिशि में विद्युन्माली मेरु महान।
विजयमेरु सम ही रचना है सोलह चैत्यालय छविमान।।
सुर विद्याधर असुर सदा ही पूजन करने आते हैं।
चारण ऋद्धि धारि मुनि भी दर्शन को आते जाते हैं।।चारों०।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीप पश्चिम दिशा विद्युन्माली मेरु सम्बन्धि जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

एक लाख योजन का जम्बूद्वीप लोक के मध्य प्रधान।
चार लाख योजन का सुन्दर द्वीप धात की खण्ड महान।।
सोलह लाख सुयोजन का है पुष्कर द्वीप अपूर्व ललाम।
इनमें पंचमेरु हैं अनुपम परम सुहावन हैं शुभ नाम।।
सूर्य चन्द्र देते प्रदक्षिणा करते निश दिन सतत प्रणाम।
एक मेरु सम्बन्धी सोलह पंचमेरु अस्सी जिन धाम।।
एक शतक अर अर्ध शतक योजन लम्बे चौड़े जिन धाम।
पौन शतक योजन ऊँचे हैं बने अकृत्रिम भव्य ललाम।।
एक एक में बिम्ब एकसौ आठ विराजित हैं मनहर।
आठ सहस्त्र छः सौ चालीस हैं श्री अरहन्त मूर्ति सुन्दर।।
धनुष पांच सौ पद्मासन हैं गूंज रहा है जय जयगान।
नृत्य वाद्य गीतों से झंकृत दशों दिशायें महिमावान।।
तीर्थंकर के जन्मोत्सव की सदा गूँजती जय जयकार।
धन्य धन्य श्री जिन शासन की महिमा जग में अपरम्पार।।
नहीं शक्ति हममें जाने की यहीं भाव पूजन करते।
पुष्पांजलि व्रत की महिमा से भव भव के पातक हरते।।
पंचमेरु की पूजा करके निज स्वभाव में आजाऊँ।
भेद ज्ञान की नवल ज्योति से सम्यग्दर्शन प्रगटाऊँ।।
सम्यक्ज्ञान चरित्र धार मुनि बन स्वरूप में रम जाऊँ।
वसु कर्मों का सर्वनाश कर सिद्ध शिला पर जम जाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपसम्बन्धि सुदर्शन, विजय, अचल, मन्दिर, विधुन्माली पंचमेरुसंबन्धी अस्सीजिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो पूर्णार्घ्यं नि. स्वाहा।

(दोहा)

पंचमेरु जिन धाम की महिमा अगम अपार।
पुष्पांजलि व्रत जो करें हो जायें भव पार।।

नन्दीश्वरद्वीप पूजन - 1

(अडिल्ल)

सरब परवमें बड़ो अठाई परव है।
नन्दीश्वर सुर जाँहि लेय वसु दरव है।।
हमैं सकति सो नांहि इहाँ करि थापना।
पूजैं जिनगृह-प्रतिमा है हित आपना।।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिशि द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमा समूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिशि द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमा समूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिशि द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमा समूह ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(अवतार)

कंचन-मणि-मय-भृंगार, तीरथ-नीर भरा।
तिहुँ धार दयी निरवार, जामन मरन जरा।।
नन्दीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करों।
वसु दिन प्रतिमा अभिराम, आनंद-भाव धरों।।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिशि द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

भव-तप-हर शीतल वास, सो चन्दन नाहीं।
प्रभु यह गुन कीजै साँच, आयो तुम ठाहीं।।नन्दी.।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिशि द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो संसारताप विनाशनाय चदनं नि. स्वाहा।

उत्तम अक्षत जिनराज, पुंज धरे सोहै।
सब जीते अक्ष-समाज-तुम सम अरु को है।।नन्दी.।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिशि द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

तुम काम विनाशक देव, ध्याऊँ फूलनसौं।
लहूँ शील-लच्छमी एव, छूटों सूलनसौं।।
नन्दीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करों।
वसु दिन प्रतिमा अभिराम, आनंद-भाव धरों।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिशि द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

नेवज इन्द्रिय-बलकार, सो तुमने चूरा।
चरु तुम ढिंग सोहैं सार, अचरज है पूरा।।नन्दी.।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिशि द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

दीपक की ज्योति-प्रकाश, तुम तन माँहि लसै।
टूटै कर-मन की राश, ज्ञान-कणी दरसै।।नन्दी.।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिशि द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

कृष्णागरु-धूप-सुवास, दश-दिशि नारि वरै।
अति हरष-भाव परकाश, मानों नृत्य करै।।नन्दी.।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिशि द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं नि. स्वाहा।

बहुविधि फल ले तिहुँ काल, आनन्द राचत हैं।
तुम शिव-फल देहु दयाल, तुहि हम जाचत हैं।।नन्दी.।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिशि द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

यह अरघ कियो निज-हेत, तुमको अरपतु हों।
'द्यानत' कीज्यो शिव-खेत, भूमि समरपितु हों।।नन्दी.।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिशि द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

कार्तिक फाल्गुन साढ के अन्त आठ दिन माहिं।
नन्दीश्वर सुर जात हैं, हम पूजैं इह ठाहिं।।

एकसौ त्रेसठ कोडि जोजन महा।
लाख चौरासिया एक दिश में लहा।।
आठमों द्वीप नन्दीश्वरं भास्वरं।
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं।।
चार दिशि चार अंजनगिरी राजहीं।
सहस चौरासिया एक दिश छाजहीं।।
ढोल सम गोल ऊपर तले सुन्दरं।
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं।।
एकइक चार दिशि चार शुभ बावरी।
एक इक लाख जोजन अमल-जल भरी।।
चहुँ दिशि चार वन लाख जोजन वरं।
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं।।
सोल वापीन मधि सोल गिरि दधिमुखं।
सहस दश महा जोजन लखत ही सुखं।।
बावरी कौन दो माहि दो रति करं।
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं।।
शैल बत्तीस इक सहस जोजन कहे।

चार सोलै मिलैं सर्व बावन लहे।।
एक इक सीस पर एक जिन मंदिरं।
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं।।
बिम्ब अठ एकसौ रतनमयी सोहही।
देव देवी सरव नयन मन मोहही।।
पाँचसौ धनुष तन पद्म-आसन परं।
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं।।
लाल नख-मुख नयन श्याम अरु स्वेत हैं।
श्याम रंग भोंह सिर-केश छबि देत हैं।।
वचन बोलत मनों हँसत कालुष हरं।
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं।।
कोटि-शशि-भान-दुति-तेज छिप जात है।
महा - वैराग - परिणाम ठहरात है।।
वयन नहिं कहैं लखि होत सम्यक्धरं।
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं।।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो अनर्घपद प्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

नन्दीश्वर-जिन-धाम, प्रतिमा-महिमा को कहै।
'द्यानत' लीनो नाम, यही भगति शिव-सुख करै।।

(परिपुष्पान्जलिं क्षिपेत्)

श्री नन्दीश्वरद्वीप पूजन - 2

अष्टम द्वीप श्री नन्दीश्वर आगम में वर्णित पावन।
चार दिशा में तेरह-तेरह जिन चैत्यालय हैं बावन।।
एक-एक में बिम्ब एक सौ आठ रत्नमय हैं अति भव्य।
प्रातिहार्य हैं अष्ट मनोहर आठ-आठ हैं मंगल द्रव्य।।
पाँच सहस्त्र अरु छः सौ सोलह प्रतिमाओं को करूँ प्रणाम।
धनुष पाँचसौ पद्मासन अरिहन्त देव मुद्रा अभिराम।।
अष्टान्हिका पर्व में इन्द्रादिक सुर जा करते पूजन।
भाव सहित जिन प्रतिमा दर्शन से होता सम्यक् दर्शन।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशजिनालयस्थ जिनप्रतिमा समूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।
ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशजिनालयस्थ जिनप्रतिमा समूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति ।
ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशजिनालयस्थ जिनप्रतिमा समूह ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट् ।

समकित जल की पावन धारा निज उर अन्तर में लाऊँ।
मिथ्याभ्रम की धूल हटाऊँ निज स्वरूप को चमकाऊँ।।
नन्दीश्वर के बावन जिन चैत्यालय वन्दूँ हर्षाऊँ।
अष्टमद्वीप मनोरम जिन प्रतिमायें पूजूँ सुख पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिशासुद्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

क्षमाभाव का शुचिमय चन्दन उर अन्तर में भर लाऊँ।
क्रोध कषाय नष्ट करके मैं शांति सिंधु प्रभु बन जाऊँ।।नन्दी०।।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिशासुद्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो भवताप विनाशनाय चदनं नि. स्वाहा।

मार्दव भाव परम उपकारी भावपूर्ग अक्षत लाऊँ।
मान कषाय नष्ट करके मैं शुद्धातम के गुण गाऊँ।।नन्दी०।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिशासुद्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतं नि. स्वाहा।

शुद्ध आर्जव भाव पुष्प से सजा हृदय को मैं आऊँ।
सर्वनाश माया कषाय का करूँ सरलता को पाऊँ।।
नन्दीश्वर के बावन जिन चैत्यालय वन्दूँ हर्षाऊँ।
अष्टमद्वीप मनोरम जिन प्रतिमायें पूजूँ सुख पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिशासुद्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

सत्य शौच मय भाव भक्ति नैवेद्य हृदय में भर लाऊँ।
लोभ कषाय नाश करने को सन्तोषामृत पी जाऊँ।।नन्दी०।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिशासुद्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

द्रव्य भाव संयम तप ज्योति जगा आतम में रम जाऊँ।
मैं अनादि अज्ञान नाश कर सम्यक्ज्ञान रत्न पाऊँ।।नन्दी०।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिशासुद्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

त्यागभाव आकिंचन पाऊँ शुद्ध स्वभाव धूप लाऊँ।
परविभावपरणतिको क्षयकर निजपरणति वैभव पाऊँ।।नन्दी०।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिशासुद्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं नि. स्वाहा।

ब्रह्मचर्य का फल पाने को रत्नत्रय पथ पर आऊँ।
निज स्वरूप में चर्या करके महामोक्ष फल को पाऊँ।।नन्दी०।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिशासुद्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

संवर और निर्जरा द्वारा कर्म रहित मैं हो जाऊँ।
आस्रव बंध नाश कर स्वामी मैं अनर्घ पदवी पाऊँ।।नन्दी०।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिशासुद्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

शुद्ध आर्जव भाव पुष्प से सजा हृदय को मैं आऊँ।
सर्वनाश माया कषाय का करूँ सरलता को पाऊँ।।
नन्दीश्वर के बावन जिन चैत्यालय वन्दूँ हर्षाऊँ।
अष्टमद्वीप मनोरम जिन प्रतिमायें पूजूँ सुख पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिशासुद्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

सत्य शौच मय भाव भक्ति नैवेद्य हृदय में भर लाऊँ।
लोभ कषाय नाश करने को सन्तोषामृत पी जाऊँ।।नन्दी०।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिशासुद्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

द्रव्य भाव संयम तप ज्योति जगा आतम में रम जाऊँ।
मैं अनादि अज्ञान नाश कर सम्यक्ज्ञान रत्न पाऊँ।।नन्दी०।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिशासुद्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

त्यागभाव आकिंचन पाऊँ शुद्ध स्वभाव धूप लाऊँ।
परविभावपरणतिको क्षयकर निजपरणति वैभव पाऊँ।।नन्दी०।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिशासुद्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं नि. स्वाहा।

ब्रह्मचर्य का फल पाने को रत्नत्रय पथ पर आऊँ।
निज स्वरूप में चर्या करके महामोक्ष फल को पाऊँ।।नन्दी०।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिशासुद्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

संवर और निर्जरा द्वारा कर्म रहित मैं हो जाऊँ।
आस्रव बंध नाश कर स्वामी मैं अनर्घ पदवी पाऊँ।।नन्दी०।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिशासुद्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

मध्य लोक में एक लाख योजन का जम्बूद्वीप प्रथम।
द्वीप धातकी खण्ड दूसरा तीजा पुष्करवर अनुपम।।
चौथा द्वीप वारुणीवर है द्वीप क्षीरवर है पंचम।
षष्टम् घृतवर द्वीप मनोहर द्वीप इक्षुवर है सप्तम।।
अष्टम् द्वीप श्री नन्दीश्वर अद्वितीय शोभाधारी।
योजन कोटि एकसौ त्रेसठ लख चौरासी विसतारी।।
पूरब पश्चिम उत्तर-दक्षिण दिशि में है अंजनगिरिचार।
इनके भव्य शिखर पर जिन चैत्यालय चारों हैं सुखकार।।
चहुँ दिशि चार चार वापी हैं लाख लाख योजन जलमय।
इनमें सोलह दधिमुख पर्वत जिन पर सोलह चैत्यालय।।
सोलह वापी के दो कोणों पर इक-इक रतिकर पर्वत।
इन पर हैं बत्तीस जिनालय जिनकी है शोभा शाश्वत।।
कृष्ण वर्ण अंजनगिरि चौरासी सहस्त्र योजन ऊँचे।
श्वेत वर्ण के दधिमुख पर्वत दस सहस्त्र योजन ऊँचे।।
लाल वर्ण के रतिकर पर्वत एक सहस्त्र योजन ऊँचे।
सभी ढोल सम गोल मनोहर पर्वत हैं सुन्दर ऊँचे।।
चारों दिशि में महा मनोरम कुल जिन चैत्यालय बावन।
सभी अकृत्रिम अति विशाल हैं उन्नत परम पूज्य पावन।।
जिन भवनों का एक शतक योजन लम्बाई का आकार।
अर्ध शतक चौड़ाई पचहत्तर योजन ऊँचा विस्तार।।
चौसठ वन की सुषमा से शोभित हैं अनुपम नन्दीश्वर।
है अशोक सप्तछद चम्पक आम्र नाम के वन सुन्दर।।

इन सब में अबतंश आदि रहते हैं चौसठ देव प्रबल।
गाते नन्दीश्वर की महिमा अरिहंतों का यश उज्ज्वल।।
देव देवियाँ नृत्य वाद्य गीतों से करते जिन पूजन।
जय ध्वनि से आकाश गुंजाते थिरक-थिरक करते नर्तन।।
कार्तिक फागुन अरु आषाढ़ में इन्द्रादिक सुर आते हैं।
अन्तिम आठ दिवस पूजन कर मन में अति हर्षाते हैं।।
दो दो पहर एक इक दिशि में आठ पहर करते पूजन।
धन्य-धन्य नन्दीश्वर रचना धन्य धन्य पूजन अर्चन।।
ढाई द्वीप तक मनुज क्षेत्र है आगे होता नहीं गमन।
ढाई द्वीप से आगे तो जा सकते हैं केवल सुरगण।।
शक्तिहीन हम इसीलिए करते हैं यहीं भाव पूजन।
नन्दीश्वर की सब प्रतिमाओं को है भाव सहित वन्दन।।
भव-भव के अघ मिटें हमारे आत्म प्रतीत जगे मन में।
शुद्धभाव अभिवृद्धि सहज हो समकित पायें जीवन में।।
यही विनय है यही प्रार्थना यही भावना है भगवान।
नन्दीश्वर की पूजन करके करें आत्मा काही ध्यान।।
आत्म ध्यान की महाशक्ति से वीतराग अरिहंत बनें।
घाति अघाति कर्म सब क्षयकर मुक्तिकंत भगवंत बनें।।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिशासुद्विपंचाशज्जिनालयस्थ पाँच हजार छः सौ सोलह जिनप्रतिमाभ्यो जिन पूर्णार्घ्य नि. स्वाहा।

भाव सहित नन्दीश्वर की पूजन से होता है कल्याण।
स्वर्ग मोक्ष पद मिल जाता है धर्म ध्यान से सहज महान।।

इत्याशीर्वादः

श्री रक्षाबन्धन पर्व पूजन

जय अकम्पनाचार्य आदि सात सौ साधु मुनिव्रंत धारी।
बलि ने कर नरमेध यज्ञ उपसर्ग किया भीषण भारी।।
जय जय विष्णुकुमार महामुनि ऋद्धि विक्रिया के धारी।
किया शीघ्र उपसर्ग निवारण वात्सल्य करुणाधारी।।
रक्षा-बन्धन पर्व मना मुनियों का जय जयकार हुआ।
श्रावण शुक्ल पूर्णिमा के दिन घर घर मंगलाचार हुआ।।
श्री मुनिचरण कमल मैं वन्दूं पाऊँ प्रभु सम्यक्दर्शन।
भक्तिभाव से पूजन करके निज स्वरूप में रहूँ मगन।।

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्य आदि सप्तशतकमुनि अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।
ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्य आदि सप्तशतकमुनि अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति ।
ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्य आदि सप्तशतकमुनि अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

जन्म मरण के नाश हेतु प्रासुक जल करता हूँ अर्पण।
राग-द्वेष परणति अभावकर निज परणति में करूँ रमण।।
श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि सप्त शतक को करूँ नमन।
मुनि उपसर्ग निवारक विष्णुकुमार महा मुनि को वन्दन।।

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनिभ्य जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

भव संताप मिटाने को मैं चन्दन करता हूँ अर्पण।
देह भोग भव से विरक्त हो निज परणति में करूँ रमण।।श्री०।।

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनिभ्य भवताप विनाशनाय चदनं नि. स्वाहा।

अक्षयपद अखण्ड पाने को अक्षत धवल करूँ अर्पण।
हिंसादिक पापों को क्षय कर निज परणति में करूँ रमण।।श्री०।।

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनिभ्य अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतं नि. स्वाहा।

कामबाण विध्वंस हेतु मैं सहज पुष्प करता अर्पण।
क्रोधादिक चारों कषाय हर निज परणति में करूँ रमण।।
श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि सप्त शतक को करूँ नमन।
मुनि उपसर्ग निवारक विष्णुकुमार महा मुनि को वन्दन।।

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनिभ्य कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

क्षुधा रोग के नाश हेतु नैवेद्य सरस करता अर्पण।
विषयभोग की आकांक्षा हर निज परणति में करूँ रमण।।श्री०।।

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनिभ्य क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

चिर मिथ्यात्व तिमिर हरने को दीप ज्योति करता अर्पण।
सम्यक्‌दर्शन का प्रकाश पा निज परणति में करूँ रमण।।श्री०।।

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनिभ्य मोहान्धकारविनाशनायदीपं नि. स्वाहा।

अष्टकर्म के नाश हेतु यह धूप सुगन्धित है अर्पण।
सम्यक्‌ज्ञान हृदय प्रगटाऊँ निज परणति में करूँ रमण।।श्री०।।

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनिभ्य अष्टकर्म दहनाय धूपं नि. स्वाहा।

मुक्ति प्राप्ति हेतु उत्तम फल चरणों में करता अर्पण।
मैं सम्यक्‌चारित्र प्राप्तकर निज परणति में करूँ रमण।।श्री०।।

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनिभ्य मोक्षफल प्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

शाश्वत पद अनर्घ पाने को उत्तम अर्घ करूँ अर्पण।
रत्नत्रय की तरणी खेऊँ निज परणति में करूँ रमण।।श्री०।।

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनिभ्य अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

श्री वात्सल्य अंग की महिमा अपरम्पार।
विष्णुकुमार मुनीन्द्र की गूंजी जय जयकार।।

उज्जयनी नगरी के नृप श्री वर्मा के मंत्री थे चार।
बलि, प्रहलाद, नमुचि वृहस्पति चारों अभिमानी सविकार।।
जब अकम्पनाचार्य संघ मुनियों का नगरी मे आया।
सात शतक मुनि के दर्शनकर नृप श्री वर्मा हर्षाया।।
सब मुनि मौन ध्यान में रत, लख बलि आदिक ने निन्दा की।
कहा कि मुनि सब मूर्ख, इसी से नहीं तत्व की चर्चा की।।
किन्तु लौटते समय मार्ग में श्रुत सागर मुनि दिखलाये।
वाद विवाद किया श्री मुनि से हारे, जीत नहीं पाये।।
अपमानित होकर निशि में मुनि पर प्रहार करने आये।
खड्ग उठाते ही कीलित हो गये हृदय में पछताये।।
प्रातः होते ही राजा ने आकर मुनि को किया नमन।
देश निकाला दिया मंत्रियों को तब राजा ने तत्क्षण।।
चारों मंत्री अपमानित हो पहुँचे नगर हस्तिनापुर।
राजा पद्मराय को अपनी सेवाओं से प्रसन्न कर।।
मुँह मांगा वरदान नृपति ने बलि को दिया तभी तत्पर।
जब चाहूँगा तब लेलूँगा, बलि ने कहा नम्र होकर।।
फिर अकम्पनावार्य सात सौ मुनियों सहित नगर आये।
बलि के मन में मुनियों की हत्या के भाव उमड़ आये।।
कुटिल चाल चल बलि ने नृप से आठ दिवस का राज्य लिया।
भीषण अग्नि जलाई चारों और द्वेष से कार्य किया।।
हाहाकार मचा जगती में, मुनि स्वध्यान में लीन हुए।
नश्वर देह भिन्न चेतन से, यह विचार निज लीन हुए।।
यह नर मेघ यज्ञ रच बलि ने किया दान का ढ़ोंग विचित्र।
दान किमिच्छक देता था, पर मन था अतिहिंसक अपवित्र।।

पद्मराय नृप के लघु भाई, विष्णकुमार महामुनिवर।
वात्सल्य का भाव जगा, मुनियों पर संकट का सुनकर।।
किया गमन आकाश मार्ग से, शीघ्र हस्तिनापुर आये।
ऋद्धि विक्रिया द्वारा याचक, वामन रूप बना लाये।।
बलि से मांगी तीन पाँव भू, बलिराजा हँस कर बोला।
जितनी चाहो उतनी ले लो, वामन मूर्ख बड़ा भोला।।
हंसकर मुनि ने एक पाँव में ही सारी पृथ्वी नापी।
पग द्वितीय में मानुषोत्तर पर्वत की सीमा नापी।।
ठौर न मिला तीसरे पग को, बलि के मस्तक पर रक्खा।
क्षमा क्षमा कह कर बलि ने मुनि चरणों में मस्तक रक्खा।।
शीतल ज्वाला हुई अग्नि की श्री मुनियों की रक्षा की।
जय जयकार धर्म का गूंजा, वात्सल्य की शिक्षा दी।।
नवधा भक्ति पूर्वक सब ने मुनियों को आहार दिया।
बलि आदिक का हुआ हृदय परिवर्तन जय जयकार किया।।
रक्षा सूत्र बांधकर तब जन जन ने मंगलाचार किये।
साधर्मी वात्सल्य भाव से, आपस में व्यवहार किये।।
समकित के वात्सल्य अंग की महिमा प्रगटी इस जग में।
रक्षा बन्धन पर्व इसी दिन से प्रारम्भ हुआ जग में।।
श्रावण शुक्ल पूर्णिमा का दिन रक्षासूत्र बंधा कर में।
वात्सल्य की प्रभावना का आया अवसर घर घर में।।
प्रायश्चित ले विष्णुकुमार ने पुनः व्रत ले तप ग्रहण किया।
अष्टकर्म बन्धन को हर कर इस भव से ही मोक्ष लिया।।
सब मुनियों ने भी अपने अपने परिणामों के अनुसार।
स्वर्ग मोक्ष पद पाया जग में हुई धर्म की जय जयकार।।

धर्म भावना रहे हृदय में, पापों के प्रतिकूल चलूँ।
रहे शुद्ध आचरण सदा ही, धर्म मार्ग अनुकूल चलूँ।।
आत्म ज्ञान रुचि जगे हृदय में, निज पर को मैं पहिचानूँ।
समकित के आठों अंगों की, पावन महिमा को जानूँ।।
तभी सार्थक जीवन होगा सार्थक होगी यह नर देह।
अन्तर घट में जब बरसेगा पावन परम ज्ञान रस मेह।।
पर से मोह ममत्व न होगा, होगा निज आतम से नेह।
तब ही पायेंगे अखंड अविनाशी निज सुखमय शिवगेह।।
रक्षा-बन्धन पर्व धर्म का, रक्षा का त्योंहार महान।
रक्षा-बन्धन पर्व ज्ञान का, रक्षा का त्योंहार प्रधान।।
रक्षा-बन्धन पर्व चरित का, रक्षा का त्योंहार महान।
रक्षा-बन्धन पर्व आत्म का, रक्षा का त्योंहार प्रधान।।
श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि सात शतक को करूँ नमन।
मुनि उपसर्ग निवारक विष्णुकुमार महामुनि को वन्दन।।

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादि सप्तशतक मुनिभ्यो: पूर्णार्घ्यं नि. स्वाहा।

रक्षा बन्धन पर्व पर श्री मुनि पद उर धार।
मन वच तन जो पूजते, पाते सौख्य अपार।।

इत्याशीर्वादः

श्री वीरशासन जयन्ती पूजन

वर्धमान अतिवीर वीर प्रभु सन्मति महावीर स्वामी।
वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वर अन्तिम तीर्थंकर नामी।।
श्री अरिहंतदेव मंगलमय स्वपर प्रकाशक गुणधामी।
सकल लोक के ज्ञाता दृष्टा महापूज्य अन्तर्यामी।।
महावीर शासन का पहला दिन श्रावण कृष्णा एकम्।
शासन वीर जयन्ती आती है प्रतिवर्ष सुपावनतम।।
विपुलाचल पर्वत पर प्रभु के समवशरण में मंगलकार।
खिरी दिव्य ध्वनि शासन वीर जयन्ती पर्व हुआ साकार।।
प्रभु चरणाम्बुज पूजन करने का आया उर में शुभ भाव।
सम्यक्ज्ञान प्रकाश मुझे दो, राग-द्वेष का करूँ अभाव।।

ॐ ह्रीं श्री सन्मति वीर जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।
ॐ ह्रीं श्री सन्मति वीर जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति ।
ॐ ह्रीं श्री सन्मति वीर जिनेन्द्र ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

भाग्यहीन नर रत्न स्वर्ण को जैसे प्राप्त नहीं करता।
ध्यानहीन मुनि निज आतम का त्यों अनुभवन नहीं करता।।
शासन वीर जयन्ती पर जल चढ़ा वीर का ध्यान करूँ।
खिरी दिव्य ध्वनि प्रथम देशना सुन अपना कल्याण करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

विविध कल्पना उठती मन में, वे विकल्प कहलाते हैं।
बाह्य पदार्थों में ममत्व मन के संकल्प रुलाते हैं।।
शासन वीर जयन्ती पर चंदन अर्पित कर ध्यान करूँ।।खिरी०।।

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय भवताप विनाशनाय चंदनं नि. स्वाहा।

अंतरंग बहिरंग परिग्रह त्यागूँ, मैं निर्ग्रन्थ बनूँ।
जीवन मरण, मित्र अरि सुख दुख लाभ हानि में साम्य बनूँ।।
शासन वीर जयन्ती पर कर अक्षत भेंट स्वध्यान करूँ।
खिरी दिव्य ध्वनि प्रथम देशना सुन अपना कल्याण करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतं नि. स्वाहा।

शुद्ध सिद्ध ज्ञानादि गुणों से मैं समृद्ध हूँ देह प्रमाण।
नित्य असंख्यप्रदेशी निर्मल हूँ अमूर्तिक महिमावान।।
शासन वीर जयन्ती पर, कर भेंट पुष्प निज ध्यान करूँ।।खिरी०।।

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

परम तेज हूँ परम ज्ञान हूँ परम पूर्ण हूँ ब्रह्म स्वरूप।
निरालम्ब हूँ निर्विकार हूँ निश्चय से मैं परम अनूप।।
शासन वीर जयन्ती पर, नैवेद्य चढ़ा निज ध्यान करूँ।।खिरी०।।

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

स्वपर प्रकाशक केवलज्ञानमयी, निज मूर्ति अमूर्ति महान।
चिदानन्द टंकोत्कीर्ण हूँ ज्ञान ज्ञेय ज्ञाता भगवान।।
शासन वीर जयन्ती पर मैं दीप चढ़ा निज ध्यान करूँ।।खिरी०।।

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

द्रव्य कर्म ज्ञानावरणादिक देहादिक नोकर्म विहीन।
भाव कर्म रागादिक से मैं पृथक आत्मा ज्ञान प्रवीण।।
शासन वीर जयन्ती पर, मैं धूप चढ़ा निजध्यान करूँ।।खिरी०।।

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं नि. स्वाहा।

कर्म मल रहित शुद्ध ज्ञानमय, परममोक्ष है मेरा धाम।
भेद ज्ञान की महाशक्ति से, पाऊंगा अनन्त विश्राम।।
शासन वीर जयन्ती पर, फल चढ़ा निजातमध्यान करूँ।।खिरी०।।

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

मात्र वासनाजन्य कल्पना है पर द्रव्यों में सुख बुद्धि।
इन्द्रियजन्य सुखों के पीछे पाई किंचित नहीं विशुद्धि।।
शासन वीर जयन्ती पर मैं अर्घ चढ़ा निज ध्यान करूँ।।खिरी०।।

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

विपुलाचल के गगन को वन्दू बारम्बार।
सन्मति प्रभु की दिव्य ध्वनि जहाँ हुई साकार।।

महावीर प्रभु दीक्षा लेकर मौन हुए तप संयम धार।
परिषह उपसर्गों को जय कर देश-देश में किया विहार।।
द्वादश वर्ष तपस्या करके ऋजुकूला सरि तट आये।
क्षपक श्रेणि चढ़ शुक्ल ध्यान से कर्मघातिया विनशाए।।
स्व पर प्रकाशक परम ज्योतिमय प्रभु को केवलज्ञान हुआ।
इन्द्रादिक को समवसरण रच मन में हर्ष महान हुआ।।
बारह सभा जुड़ी अति सुन्दर, सबके मन का कमल खिला।
जन मानस को प्रभु की दिव्य ध्वनि का, किन्तु न लाभ मिला।।
छ्यासठ दिन तक रहे मौन प्रभु, दिव्यध्वनि का मिला न योग।
अपने आप स्वयं मिलता है, निमित्त नैमित्तिक संयोग।।
राजगृही के विपुलाचल पर प्रभु का समवशरण आया।
अवधिज्ञान से जान इन्द्र ने गणधर का अभाव पाया।।
बड़ी युक्ति से इन्द्रभूति गौतम ब्राह्मण को वह लाया।
गौतम ने दीक्षा लेते ही ऋषि गणधर का पद पाया।।
तत्क्षण खिरी दिव्यध्वनि प्रभु की द्वादशांगमय कल्याणी।
रच डाली अन्तरमुहुर्त में, गौतम ने श्री जिनवाणी।।
सात शतक लघु और महाभाषा अष्टादश विविध प्रकार।
सब जीवों ने सुनी दिव्य ध्वनि अपने उपादान अनुसार।।

विपुलाचल पर समवसरण का हुआ आज के दिन विस्तार।
प्रभु की पावन वाणी सुनकर गूंजी नभ में जय जयकार।।
जन जन में नव जागृति जागी मिटा जगत का हाहाकार।
जियो और जीने दो का जीवन संदेश हुआ साकार।।
धर्म अहिंसा सत्य और अस्तेय मनुज जीवन का सार।
ब्रह्मचर्य अपरिग्रह से ही होगा जीव मात्र से प्यार।।
घृणा पाप से करो सदा ही किन्तु नहीं पापी से द्वेष।
जीव मात्र को निज सम समझो यही वीर का था उपदेश।।
इन्द्रभूति गौतम ने गणधर बनकर गूंथी जिनवाणी।
इसके द्वारा परमात्मा बन सकता कोई भी प्राणी।।
मेघ गर्जना करती श्री जिनवाणी का बह चला प्रवाह।
पाप ताप संताप नष्ट हो, गये मोक्ष की जागी चाह।।
प्रथमं, करणं, चरणं, द्रव्यं ये अनुयोग बताये चार।
निश्चय नय सत्यार्थ बताया, असत्यार्थ सारा व्यवहार।।
तीन लोक षट् द्रव्यमयी है सात तत्व की श्रद्धा सार।
नव पदार्थ छह लेश्या जानो, पंच महाव्रत उत्तम धार।।
समिति गुप्ति चारित्र पालकर तप संयम धारो अविकार।
परम शुद्ध निज आत्म तत्व, आश्रय से हो जाओ भव पार।।
उस वाणी को मेरा वन्दन उसकी महिमा अपरम्पार।
सदा वीर शासन की पावन, परम जयन्ती जय जयकार।।
वर्धमान अतिवीर वीर की पूजन का है हर्ष अपार।
काल लब्धि प्रभु मेरी आई, शेष रहा थोड़ा संसार।।

(दोहा)

दिव्य ध्वनि प्रभु वीर की, देती सौख्य अपार।
आत्मज्ञान की शक्ति से, खुले मोक्ष का द्वार।।

इत्याशीर्वादः

श्री अक्षय तृतीया पूजन

अक्षय तृतीया पर्व दान का ऋषभदेव ने दान लिया।
नृप श्रेयांस दान दाता थे, जगती ने यशगान किया।।
अहो दान की महिमा, तीर्थंकर भी लेते हैं आहार।
होते पंचाश्चर्य पुण्य का भरता है अपूर्व भण्डार।।
मोक्षमार्ग के महाव्रती को, भाव सहित जो देते दान।
निज स्वरूप जप वह पाते हैं निश्चित शाश्वत पद निर्वाण।।
दान तीर्थ के कर्ता नृप श्रेयांस हुए प्रभु के गणधर।
मोक्ष प्राप्त कर सिद्ध लोक में पाया शिवपद अविनश्वर।।
प्रथम जिनेश्वर आदिनाथ प्रभु तुम्हें नमन है बारम्बार।
गिरि कैलाश शिखर से तुमने लिया सिद्ध पद मंगलकार।।
नाथ आपके चरणाम्बुज में श्रद्धा सहित प्रणाम करूँ।
त्याग धर्म की महिमा गाऊँ, मैं सिद्धों का धाम वरूँ।।
शुभ बैशाख शुक्ल तृतिया का दिवस पवित्र महान हुआ।
दान धर्म की जय जय गूंजी अक्षय पर्व प्रधान हुआ।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति ।
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

कर्मोदय से प्रेरित होकर विषयों का व्यापार किया।
उपादेय को भूल हेय तत्वों से मैंने प्यार किया।।
जन्म मरण दुख नाश हेतु मैं आदि नाथ प्रभु को ध्याऊँ।
अक्षय तृतीया पर्व दान का नृप श्रेयांस सुयश गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

मन वच काया की चंचलता कर्म आश्रव करती है।
चार कषायों की छलना ही भव सागर दुख भरती है।।
भवाताप के नाश हेतु मैं आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।
अक्षय तृतीया पर्व दान का नृप श्रेयांस सुयश गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चदनं नि. स्वाहा।

इन्द्रिय विषयों के सुख क्षण भंगुर विद्युतसम चमकअथिर।
पुण्य क्षीण होते ही आते महा असाता के दिन फिर।।
पद अखण्ड की प्राप्ति हेतु मैं आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।।अक्षय०।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

शील विनय व्रत तप धारण करके भी यदि परमार्थ नहीं।
बाह्य क्रियाओं में ही उलझे वह सच्चा पुरुषार्थ नहीं।।
कामबाण के नाश हेतु मैं आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।।अक्षय०।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

विषय लोलुपी भोगों की ज्वाला में जल जल दुख पाता।
मृग तृष्णा के पीछे पागल नर्क निगोदादिक जाता।।
क्षुधा व्याधि के नाश हेतु मैं आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।।अक्षय०।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

ज्ञान स्वरूप आत्मा का जिसको श्रद्धान नहीं होता।
भव वन में ही भटका करता है निर्वाण नहीं होता।।
मोह तिमिर के नाश हेतु मैं आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।।अक्षय०।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

कर्म फलों को वेदन करके सुखी दुखी जो होता है।
अष्ट प्रकार कर्म का बन्धन सदा उसी को होता है।।
कर्म शत्रु के नाश हेतु मैं आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।।अक्षय०।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं नि. स्वाहा।

जो बन्धों से विरक्त होकर बन्धन का अभाव करता।
प्रज्ञाछैनी ले बन्धन को पृथक शीघ्र निज से करता।।
महामोक्ष फल प्राप्ति हेतु मैं आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।।अक्षय०।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय महा मोक्षफल प्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

पर मेरा क्या कर सकता है मैं पर का क्या कर सकता।
यह निश्चय करने वाला ही भव अटवी के दुख हरता।।
पद अनर्घ की प्राप्ति हेतु मैं आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।।अक्षय०।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

चार दान दो जगत में, जो चाहो कल्याण।
औषधि भोजन अभय अरु, सद्शास्त्रों का ज्ञान।।

पुण्य पर्व अक्षय तृतिया का हमें दे रहा है ये ज्ञान।
दान धर्म की महिमा अनुपम श्रेष्ठ दान दे बनो महान।।
दान धर्म की गौरव गाथा का प्रतीक है यह त्योंहार।
दान धर्म का शुभ प्रेरक है सदा दान की जय जयकार।।
आदिनाथ ने अर्द्ध वर्ष तक किये तपस्या मय उपवास।
मिली न विधि फिर अन्तराय होते होते बीते छः मास।।
मुनि आहार दान देने की विधि थी नहीं किसी को ज्ञात।
मौन साधना में तन्मय हो प्रभु विहार करते प्रख्यात।।
नगर हस्तिनापुर के अधिपति सोम और श्रेयांस सुभ्रात।
ऋषभदेव के दर्शन कर कृत कृत्य हुए पुलकित अभिजात।।
श्रेयांस को पूर्व जन्म का स्मरण हुआ तत्क्षण विधिकार।
विधिपूर्वक पड़गाहा प्रभु को दिया इक्षु रस का आहार।।

पंचाश्चर्य हुए प्रांगण में हुआ गगन में जय जयकार।
धन्य धन्य श्रेयान्स दान का तीर्थ चलाया मंगलकार।।
दान पुण्य की यह परम्परा हुई जगत में शुभ प्रारम्भ।
हो निष्काम भावना सुन्दर मन में लेश न हो कुछ दम्भ।।
चार भेद हैं दान धर्म के औषधि शास्त्र अभय आहार।
हम सुपात्र को योग्य दान दें बने जगत में परम उदार।।
धन वैभव तो नाशवान है अतः करें जी भर के दान।
इस जीवन में दान कार्य कर करें स्वयं अपना कल्याण।।
अक्षय तृतीया के महत्व को यदि निज में प्रगटायेंगे।
निश्चित ऐसा दिन आयेगा हम अक्षय फल पायेंगे।।
हे प्रभु आदिनाथ मंगलमय हमको भी ऐसा वर दो।
सम्यक्ज्ञान महान सूर्य का अन्तर में प्रकाश करदो।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ पद प्राप्तये पूर्णार्घ्यं नि. स्वाहा।

(दोहा)

अक्षय तृतीया पर्व की, महिमा अपरम्पार।
त्याग धर्म जो साधते, हो जाते भव पार।।

इत्याशीर्वादः

श्रामण्य में परिणमित संत ऐसी भावना भाते हैं :-

एकाकी विचरूँगा कब शमशान में,
गिरि पर होगा बाघ-सिंह संयोग जब।
अडोल आसन और न मन में क्षोभ हो,
जानूँ पाया परम मित्र संयोग जब।।
अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा।।

–पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी, पंच कल्याणक प्रवचन

श्री दीपमालिका पूजन

महावीर निर्वाण दिवस पर महावीर पूजन करलूँ।
वर्धमान अतिवीर वीर सन्मति प्रभु को वन्दन करलूँ।।
पावापुर से मोक्ष गये प्रभु जिनवर पद अर्चन करलूँ।
जगमग जगमग दिव्यज्योति से धन्य मनुज जीवन करलूँ।।
कार्तिक कृष्ण अमावस्या को शुद्ध भाव मन में भर लूँ।
दीपमालिका पर्व मनाऊँ भव भव के बन्धन हरलूँ।।
ज्ञान सूर्य का चिर प्रकाश ले रत्नत्रय पथ पर बढ़ लूँ।
पर भावों का राग तोड़कर निज स्वभाव में मैं रम लूँ।।

ॐ ह्रीं कार्तिक कृष्ण अमावस्यायां मोक्षमंगल प्राप्त श्रीवर्धमान जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं कार्तिक कृष्ण अमावस्यायां मोक्षमंगल प्राप्त श्रीवर्धमान जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं कार्तिककृष्ण अमावस्यायां मोक्षमंगलप्राप्त श्रीवर्धमान जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

चिदानन्द चैतन्य अनाकुल निज स्वभाव मय जल भर लूँ।
जन्म मरण का चक्र मिटाऊँ भव भव की पीड़ा हर लूँ।।
दीपावलि के पुण्य दिवस पर वर्धमान पूजन कर लूँ।
महावीर अतिवीर वीर सन्मति प्रभु को वन्दन कर लूँ।।

ॐ ह्रीं कार्तिक कृष्ण अमावस्यां मोक्षमंगल प्राप्त श्रीवर्धमान जिनेन्द्र जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

अमल अखंड अतुल अविनाशी निज चन्दन उर में धर लूँ।
चारों गति का ताप मिटाऊँ निज पंचम गति आदर लूँ।।दीपा.।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णअमावस्यां मोक्षमंगलप्राप्त श्रीवर्धमानजिनेन्द्र संसारताप विनाशनाय चदनं नि. स्वाहा।

अजर अमर अक्षय अविकल अनुपम अक्षत पद उर धर लूँ।
भव सागर तर मुक्तिवधु से मैं पावन परिणय कर लूँ।।दीपा.।।

ॐ ह्रीं कार्तिक कृष्णअमावस्यां मोक्ष मंगल प्राप्त श्रीवर्धमान जिनेन्द्र अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

रूप गंध रस स्पर्श रहित निज शुद्ध पुष्प मन में भर लूँ।
कामबाण की व्यथा नाशकर मैं निष्काम रूप धर लूँ।।
दीपावलि के पुण्य दिवस पर वर्धमान पूजन कर लूँ।
महावीर अतिवीर वीर सन्मति प्रभु को वन्दन कर लूँ।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णअमावस्यां मोक्ष मंगल प्राप्त श्रीवर्धमान जिनेन्द्र कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

आत्म शक्ति परिपूर्ण शुद्ध नैवेद्य भाव उर में धर लूँ।
चिर अतृप्ति का रागनाश कर सहज तृप्तनिजपद वरलूँ।।दीपा.।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णअमावस्यां मोक्षमंगल प्राप्त श्रीवर्धमान जिनेन्द्र क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

पूर्ण ज्ञान कैवल्य प्राप्ति हित ज्ञान दीप ज्योतित कर लूँ।
मिथ्या भ्रमतम मोह नाश कर निज सम्यक्त्व प्राप्त कर लूँ।।दीपा.।।

ॐ ह्रीं कार्तिक कृष्णअमावस्यां मोक्ष मंगल प्राप्त श्रीवर्धमानजिनेन्द्रमोहान्धकारविनाशनाय दीपंनि. स्वाहा।

पुण्य पाप की धूप जलाकर घाति अघाति कर्म हर लूँ।
क्रोधमान माया लोभादिक मोह दोष सब क्षय कर लूँ।।दीपा.।।

ॐ ह्रीं कार्तिक कृष्णअमावस्यां मोक्ष मंगल प्राप्त श्रीवर्धमान जिनेन्द्र अष्टकर्म विनाशनाय धुपं नि. स्वाहा।

अमिट अनन्त अचल अविनश्वर श्रेष्ठ मोक्ष पद उर धर लूँ।
अष्ट स्वगुण से युक्त सिद्ध गति पा सिद्धत्व प्राप्त कर लूँ।।दीपा०।।

ॐ ह्रीं कार्तिक कृष्णअमावस्यां मोक्ष मंगल प्राप्त श्रीवर्धमान जिनेन्द्र मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. स्वाहा।

गुण अनन्त प्रगटाऊँ अपने निज अनर्घ पद को वर लूँ।
शुद्ध स्वभावी ज्ञान प्रभावी निज सौन्दर्य प्रगट कर लूँ।।दीपा.।।

ॐ ह्रीं कार्तिक कृष्णअमावस्यां मोक्ष मंगल प्राप्त श्रीवर्धमान जिनेन्द्र अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

श्री पंचकल्याणक

शुभ आषाढ़ शुक्ल षष्ठी को पुष्पोत्तर तज प्रभु आये।
माता त्रिशला धन्य हो गई सोलह सपने दरशाये।।

पन्द्रह मास रत्न बरसे कुण्डलपुर में आनन्द हुआ।
वर्धमान के गर्भोत्सव पर दूर शोक दुख द्वन्द हुआ।।

ॐ ह्रीं आषाढ़ शुक्ल षष्ठयां गर्भ मंगल प्राप्त श्रीवर्धमान जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

चैत्र शुक्ल की त्रयोदशी को सारी जगती धन्य हुई।
नृप सिद्धार्थराज हर्षाये कुण्डलपुरी अनन्य हुई।।
मेरु सुदर्शन पाण्डुक वन में सुरपति ने कर प्रभु अभिषेक।
नृत्य वाद्य मंगल गीतों के द्वारा किया हर्ष अतिरेक।।

ॐ ह्रीं चैत्र शुक्ल त्रयोदश्यां जन्म मंगल प्राप्त श्रीवर्धमान जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

मगसिर कृष्णा दशमी को उर मे छाया वैराग्य अपार।
लौकान्तिक देवों के द्वारा किया धन्य प्रभु जय जयकार।।
बाल ब्रह्मचारी गुणधारी वीर प्रभु ने किया प्रयाण।
वन में जाकर दीक्षा धारी निज में लीन हुए भगवान।।

ॐ ह्रीं मगसिर कृष्ण दशम्यां तपो मंगल श्रीवर्धमान जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

द्वादश वर्ष तपस्या करके पाया तुमने केवलज्ञान।
कर वैशाख शुक्ल दशमी को त्रेसठ कर्म प्रकृति अवसान।।
सर्व द्रव्य गुण पर्यायों को युगपत एक समय में जान।
वर्धमान सर्वज्ञ हुए प्रभु वीतराग अरिहन्त महान।।

ॐ ह्रीं वैशाख शुक्ल दशम्यां केवलज्ञान प्राप्त श्रीवर्धमान जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

कार्तिक कृष्ण अमावस्या को वर्धमान प्रभु मुक्त हुए।
सादि अनन्त समाधि प्राप्त कर मुक्ति रमा से युक्त हुए।।
अन्तिम शुक्ल ध्यान के द्वारा कर अघातिया का अवसान।
शेष प्रकृति पच्चासी को भी क्षय करके पाया निर्वाण।।

ॐ ह्रीं कार्तिक कृष्ण अमावस्यायां मोक्षमंगल प्राप्त श्रीवर्धमान जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

महावीर ने पावापुर से मोक्ष लक्ष्मी पाई थी।
इन्द्रसुरों ने हर्षित होकर दीपावली मनाई थी।।
केवलज्ञान प्राप्त होने पर तीस वर्ष तक किया विहार।
कोटि-कोटि जीवों का प्रभु ने दे उपदेश किया उपकार।।
पावापुर उद्यान पधारे योग निरोध किया साकार।
गुणस्थान चौदह को तजकर पहुंचे भव समुद्र के पार।।
सिद्धशिला पर हुए विराजित मिली मोक्ष लक्ष्मी सुखकार।
जल थल नभ में देवों द्वारा गूंज उठी प्रभु की जयकार।।
इन्द्रादिक सुर आये हर्षित मन में धारे मोद अपार।
महामोक्ष कल्याण मनाया अखिल विश्व ने मंगलकार।।
अष्टादश गणराज्यों के राजाओं ने जयगान किया।
नत मस्तक होकर जन-जन ने महावीर गुणगान किया।।
तन कपूरवत उड़ा शेष नख केश रहे इस भू तल पर।
मायामयी शरीर रचा देवों ने क्षण भर के भीतर।।
अग्निकुमार सुरों ने झुक मुकुटानल से तन भस्म किया।
सर्व उपस्थित जन समूह सुरगण ने पुण्य अपार लिया।।
कार्तिक कृष्ण अमावस्या का दिवस मनोहर सुखकर था।
उषाकाल का उजियारा कुछ तम मिश्रित अति मनहर था।।
रत्न ज्योतियों का प्रकाश कर देवों ने मंगल गाये।
रत्नदीप की आवलियों से पर्व दीपमाला लाये।।
सबने शीश चढ़ाई भस्मी पद्म सरोवर बना वहाँ।
वही भूमि है अनुपम सुन्दर जल मन्दिर है बना जहाँ।।

इसी दिवस गौतमस्वामी को सन्ध्या केवलज्ञान हुआ।
केवलज्ञान लक्ष्मी पाई पद सर्वज्ञ महान हुआ।।
प्रभु के ग्यारह गणधर में थे प्रमुख श्री गौतमस्वामी।
क्षपक श्रेणी चढ़ शुक्ल ध्यान से हुए देव अन्तर्यामी।।
देवों ने अति हर्षित होकर रत्न ज्योति का किया प्रकाश।
हुई दीपमाला द्विगुणित आनन्द हुआ छाया उल्लास।।
प्रभु के चरणाम्बुज दर्शन कर हो जाता मन अति पावन।
परम पूज्य निर्वाण भूमि शुभ पावापुर है मन भावन।।
अखिल जगत में दीपावली त्यौहार मनाया जाता है।
महावीर निर्वाण महोत्सव धूम मचाता आता है।।
हे प्रभु महावीर जिन स्वामी गुण अनन्त के हो धामी।
भरत क्षेत्र के अन्तिम तीर्थंकर जिनराज विश्वनामी।।
मेरी केवल एक विनय है मोक्ष लक्ष्मी मुझे मिले।
भौतिक लक्ष्मी के चक्कर में मेरी श्रद्धा नहीं हिले।।
भव भव जन्म मरण के चक्कर मैंने पाये हैं इतने।
जितने रजकण इस भूतल पर, पाये हैं प्रभु दुख उतने।।
अवसर आज अपूर्व मिला है शरण आपकी पाई है।
भेद ज्ञान की बात सुनी है तो निज की सुधि आई है।।
अब मैं कहीं नहीं जाऊँगा जब तक मोक्ष नहीं पाऊँ।
दो आशीर्वाद हे स्वामी नित्य नए मंगल गाऊँ।।

ॐ ह्रीं कार्तिक कृष्ण अमावस्यां निर्वाण कल्याणक प्राप्ताय श्रीवर्धमान जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

(दोहा)

दीप मालिका पर्व पर, महावीर उर धार।
भाव सहित जो पूजते, पाते सौख्य अपार।।

इत्याशीर्वादः

श्री श्रुत पंचमी पूजन

स्याद्‌वाद मय द्वादशांग युत माँ जिनवाणी कल्याणी।
जो भी शरण हृदय से लेता हो जाता केवलज्ञानी।।
जय जय जय हितकारी शिव सुखकारीमाता् जय जयजय।
कृपा तुम्हारी से ही होता भेद ज्ञान का सूर्य उदय।।
श्रीधरसेनाचार्य कृपा से मिला परम जिनश्रुत का ज्ञान।
भूतबली मुनि पुष्पदन्त ने षटखण्डागम रचा महान।।
अंकलेश्वर में ग्रंथ हुआ था पूर्ण आज के मंगल दिन।
जिनवाणी लिपिबद्ध हुई थी पावन परम आज के दिन।।
ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी दिवस जिनश्रुत का जय जयकार हुआ।
श्रुत पंचमी पर्व पर श्री जिनवाणी का अवतार हुआ।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डागम अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डागम अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डागन अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

शुद्ध स्वानुभव जल धारा से यह जीवन पवित्र करलूँ।
साम्य भाव पीयूष पान कर जन्म जरामय दुख हरलूँ।।
श्रुत पंचमी पर्व शुभ उत्तम जिन श्रुत को वन्दन करलूँ।
षट् खण्डागम धवल जय धवल महाधवल पूजन करलूँ।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डगमाय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

शुद्ध स्वानुभव का उत्तम पावन चन्दन चर्चित करलूँ।
भव दावानल के ज्वालामय अघसंताप ताप हरलूँ।।श्रुत.।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डगमाय संसारताप विनाशनाय चदनं नि. स्वाहा।

शुद्ध स्वानुभव के परमोत्तम अक्षत शुद्ध हृदय धर लूँ।
परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति से अनुपम अक्षयपद वर लूँ।।श्रुत.।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डगमाय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

शुद्ध स्वानुभव के पुष्पों से निज अन्तर सुरभित करलूँ।
महाशील गुण के प्रताप से मैं कंदर्प दर्प हरलूँ।।श्रुत.।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डगमाय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

शुद्ध स्वानुभव के अति उत्तम प्रभु नैवेद्य प्राप्त करलूँ।
अमलअतीन्द्रिय निज स्वभाव से दुखमय क्षुधाव्याधि हरलूँ।।श्रुत.।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डगमाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

शुद्ध स्वानुभव के प्रकाशमय दीप प्रज्वलित मैं करलूँ।
मोहतिमिर अज्ञान नाशकर निज कैवल्य ज्योति वरलूँ।।श्रुत.।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डगमाय अज्ञानान्धकार विनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

शुद्ध स्वानुभव गन्ध सुरभिमय ध्यान धूप उर में भरलूँ।
संवर सहित निर्जरा द्वारा मैं वसु कर्म नष्ट करलूँ।।श्रुत.।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डगमाय अष्टकर्म दहनाय धूपं नि. स्वाहा।

शुद्धस्वानुभव का फल पाऊँ मैं लोकाग्र शिखर वरलूँ।
अजर अमर अविकल अविनाशी पद निर्वाण प्राप्त करलूँ।।श्रुत.।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डगमाय महामोक्षफल प्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

शुद्धस्वानुभव दिव्य अर्घ ले रत्नत्रय सुपूर्ण कर लूँ।
भव समुद्र को पार करूँ प्रभु निज अनर्घ पद मैं वर लूँ।।श्रुत.।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डगमाय अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

श्रुत पंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का।
गूंजा जय जयकार जगत् में जिन श्रुत जय जयकार का।।
ऋषभदेव की दिव्यध्वनि का लाभ पूर्ण मिलता रहा।
महावीर तक जिनवाणी का विमल वृक्ष खिलता रहा।।

हुए केवली अरु श्रुत केवली ज्ञान अमर फलता रहा।
फिर आचार्यों के द्वारा यह ज्ञान दीप जलता रहा।।
भव्यों में अनुराग जगाता मुक्ति वधु के प्यार का।
श्रुत पंचमी पर्व अति पावन है श्रुत अवतार का।।
गुरु परम्परा से जिनवाणी निर्झर सी झरती रही।
मुमुक्षुओं को परम मोक्ष का पथ प्रशस्त करती रही।।
किन्तु काल की घड़ी मनुज की स्मरण शक्ति हरती रही।
श्री धरसेनाचार्य हृदय में करुण टीस भरती रही।।
द्वादशांग का लोप हुआ तो क्या होगा संसार का।
श्रुत पंचमी पर्व अति पावन है श्रुत अवतार का।।
शिष्य भूतवलि पुष्पदन्त की हुई परीक्षा ज्ञान की।
जिनवाणी लिपिबद्ध हेतु श्रुत विद्या विमल प्रदान की।।
ताड़ पत्र पर हुई अवतरित वाणी जन कल्याण की।
षट्खण्डागम महाग्रन्थ करणानुयोग जय ज्ञान की।।
ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी दिवस था सुरनर मंगलाचार का।
श्रुत पंचमी पर्व अति पावन है श्रुत अवतार का।।
धन्य भूतवलि पुष्पदन्त जय श्री धरसेनाचार्य की।
लिपि परम्परा स्थापित करके नई क्रांति साकार की।।
देवों ने पुष्पों की वर्षा नभ से अगणित बार की।
धन्य धन्य जिनवाणी माता निज पर भेद विचार की।।
ऋणी रहेगा विश्व तुम्हारे निश्चय का व्यवहार का।
श्रुत पंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का।।
धवला टीका वीर सेन कृत बहत्तर हजार श्लोक।
जय धवला जिनसेन वीर कृत उत्तम साठ हजार श्लोक।।

महाधवल हैं देवसेन कृत है चालीस हजार श्लोक।
विजय धवल अरु अतिशय धवल नहीं उपलब्ध एक श्लोक।।
षट्खण्डागम टीकाएं पढ़ मन होता भव पार का।
श्रुत पंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का।।
फिर तो ग्रन्थ हजारों लिक्खे ऋषि मुनियों ने ज्ञानप्रधान।
चारों ही अनुयोग रचे जीवों पर करके करुणा दान।।
पुण्य कथा प्रथमानुयोग द्रव्यानुयोग है तत्त्व प्रधान।
ऐक्सरे करणानुयोग चरणानुयोग कैमरा महान।।
यह परिणाम नापता है वह बाह्य चरित्र विचार का।
श्रुत पंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का।।
जिनवाणी की भक्ति करें हम जिनश्रुत की महिमा गायें।
सम्यग्दर्शन का वैभव ले भेद ज्ञान निधि को पायें।।
रत्नत्रय का अवलम्बन लें निज स्वरूप में रम जायें।
मोक्ष मार्ग पर चलें निरन्तर फिर न जगत में भरमायें।।
धन्य धन्य अवसर आया है अब निज के उद्धार का।
श्रुत पंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डगमाय पूर्णार्घ्यं नि. स्वाहा।

(दोहा)

श्रुतपंचमी सुपर्व पर, करो तत्व का ज्ञान।
आत्म तत्व का ध्यान कर, पाओ पद निर्वाण।।

इत्याशीर्वादः

अर्घ्यावली

देव-शास्त्र-गुरु का अर्घ्य

(गीता)

जल परम उज्ज्वल गंध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूँ।
वर धूप निरमल फल विविध बहु, जनम के पातक हरूँ।।
इह भाँति अर्घ्य चढ़ाय नित भवि, करत शिव पंकति मचूँ।
अरहंत श्रुत सिद्धान्त गुरु निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।

वसु विधि अर्घ्य संजोयकै, अति उछाह मन कीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षणभर निजरस को पी चेतन मिथ्यामल को धो देता है।
काषायिक भाव विनष्ट किये, निज आनन्द अमृत पीता है।।
अनुपम सुख तब विलसित होता, केवल-रवि जग-मग करता है।
दर्शन-बल पूर्ण प्रगट होता यह ही अर्हन्त अवस्था है।।
यह अर्घ्य समर्पण करके प्रभु, निज गुण का अर्घ्य बनाऊँगा।
और निश्चित तेरे सदृश प्रभु, अर्हन्त अवस्था पाऊँगा।।

? ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बहुमूल्य जगत का वैभव यह, क्या हमको सुखी बना सकता।
अरे पूर्णता पाने में, इसकी क्या है आवश्यकता।।
मैं स्वयं पूर्ण हूँ अपने में, प्रभु है अनर्घ्य मेरी माया।
बहुमुल्य द्रव्यमय अर्घ्य लिये, अर्पण के हेतु चला आया।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच परमेष्ठी का अर्घ्य

जल चन्दन अक्षत पुष्प दीप, नैवेद्य धूप फल लाया हूँ।
अब तक के संचित कर्मों का, मैं पुंज जलाने आया हूँ।।
यह अर्घ्य समर्पित करता हूँ, अविचल अनर्घ्य पद दो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्री पंच-परमेष्ठिभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सिद्ध परमेष्ठी का अर्घ्य (संस्कृत)

(वसन्तति. १७)

ज्ञानोपयोगविमलं विशदात्मरूपं,
सूक्ष्मस्वभावपरमं यदनन्तवीर्यम्।
कर्मोघकक्षदहनं सुखसस्य बीजं,
वन्दे सदा निरुपमं वर सिद्धचक्रम्।।

(अनुष्टुप)

कर्माष्टक विनिर्मुक्तं मोक्ष-लक्ष्मी-निकेतनम्।
सम्यक्त्वादि-गुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम्।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यं पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सिद्ध परमेष्ठी का अर्घ्य (हिन्दी)

जल पिया और चन्दन चरचा, मालायें सुरभित सुमनों की।
पहनी, तंदुल सेये व्यंजन, दीपावलियों की रत्नों की।।
सुरभी धूपायन की फैली, शुभ कर्मों का सब फल पाया।
आकुलता फिर भी बनी रही, क्या कारण जान नहीं पाया।।
जब दृष्टि पड़ी प्रभुजी तुम पर, मुझको स्वभाव का भान हुआ।
सुख नहीं विषय भोगों में है, तुमको लख यह सद्ज्ञान हुआ।।

जल से फल तक का वैभव यह मै आज त्यागने हूँ आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चौबीस तीर्थंकर का अर्घ्य

जल फल आठों शुचिसार, ताको अर्घ्य करों।
तुमको अरपों भवतार, भव तरि मोक्ष वरों।।
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द कन्द सही।
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष मही।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तेभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय पूजन का अर्घ्य

अष्टम वसुधा पाने को, कर में ये आठों द्रव्य लिये।
सहज शुद्ध स्वाभाविकता से, निज में निज गुण प्रकट किये।।
यह अर्घ्य समर्पण करके मैं, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः अनन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठिभ्यश्च अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विदेहक्षेत्र में विद्यमान बीस तीर्थंकरों का अर्घ्य

जल फल आठों दर्व अरघ कर प्रीति धरी है।
गणधर इन्द्रनिहूतैं थुति पूरी न करी है।।
"द्यानत" सेवक जानके (हो) जगतैं लेहु निकार।
सीमंधर जिन आदि दे (स्वामी) बीस विदेह मँझार।।
श्री जिनराज हो भव तारण तरण जिहाज ।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरादिविद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सीमंधर भगवान का अर्घ्य

निर्मल जल सा प्रभु निज स्वरूप, पहिचान उसी में लीन हुए।
भव-ताप उतरने लगा तभी, चन्दन-सी उठी हिलोर हिये।।
अभिराम-भवन प्रभु अक्षत का, सब शक्ति-प्रसून लगे खिलने।
क्षुत्-तृषा अठारह दोष क्षीण, कैवल्य प्रदीप लगा जलने।।
मिट चली चपलता योगों की, कर्मों के ईंधन ध्वस्त हुए।
फल हुआ प्रभो! ऐसा मधुरिम, तुम धवल निरंजन स्वस्थ हुए।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधर जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महावीर भगवान का अर्घ्य

इस अर्घ्य का क्या मूल्य है अनर्घ्य पद के सामने?
उस परम-पद को पा लिया, हे पतित-पावन आपने।।
संतप्त-मानस शान्त हों, जिनके गुणों के गान में।
वे वर्द्धमान महान जिन विचरैं हमारे ध्यान में।।

ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमान जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच-बालयति का अर्घ्य

सजि वसु विधि द्रव्य मनोज्ञ, अर्घ्य बनावत हैं।
वसुकर्म अनादि संयोग, ताहि नसावत हैं।।
श्री वासु-पूज्य-मल्लि-नेमि, पारस वीर अति।
नमूँ मन-वच-तन धरि प्रेम, पाँचों बालयति।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-मल्लिनाथ-नेमिनाथ-पार्श्वनाथ-महावीर पंच-बालयति तीर्थंकरेभ्यो नमः अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नन्दीश्वर द्वीप का अर्घ्य

यह अरघ कियो निज हेत तुमको अरपतु हों।
"द्यानत" कीज्यो शिवखेत, भूमि समरपतु हों।।

नन्दीश्वर श्री जिनधाम, बावन पूँज करों।
वसुदिन प्रतिमा अभिराम, आनन्द भाव धरों।।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपंचासज्जिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

दशलक्षण का अर्घ्य

आठों दरव संवार, 'द्यानत' अधिक उछाह सों।
भव आताप निवार, दशलक्षण पूजों सदा।।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादि दशलक्षणधर्मांगाय अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय का अर्घ्य

आठ दरव निरधार, उत्तम सो उत्तम लिये।
जनम रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ।।

ॐ ह्रीं सम्यक् रत्नत्रयाय अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्दर्शन का अर्घ्य

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु।
सम्यक्दर्शनसार, आठ अंग पूजों सदा।।

ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यग्ज्ञान का अर्घ्य

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु।
सम्यग्ज्ञानविचार, आठ भेद पूजों सदा।।

ॐ ह्रीं अष्टाविध सम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक् चारित्र का अर्घ्य

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु।
सम्यक् चारित सार, तेरह विधि पूजों सदा।।

ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक्चारित्राय अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

पंचमेरु अर्घ्य

आठ दरबमय अरघ बनाय, 'द्यानत' पूजौं श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।।
पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमाजी को करहुँ प्रणाम।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।।

ॐ ह्रीं पंचमेरु-सम्बन्धिअस्सी जिन-चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

सोलहकारण का अर्घ्य

जलफल आठों दरब चढ़ाय 'द्यानत' वरत करों मनलाय।
परमगुरु हो जय - जय नाथ परमगुरु हो।।
दरश विशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थंकर पद पाय।
परमगुरु हो जय - जय नाथ परमगुरु हो।।

ॐ ह्रीं दर्शन विशुद्धियादिषोडशकारणेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

महार्घ्य - 1

मैं देव श्री अरहंत पूजूँ, सिद्ध पूजूँ चाव सों।
आचार्य श्री उवझाय पूजूँ, साधु पूजूँ भाव सों।।
अर्हन्त भाषित बैन पूँजूँ, द्वादशांग रचि गनी।
पूजूँ दिगम्बर गुरुचरण, शिवहेत सब आशा हनी।।
सर्वज्ञ भाषित धर्म दशविधि, दयामय पूजूँ सदा।
जजि भावना षोड़श रत्नत्रय, जा बिना शिव नहिं कदा।।
त्रैलोक्य के कृत्रिम अकृत्रिम, चैत्य चैत्यालय जजूँ।
पंचमेरु-नन्दीश्वर जिनालय, खचर सुर पूजित भजूँ।।
कैलाश श्री सम्मेदगिरि, गिरनार मैं पूजूँ सदा।
चम्पापुरी पावापुरी पुनि, और तीरथ शर्मदा।।

चौबीस श्री जिनराज पूजूँ, बीस क्षेत्र विदेह के।
नामावली इक सहस वसु जय, होय पति शिवगेह के।।

(दोहा)

जल गंधाक्षत पुष्प चरु, दीप धूप फल लाय।
सर्व पूज्य पद पूजहूँ, बहुविधि भक्ति बढ़ाय।।

ॐ ह्रीं श्री अरहन्तसिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो द्वादशांगजिनवाणीभ्यो उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय. दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यो, सम्यग्दर्शनज्ञान, चारित्रेभ्यो, त्रिलोकसम्बन्धिकृत्रिमाकृत्रिमजिनचैत्य चैत्यालयेभ्यो, पंचमेरौ अस्सी चैत्यालयेभ्यो नन्दीश्वरदीपस्थद्विपंचाशज्जिनालयेभ्यो श्री सम्मेदशिखर, गिरनारगिरी, कैलाशगिरी, चम्पापुर, पावापुर, आदि सिद्ध क्षेत्रेभ्यो, अतिशय क्षेत्रेभ्यो, सीमंधरादि विद्यमानविंशति तीर्थंकरेभ्यो ऋषभादिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो भगवज्जिन सहस्राष्टनामेभ्यश्च अनर्घ्यपद प्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय अर्घ्य - 2

प्रभुजी अष्ट द्रव्यजु ल्याओ भावसों।
प्रभु थांका हर्ष हर्ष गुण गाऊँ महाराज।।

यो मन हरख्यो प्रभु थांकी पूजाजी रे कारणे।
प्रभुजी थांकी तो पूजा भविजन नित करै।।
जाका अशुभ कर्म कट जाय महाराज।। यो मन०।।

प्रभुजी थांकी तो पूजा भवि जीव जो करै।
सो तो सुरग मुकतिपद पावै महाराज।। यो मन०।।

प्रभुजी इन्द्र धरणेन्द्रजी सब मिल गाया।
प्रभु का गुणां को पार न पाईया ।।
प्रभुजी थे छो जी अनन्ताजी गुणवान।
थाने तो सुमर्यां संकट परिहरे ।।

प्रभुजी थे छो जी साहिब तीनों लोक का।
जिनराय मैं छूँ जी निपट अज्ञानी महाराज।। यो मन०।।
प्रभुजी थांका तो रूपजु निरखन कारणे।
सुरपति रचिया छै नयन हजार महाराज।। यो मन०।।
प्रभुजी नरक निगोद में भव भव में रुल्यो।
जिनराज सहिया छै दुख अपार महाराज।। यो मन०।।
प्रभुजी अब तो शरणोजी थारों में लियो।
किस विधि कर पार लगावो महाराज।। यो मन०।।
प्रभुजी म्हारौ तो मनड़ो थामें घुल रह्यो।
ज्यों चकरी बिच रेशम डोरी महाराज।। यो मन०।।
प्रभुजी तीन लोक में है जिन बिम्ब।
कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय पूजस्यां महाराज।। यो मन०।।
प्रभुजी जल चन्दन अक्षत् पुष्प नैवेद्य।
दीप धूप फल अर्घ चढ़ाऊँ महाराज।।
जिन चैत्यालय महाराज, सब चैत्यालय महाराज।। यो मन०।।
प्रभुजी अष्ट द्रव्य जु ल्याओ बनाय।
पूजा रचाऊँ श्री भगवान की महाराज।। यो मन०।।

ॐ ह्रीं श्री भावपूजा भाव-वन्दना त्रिकालपूजा त्रिकालवन्दना करै करावै भावना भावै श्री अरहन्तजी सिद्धजी आचार्यजी उपाध्यायजी सर्वसाधुजी पंचपरमेष्ठिभ्यो नमः। प्रथमानुयोगकरणानुयोग चरणानुयोग द्रव्यानुयोगेभ्यो नमः। दर्शन विशुद्धयादिषोड़श कारणेभ्यो नमः। उत्तम क्षमादि दश लाक्षणिक धर्मेभ्यो नमः। सम्यग्दर्शन. सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रेभ्यो नमः। जलके विषै थलके विषै आकाशके विषै गुफाके विषै पहाड़के विषै नगर-नगरी विषै ऊर्ध्वलोक मध्यलोक पाताललोक विषै विराजमान कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो नमः। विदेहक्षेत्र विद्यमान बीस तीर्थंकरेभ्यो नमः। पाँच भरत पाँच ऐरावत दश क्षेत्र सम्बन्धी तीस चौबीस के सात सौ बीस तीर्थंकरेभ्यो नमः। नन्दीश्वरदीप सम्बन्धी बावन जिन चैत्यालयेभ्यो नमः। पंचमेरू सम्बन्धी अस्सी जिन चैत्यालयेभ्यो नमः। सम्मेदशिखर कैलाश चम्पापुर पावापुर गिरनार सिद्धवरकूट ऊन बड़वानी-बावनगजा आदि सिद्धक्षेत्रेभ्यो नमः।

जैनबद्री मूलबद्री राजगृही शत्रुंजय तारंगा चमत्कार महावीर स्वामी पद्मप्रभु स्वामी, तिजारा मक्सी बनेड़िया आदि अतिशय क्षेत्रेभ्यो नमः। गोम्मट्गिरी बाहुबली चौबीस तीर्थंकरेभ्यो नमः। श्री चारण ऋद्धिधारी सप्त परमऋर्षिभ्यो नमः।

ॐ ह्रीं श्रीमंतं भगवन्त कृपालसन्तं श्रीवृषभादि महावीर पर्यंत चतुर्विंशति तीर्थंकर परमदेवं आद्यानां आद्ये जम्बूद्वीपे भरत क्षेत्रे आर्यखण्डे..... नाम्नि नगरे मासानामुत्तमें मासे.... शुभो....... पक्षे शुभ.. तिथि...... वासरे मुनि आर्यिकानां श्रावक श्राविकानां क्षुल्लक क्षुल्लिकानां सकल कर्म क्षयार्थं जलधारा अनर्घ्यपद प्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भाव पूजा वन्दनास्तव समेतं श्री पंचमहागुरु भक्ति कायोत्सर्ग करोम्यहं।
यहाँ पर कायोत्सर्गपूर्वक नौ-बार णमोकार मंत्र जपना चाहिये।

महार्घ्य - 3

श्री अरहन्त देव को पूजूँ श्री सिद्ध प्रभु को पूजूँ।
आचार्यों के चरणाम्बुज, श्री उपाध्याय के पद पूजूँ।।
सर्व साधु पद पूजूँ, श्री जिन द्वादशांग वाणी पूजूँ।
तीस चौबीसी बीस विदेही, जिनवर सीमंधर पूजूँ।।
कृत्रिम अकृत्रिम तीन लोक के जिनगृह जिन प्रतिमा पूजूँ।
पंचमेरू नन्दीश्वर पूजूँ तेरह दीप चैत्य पूजूँ।।
सोलहकारण दशलक्षण रत्नत्रय धर्म सदा पूजूँ।
भूत भविष्यत् वर्तमान की त्रय जिन चौबीसी पूजूँ।।
श्री वृषभादिक वीर जिनेश्वर ऋषि गणधर स्वामी पूजूँ।
श्री जिनराज सहस्त्रनाम श्री मोक्ष शास्त्र आदि पूजूँ।।
श्री पंच कल्याणक पूजूँ विविध विधान महा पूजूँ।
गौतम स्वामी, कुन्दकुन्द आचार्य सु समयसार पूजूँ।।
चम्पापुर पावापुर गिरनारी कैलाश शिखर पूजूँ।
श्री सम्मेदशिखर पर्वत जिनवर निर्वाण क्षेत्र पूजूँ।।

तीर्थंकर की जन्म भूमि अतिशय अरु सिद्ध क्षेत्र पूजूँ।
श्री जिन धर्म श्रेष्ठ मंगलमय महा अर्घ दे मैं पूजूँ।।

ॐ ह्रीं श्री भावपूजा भाव-वन्दना त्रिकालपूजा त्रिकालवन्दना करवी करावी भावना भाववी श्री अरहन्तजी, सिद्धजी, आचार्यजी, उपाध्यायजी, सर्वसाधुजी, पंचपरमेष्ठिभ्यो नमः। प्रथमानुयोग करणानुयोग चरणानुयोग द्रव्यानुयोगेभ्यो नमः। दर्शन विशुद्धयादि षोड़शकारणेभ्यो नमः। उत्तम क्षमादि दश लक्षण धर्मेभ्यो नमः। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रेभ्यो नमः। जल विषै, थल विषै, आकाश विषै, गुफा विषै, पहाड़ विषै, नगर-नगरी विषै, कृत्रिम अकृत्रिम जिनबिम्बेभ्यो नमः। विदेहक्षेत्र स्थित विद्यमान बीस तीर्थंकरेभ्यो नमः। पाँच भरत, पाँच ऐरावत, दश क्षेत्र सम्बन्धी तीस चौबीसी के सात सौ बीस तीर्थंकरेभ्यो नमः। नन्दीश्वरद्वीप स्थित बावन जिन चैत्यालयेभ्यो नमः। पंचमेरु संबंधी अस्सी जिनचैत्यालयभ्यो नमः। श्री सम्मेदशिखर कैलाशगिर, चम्पापुर पावापुर गिरनार तीर्थंकर सिद्धक्षेत्रेभ्यो नमः। पावागढ़, तुंगीगिरी, गजपंथ, मुक्तागिर सिद्धवर कूट, ऊन बड़वानी पावागिरि कुण्डलपुर सोनागिर, राजगृही मन्दारगिरी, द्रोणगिरी अहारजी आदि समस्त सिद्ध क्षेत्रेभ्यो नमः। जैनबिद्री मूलबद्री मक्सी, अयोध्या कम्पिलापुरीआदि अतिशय क्षेत्रेभ्यो नमः समस्त तीर्थंकर पंचकल्याण तीर्थ क्षेत्रेभ्यो नमः। श्री गौतम स्वामी, कुन्दकुन्दाचार्य एवं चारण ऋद्धिधारी सात परम ऋषिभ्यो नमः। इति उपर्युक्तभ्यः सर्वेभ्यो अर्घ्यं नि. स्वाहा।

✠✠✠

हे प्रभो! हे जिनेन्द्र! जिस मनुष्य ने आपको देखकर भी अपनी आत्मा को कृतकृत्य नहीं माना वह मनुष्य नियम से संसाररूपी समुद्र में मज्जन तथा उन्मज्जन करेगा। अर्थात् जिस प्रकार मनुष्य समुद्र में उछलता तथा डूबता है; उसी प्रकार वह मनुष्य बहुत काल तक संसार में जन्म-मरण करता हुआ भ्रमण करेगा।

–श्री जिनेन्द्र स्तवन गाथा–17
परमपूज्य आचार्य पद्मनन्दिदेव

शान्ति-पाठ (संस्कृत)

(संस्कृत)

शान्ति जिनं शशि निर्मलवक्त्रं, शील-गुण-व्रत-संयम-पात्रम्।
अष्टशतार्चित-लक्षण-गात्रं, नौमि जिनोत्तममम्बुज नेत्रम्।।
पंचमभीप्सित-चक्रधराणां पूजितमिन्द्र-नरेन्द्र-गणैश्च।
शान्तिकरं गण-शान्तिमभीप्सुः षोडश-तीर्थंकरं प्रणमामि।।
दिव्य-तरुः सुर-पुष्प-सुवृष्टिर्दुन्दुभिरासन-योजन-घोषौ।
आतपवारण-चामर-युग्मे यस्य विभाति च मण्डलतेजः।।
तं जगदर्चित-शान्ति-जिनेन्द्रम् शान्तिकरं शिरसा प्रणमामि।
सर्वगणाय तु यच्छतु शान्तिं मह्यमरं पठते परमां च।।

(वसन्ततिलका)

येऽभ्यर्चिता मुकुट-कुण्डल-हार-रत्नैः
शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुत-पाद-पद्माः।
ते मे जिनाः प्रवर-वंश-जगत्प्रदीपा-
स्तीर्थंकराः सतत-शान्तिकरा भवन्तु।।

(इन्द्रवज्रा)

संपूजकानां प्रतिपालकानां, यतीन्द्र-सामान्य-तपोधनानाम्।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः, करोतु शान्तिं भगवांजिनेन्द्रः।।

(शार्दुलविक्रीड़ित)

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान्धार्मिको भूमिपालः,
काले काले च सम्यग्विकिरतु मघवा, व्याधयो यान्तु नाशम्।
दुर्भिक्षं चौर-मारी क्षणमपि जगतां, मा स्म भूज्जीवलोके,
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्व-सौख्य-प्रदायि।।

(अनुष्टुप)

प्रध्वस्त-घाति-कर्माणः, केवलज्ञान-भास्कराः।
कुर्वन्तु जगतां शान्तिं वृषभाद्या जिनेश्वराः।।

(मन्दाक्रान्ता)

शास्त्राभ्यासो जिनपति-नुतिः संगतिः सर्वदार्यैः,
सद् वृत्तानां गुण-गण-कथा दोष-वादे च मौनम्।
सर्वस्यापि प्रिय-हित-वचो भावना चात्मतत्त्वे,
संपद्यन्तां मम भव-भवे यावदेतेऽपवर्गः।।

(आर्या)

तव पादौ ममहृदये मम हृदयं तवपदद्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनेन्द्र तावद्यावन्निर्वाण संप्राप्तिः।।

(गाथा)

अक्खर-पयत्थ-हीणं मत्ता-हीणं च जं मए भणियं।
तं खमउ णाणदेव य मज्झ वि दुक्ख-क्खयं दिंतु।।
दुक्ख-खओ कम्म-खओ समाहिमरणं च बोहि-लाहो य।
मम होउ जगद-बंधव तव जिणवर चरण सरणेण।।

(नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करें)

(क्षमापना)

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि, शास्त्रोक्तं न कृतं मया।
तत्सर्वं पूर्ण मेवास्तु, त्वत्प्रसादाज्जिनेश्वर।।
आह्वानं नैव जानामि, नैव जानामि पूजनम्।
विसर्जनम् नैव जानामि, क्षमस्व परमेश्वर।।
मन्त्र-हीनं क्रिया-हीनं, द्रव्य-हीनं तथैव च।
तत्सर्वं क्षम्यताम् देव, रक्ष-रक्ष जिनेश्वर।।
मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलम्।।
सर्व मंगल मांगल्यं सर्व कल्याणकारकं।
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम्।।

शान्ति-पाठ (हिन्दी) -1

(चौपाई)

शान्तिनाथ मुख शशि-उनहारी शील-गुण-व्रत-संयमधारी।
लखन एक सौ आठ विराजैं, निरखत नयन कमलदल लाजें।।
पंचम चक्रवर्ती पद धारी, सोलम तीर्थंकर सुखकारी।
इन्द्र-नरेन्द्र पूज्य जिन-नायक, नमो शांति हित शांति विधायक।।
दिव्य विटप पहुपन की वरषा, दुन्दुभि आसन वाणी सरसा।
छत्र चमर भामंडल भारी, ये तुव प्रातिहार्य मनहारी।।
शांति-जिनेश शांति सुखदाई, जगत् पूज्य पूजौं शिर नाई।
परम शांति दीजे हम सबको, पढ़ैं तिन्हें पुनि चार संघ को।।

(वसन्ततिलका)

पूजैं जिन्हें मुकुट-हार-किरीट लाके।
इंद्रादि देव अरु पूज्य पदाब्ज जाके।।
सो शांतिनाथ वर-वंश जगत् प्रदीप।
मेरे लिये करहिं शान्ति सदा अनूप।।

(इन्द्रवज्रा)

संपूजकों को प्रतिपालकों को, यतीन को औ यतिनायकों को।
राजा-प्रजा-राष्ट्र-सुदेश को ले, कीजे सुखी हे जिन! शांति को दे।।

(स्रग्धरा)

होवे सारी प्रजा को, सुख बलयुत हो, धर्मधारी नरेशा।
होवे वर्षा समय पै, तिल भर न रहै, व्याधियों का अंदेशा।।
होवे चोरी न जारी, सुसमय वरते, हो न दुष्काल मारी।
सारे ही देश धारैं जिनवर-वृष को, जो सदा सौख्यकारी।।

(दोहा)

घातिकर्म जिन नाश करि, पायो केवलराज।
शांति करो सब जगत् में, वृषभादिक जिनराज।।

(मन्दाक्रान्ता)

शास्त्रों का हो, पठन सुखदा, लाभ सत्संगती का।
सद्वृत्तों का, सुजस कहके, दोष ढाकूँ सभी का।।
बोलूँ प्यारे वचन हित के, आपका रूप ध्याऊँ।
तौलौं सेऊँ चरण जिनके, मोक्ष जौ लौं न पाऊँ।।

(आर्या)

तव पद मेरे हिय में, मम हिय तेरे पुनीत चरणों में।
तबलौं लीन रहौं प्रभु, जबलौं पाया न मुक्ति-पद मैंने।।
अक्षर पद मात्रा से दूषित, जो कुछ कहा गया मुझसे।
क्षमा करो प्रभुसो सब, करुणाकरिपुनि छुड़ाहु भव-दुख से।।
हे जग बन्धु जिनेश्वर! पाऊँ तव चरण-शरण बलिहारी।
मरण समाधि सुदुर्लभ, कर्मों का क्षय सुबोध सुखकारी।।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

क्षमापना

बिन जाने वा जान के, रही टूट जो कोय।
तुम प्रसाद तैं परम गुरु, सो सब पूरन होय।।
पूजन-विधि जानूँ नहीं, नहिं जानूँ आह्वान।
और विसर्जन हू नहीं, क्षमा करहु भगवान।।
मन्त्रहीन धनहीन हूँ, क्रियाहीन जिनदेव।
क्षमा करहु राखहु मुझे, देहु चरण की सेव।।
तुम चरणन ढ़िग आयके, मैं पूजूँ अतिचाव।
आवागमन रहित करो, रमूँ सदा निज भाव।।

शान्ति-पाठ - 2

(संक्षिप्त)

(हरिगीतिका)

शास्त्रोक्त विधि पूजा महोत्सव, सुरपति चक्री करैं।
हम सारिखे लघु पुरुष कैसे, यथाविधि पूजा करें।।
धन-क्रिया-ज्ञान रहित न जाने, रीत पूजन नाथजी।
हम भक्तिवश तुम चरण आगैं, जोड़ लीने हाथजी।।

दुख-हरन मंगलकरन, आशा-भरन जिन पूजा सही।
यह चित्त में श्रद्धान मेरे, शक्ति है स्वयमेव ही।।
तुम सारिखे दातार पाये, काज लघु जाचूँ कहाँ।
मुझ आप सम कर लेहु स्वामी, यही इक वाँछा महा।।

संसार भीषण विपिन में, वसु कर्म मिल आतापियो।
तिस दाहतैं आकुलित चिरतैं, शान्तिथल कहुँ ना लियो।।
तुम मिले शान्ति स्वरूप, शान्ति सुकरन समरथ जगपती।
वसुकर्म मेरे शान्ति करदो, शान्तिमय पंचमगती।।

जबलों नहीं शिव लहूँ, तबलों देह यह नर पावना।
सत्संग शुद्धाचरण श्रुत अभ्यास आतम भावना।।
तुम बिन अनंतानंत काल गयो रुलत जग जाल में।
अब शरण आयो नाथ युग कर जोर नावत भाल मैं।।

(दोहा)

कर प्रमाण के मान तैं, गगन नपै किहि भंत।
त्यों तुम गुण वर्णन करत, कवि पावे नहिं अन्त।।

शान्ति-पाठ - 3

हूँ शान्तिमय ध्रुव ज्ञानमय, ऐसी प्रतीति जब जगे।
अनुभूति हो आनन्दमय, सारी विकलता तब भगे।।
निज भाव ही है एक आश्रय शान्ति दाता सुखमयी।
भूल स्व दर दर भटकते, शान्ति कब किसने लही।।
निज घर बिना विश्राम नाहीं, आज यह निश्चय हुआ।
मोह की चट्टान टूटी, शान्ति निर्झर बह रहा।।
यह शान्ति धारा हो अखण्डित, चिरकाल तब बहती रहे।
होवे निमग्न सुभव्यजन, सुख शान्ति सब पाते रहें।।
पूजोपरान्त प्रभो यही इक भावना है हो रही।
लीन निज में ही रहूँ, प्रभु और कुछ बाँछा नहीं।।

(दोहा) सहज परम आनन्दमय, निज ज्ञायक अविकार।
स्व में लीन परिणति विषै, बहती समरस धार।।

इत्याशीर्वाद : पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

शान्ति-पाठ - 4

परम शान्ति पाऊँ प्रभो, करूँ स्वयं का ज्ञान।
रागद्वेष पर भाव हर, करूँ स्वयं का ध्यान।।
सकल जगत के जीव सब, पाएं शान्ति महान।
दुखी न कोई जीव हो, सब का हो कल्याण।।
ईति भीति भय नष्ट हों, वर्षा हो अनुकूल।
पाप भाव सब नष्ट हों, दुख जाएं सब भूल।।
सदाचार पालन करें, जागे निज हित बुद्धि।
आप कृपा से प्राप्त हो, धीरे-धीरे शुद्धि।।
परम शान्ति सुख सिन्धु हो, वीतराग भगवान।
तुव समान हम सब बनें, है यह विनय महान।।

ॐ शान्ति! शान्ति! शान्ति!

शान्ति-पाठ - 5

इन्द्र नरेन्द्र सुरों से पूजित वृषभादिक श्री वीर महान।
साधु मुनिश्वर ऋषियों द्वारा वन्दित तीर्थंकर विभुवान।।
गणधर भी स्तुति कर हारे जिनवर महिमा महामहान।
अष्ट प्रातिहार्यों से शोभित समवसरण में विराजमान।।
चौतीसों अतिशय से शोभित छयालीस गुण के धारी।
दोष अठारह रहित जिनेश्वर श्री अरहंत देव भारी।।
तरु अशोक सिंहासन भामण्डल सुर पुष्पवृष्टि त्रयछत्र।
चौसठ चमर दिव्य ध्वनि पावन दुन्दुभि देवोपम सर्वत्र।।
मति श्रुति अवधिज्ञान के धारी जन्म समय से हे तीर्थेश।
निज स्वभाव साधन के द्वारा आप हुए सर्वज्ञ जिनेश।।
केवलज्ञान लब्धि के धारी परम पूज्य सुख के सागर।
महा पंच कल्याण विभूषित गुण अनन्त के हो आगर।।
सकल जगत में पूर्ण शान्ति हो, शासन हो धार्मिक बलवान।
देश राष्ट्रपुर ग्राम लोक में शतत शान्ति हो हे भगवान।।
उचित समय पर वर्षा हो दुर्भिक्ष न चोरी मारी हो।
सर्व जगत् के जीव सुखी हो सभी धर्म के धारी हो।।
रोग शोक भय व्याधि न होवे ईति भीति का नाम नहीं।
परम अहिंसा सत्य धर्म हो लेश पाप का काम नहीं।।
आत्मज्ञान की महाशक्ति से परम शान्ति सुखकारी हो।
ज्ञानी ध्यानी महा तपस्वी स्वामी मंगलकारी हो।।
धर्म ध्यान में लीन रहूँ मैं प्रभु के पावन चरण गहूँ।
जब तक सिद्ध स्वपद ना पाऊँ सदा आपकी शरण लहूँ।।
श्री जिनेन्द्र के धर्म चक्र से प्राणी मात्र का हो कल्याण।
परम शान्ति हो, परम शान्ति हो, परम शान्ति हो हे भगवान।।

क्षमापना-पाठ - 1

जो भी भूल हुई प्रभु मुझ से उसकी क्षमा याचना है।
द्रव्य भाव की भूल न हो अब ऐसी सदा कामना है।।
तुम प्रसाद से परम सौख्य हो ऐसी विनय भावना है।
जिन गुण सम्पत्ति का स्वामी हो जाऊँ यही साधना है।।
शुद्धातम का आश्रय लेकर तुम समान प्रभु बन जाऊँ।
सिद्ध स्वपद पाकर हे स्वामी फिर न लौट भव में आऊँ।।
ज्ञान हीन हूँ क्रिया हीन हूँ द्रव्य हीन हूँ हे जिनदेव।
भाव सुमन अर्पित हैं हे प्रभु पाऊँ परम शान्ति स्वयमेव।।
पूजन शान्ति विसर्जन करके निज आतम का ध्यान करूँ।
जिन पूजन का यह फल पाऊँ मैं शाश्वत कल्याण करूँ।।
मंगलमय भगवान वीर प्रभु मंगलमय गौतम गणधर।
मंगलमय श्री कुन्दकुन्द मुनि मंगल जिनवाणी सुखकर।।
सर्व मंगलों में उत्तम है णमोकार का मंत्र महान।
श्री जिनधर्म श्रेष्ठ मंगलमय अनुपम वीतराग विज्ञान।।

क्षमापना - 2

(दोहा)

भूल-चूक कर दो क्षमा, भाव क्षमा अवतार।
हम अज्ञानी जीव हैं, आप ज्ञान भण्डार।।

तुव चरणों की शरण पा, पाया सौख्य अपार।
क्षमा करो निज ज्ञान दो, करो भवोदधि पार।।

पुष्पांजलि

विसर्जन-पाठ

सम्पूर्ण विधि कर वीनऊँ, इस परम पूजन पाठ में।
अज्ञानवश शास्त्रोक्त-विधि तें, चूक कीनों पाठ में।।
सो होऊ पूर्ण समस्त विधिवत् तुम चरण की शरण तें।
वन्दूँ तुम्हें कर जोड़ के, उद्धार जामन-मरण तें।।

आह्वाननं स्थापन तथा, सन्निधिकरण विधानजी।
पूजन विसर्जन यथाविधि, जानूँ नहीं गुणखानजी।।
जो दोष लाग्यो सो नशौ, सब तुम चरण की शरण तें।
वन्दूँ तुम्हें कर जोरि के, उद्धार जामन-मरण तें।।

तुम रहित आवागमन, आह्वानन कियो निज भाव में।
विधि यथाक्रम निजशक्ति सम, पूजन कियो अति चाव में।।
करहूँ विसर्जन भाव ही में, तुम चरण की शरण तें।
वन्दूँ तुम्हें कर जोरि के, उद्धार जामन-मरण तें।।

(दोहा)

तीन भुवन तिहुँ काल में, तुमसा देव न और।
सुख कारन संकट हरन, नमहुँ युगल कर जोरि।।

स्तुति-पाठ

तुम तरण-तारण भव-निवारण, भविक-मन आनन्दनो।
श्री नाभिनन्दन जगत-वंदन, आदिनाथ निरंजनो।।
तुम आदिनाथ अनादि सेऊँ, सेय पद-पूजा करूँ।
कैलाशगिरि पर ऋषभ जिनवर, पदकमल हिरदै धरूँ।।
तुम अजितनाथ अजीत जीते, अष्टकर्म महाबली।
इह विरद सुनकर शरण आयो, कृपा कीज्यो नाथजी।।
तुम चन्द्रवदन सुचन्द्रलक्षण चन्द्रपुरि परमेश्वरो।
महासेन-नंदन जगत वंदन, चन्द्रनाथ जिनेश्वरो।।
तुम शान्ति पाँच, कल्याण पूजों, शुद्ध मन-वच-काय जू।
दुर्भिक्ष चोरी पापनाशन, विघन जाय पलाय जू।।
तुम बालब्रह्म विवेक-सागर, भव्य कमल विकाशनो।
श्री नेमिनाथ पवित्र दिनकर, पाप-तिमिर विनाशनो।।
जिन तजी राजुल राजकन्या, कामसैन्या वश करी।
चारित्ररथ चढ़ि भये दूलहा, जाय शिव-रमणी वरी।।
कंदर्प दर्प सु सर्प-लक्ष्छन, कमठ-शठ निर्मद कियो।
अश्वसेन-नंदन जगतवंदन सकल संघ मंगल कियो।।
जिन धरी बालकपणे दीक्षा, कमठ-मान विदारकैं।
श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र के पद, मैं नमों शिर नायकै।।
तुम कर्मघाता मोक्षदाता, दीन जानि दया करो।
सिद्धार्थ-नंदन जगत-वंदन, महावीर जिनेश्वरो।।
छत्र तीन सोहै सुर नर मोहै, वीनती अब धारिये।
कर जोड़ि सेवक वीनवै प्रभु, आवागमन निवारिये।।
अब होउ भव भव स्वामि मेरे, मैं सदा सेवक रहों।
कर जोड़ यो वरदान मांगूँ, मोक्षफल जावत लहों।।

जो एक माहीं एक राजत, एक माँहिं अनेकनो।
इक अनेकन की नाहिं संख्या, नमूं सिद्ध निरंजनो।।

(चौपाई)

मैं तुम चरण कमल गुण गाय, बहुविधि भक्ति करी मन लाय।
जनम-जनम प्रभु पाऊँ तोहि, यह सेवा फल दीजे मोहि।।
कृपा तिहारी ऐसी होय, जामन मरन मिटावो मोय।
बार-बार मैं विनती करूँ, तुम सेये भव सागर तरूँ।।
नाम लेत सब दुख मिट जाय, तुम दर्शन देख्या प्रभु आय।
तुम हो प्रभु देवन के देव, मैं तो करूँ चरण तव सेव।।
जिन पूजा तैं सब सुख होय, जिन पूजा सम और न कोय।
जिन पूजा तैं स्वर्ग विमान, अनुक्रम तैं पावैं निर्वाण।।
मैं आयों पूजन के काज, मेरो जन्म सफल भयो आज।
पूजा करके नवाऊँ शीश, मुझ अपराध क्षमहु जगदीश।।

(दोहा)

सुख देना दुख मेटना, यही तुम्हारी बान।
मो गरीब की वीनती, सुन लीज्यो भगवान।।
पूजन करते देव की, आदि मध्य अवसान।
सुरगन के सुख भोगकर, पावें मोक्ष निदान।।
जैसी महिमा तुम विषैं, और धरैं नहीं कोय।
जो सूरज में ज्योति है, नहीं तारागण सोय।।
नाथ तिहारे नाम तैं, अघ छिन माँहिं पलाय।
ज्यों दिनकर परकाश तैं, अन्धकार विनशाय।।
बहुत प्रशंसा क्या करूँ, मैं प्रभु बहुत अजान।
पूजाविधि जानूँ नहीं, शरण राखि भगवान।।

निर्वाणकाण्ड (भाषा)

(दोहा)

वीतराग वन्दौं सदा, भाव सहित सिरनाय।
कहूँ काण्ड निर्वाण की, भाषा सुगम बनाय।।

(चौपाई)

अष्टापद आदिश्वर स्वामी, वासुपूज्य चम्पापुर नामि।
नेमिनाथ स्वामी गिरनार, बन्दौं भाव-भगति उर धार।।
चरम तीर्थंकर चरम शरीर, पावापुरी स्वामी महावीर।
शिखर समेद जिनेसुर बीस, भाव सहित बन्दौं निश-दीस।।
वरदत्त राय रु इन्द्र मुनिन्द, सायरदत्त आदि गुणवृन्द।
नगरतारवर मुनि उठकोडि, बन्दौं भाव सहित कर जोड़ि।।
श्री गिरनार शिखर विख्यात, कोडि बहत्तर अरु सौ सात।
सम्बु प्रदुम्न कुमार द्वे भाय, अनिरुध आदि नमूँ तसुपाय।।
रामचन्द्र के सुत द्वे वीर, लाडनरिन्द आदि गुणधीर।
पाँच कोडि मुनि मुक्ति मंझार, पावागिरि बन्दौं निरधार।।
पाण्डव तीन द्रविड राजान, आठ कोडि मुनि मुकति पयान।
श्री शत्रुंजयगिरि के सीस, भाव सहित बन्दौं निश-दीश।।
जे बलभद्र मुकतिमें गये, आठ कोडि मुनि औरहु भये।
श्री गजपन्थ शिखर सुविशाल तिनके चरण नमूँ तिहुँकाल।।
राम हणु सुग्रीव सुडील, गव गवाख्य नील महानील।
कोडि निन्यानवे मुक्ति पयान, तुंगीगिरि बन्दौं धरि ध्यान।।
नंग-अनंग कुमार सुजान, पाँच कोडि अरु अर्ध प्रमान।
मुक्ति गये सोनागिरि-शीश, ते बन्दौं त्रिभुवनपति ईस।।

रावण के सुत आदि कुमार, मुक्ति गये रेवा-तट सार।
कोटि पंच अरु लाख पचास, ते वन्दौं धरि परम हुलास।।
रेवानदी सिद्धवर कूट, पश्चिम दिशा देह जहँ छूट।
द्वैं चक्री दश काम कुमार, उठ कोडि वन्दौं भव पार।।
बडवानी बडनयर सुचंग, दक्षिण दिशि गिरि चूल उतंग।
इन्द्रजीत अरु कुम्भ जु कर्ण, ते वन्दौं भव सागर तर्ण।।
सुवरण भद्र आदि मुनि चार, पावागिरि-वरशिखर मँझार।
चेलना-नदी-तीर के पास मुक्ति गये वन्दौं नित तास।।
फलहोडी बड़गाम अनूप पश्चिम दिशा द्रोणगिरी रूप।
गुरुदत्तादि मुनीसुर जहाँ, मुक्ति गये वन्दौं नित तहाँ।।
बाल महाबाल मुनि दोय, नागकुमार मिले त्रय होय।
श्री अष्टापद मुक्ति मँझार, ते वन्दौं नित सुरत संभार।।
अचलापुर की दिश ईसान, तहाँ मेढ़गिरि नाम प्रधान।
साड़े तीन कोडि मुनिराय, तिनके चरण नमूँ चित लाय।।
वंसस्थल वनके ढिग होय, पश्चिम दिशा कुन्थुगिरि सोय।
कुलभूषण दिशिभूषण नाम, तिनके चरणनि करूँ प्रणाम।।
जसरथ राजा के सुत कहे, देश कलिंग पांचसौ लहे।
कोटिशिला मुनि कोटि प्रमान, वन्दन करूँ जोरि जुग पान।।
समवसरण श्री पार्श्व-जिनन्द, रेसिन्दीगिरि नयनानन्द।
वरदत्तादि पंच ऋषिराज, तैं वन्दौं नित धरम-जिहाज।।
तीन लोक के तीरथ जहाँ, नित प्रति वन्दन कीजै तहाँ।
मन वच काय सहित सिर नाय, वन्दन करहि भविक गुण गाय।।
संवत सतरहसौ इकताल, आश्विन सुदि दशमी सुविशाल।
'भैया' वन्दन करहि त्रिकाल, जय निर्वाणकाण्ड गुणमाल।।

नीरव निर्झर

सामायिक-पाठ

(वीर छन्द)

प्रेम भाव हो सब जीवों से, गुणी जनों में हर्ष प्रभो।
करुणा-स्रोत बहें दुखियों पर, दुर्जन में मध्यस्थ विभो।।
यह अनन्त बल-शील आतमा, हो शरीर से भिन्न प्रभो।
ज्यों होती तलवार म्यान से, वह अनन्त बल दो मुझको।।
सुख दुख, वैरी बन्धु वर्ग में, काँच कनक में समता हो।
वन-उपवन, प्रासाद-कुटी में, नहीं खेद नहिं ममता हो।।
जिस सुन्दरतम पथ पर चलकर, जीते मोह मान मन्मथ।
वह सुन्दर-पथ ही प्रभु मेरा, बना रहे अनुशीलन पथ।।
एकेन्द्रिय आदिक प्राणी की, यदि मैंने हिंसा की हो।
शुद्ध हृदय से कहता हूँ वह, निष्फल हो दुष्कृत्य प्रभो।।
मोक्षमार्ग प्रतिकूल प्रवर्त्तन, जो कुछ किया कषायों से।
विपथ-गमन सब कालुष मेरे, मिट जावें सद्भावों से।।
चतुर वैद्य विष विक्षत करता, त्यों प्रभु! मैं भी आदि उपांत।
अपनी निंदा आलोचन से, करता हूँ पापों को शान्त।।
सत्य अहिंसादिक व्रत में भी, मैंने हृदय मलीन किया।
व्रत-विपरीत प्रवर्तन करके, शीलाचरण विलीन किया।।
कभी वासना की सरिता का, गहन-सलिल मुझ पर छाया।
पी पी कर विषयों की मदिरा, मुझमें पागलपन आया।।
मैंने छली और मायावी, हो असत्य आचरण किया।
पर-निन्दा गाली चुगली जो, मुँह पर आया वमन किया।।

निरभिमान उज्ज्वल मानस हो, सदा सत्य का ध्यान रहे।
निर्मल जल की सरिता सदृश, हिय में निर्मल ज्ञान बहे।।
मुनि चक्री शक्री के हिय में, जिस अनन्त का ध्यान रहे।
गाते वेद पुराण जिसे वह, परम देव मम हृदय रहे।।
दर्शन-ज्ञान स्वभावी जिसने, सब विकारही वमन किये।
परम ध्यान गोचर परमातम, परम देव मम हृदय रहे।।
जो भव दुःख का विध्वंसक है, विश्व विलोकी जिसका ज्ञान।
योगी-जन के ध्यान गम्य वह, बसे हृदय में देव महान।।
मुक्ति-मार्ग का दिग्दर्शक है, जन्म मरण से परम अतीत।
निष्कलंक त्रैलोक्य दर्शि वह, देव रहे मम हृदय समीप।।
निखिल-विश्व के वशीकरण में, राग रहे ना द्वेष रहे।
शुद्ध अतीन्द्रिय ज्ञान स्वरूपी, परम देव मम हृदय रहे।।
देख रहा जो निखिल विश्व को, कर्म कलंक विहीन विचित्र।
स्वच्छ विनिर्मल निर्विकार वह, देव करे मम हृदय पवित्र।।
कर्म-कलंक अछूत न जिसका, कभी छू सके दिव्य प्रकाश।
मोह-तिमिर को भेद चला जो, परम शरण मुझको वह आप्त।।
जिसकी दिव्य ज्योति के आगे, फीका पड़ता सूर्य प्रकाश।
स्वयं ज्ञानमय स्व-पर प्रकाशी परम शरण मुझको वह आप्त।।
जिसके ज्ञानरूप दर्पण में, स्पष्ट झलकते सभी पदार्थ।
आदि अन्त से रहित शान्त शिव परमशरण मुझको वह आप्त।।
जैसे अग्नि जलाती तरु को, तैसे नष्ट हुए स्वयमेव।
भय-विषाद-चिन्ता सब जिसके, परम शरण मुझको वह देव।।
तृण, चौकी शिल, शैल शिखर नहीं, आत्मसमाधि के आसन।
संस्तर, पूजा, संघ सम्मिलन, नहीं समाधि के साधन।।

इष्ट-वियोग, अनिष्ट-योग में, विश्व मनाता है मातम।
हेय सभी है विश्व वासना, उपादेय निर्मल आतम।।
बाह्य जगत कुछ भी नहीं मेरा, और न बाह्य जगत का मैं।
यह निश्चय कर छोड़ बाह्य को, मुक्ति हेतु नित स्वस्थ रमें।।
अपनी निधि तो अपने में है, बाह्य वस्तु में व्यर्थ प्रयास।
जग का सुख तो मृगतृष्णा है, झूठे हैं उसके पुरुषार्थ।।
अक्षय है शाश्वत है आत्मा, निर्मल ज्ञान स्वभावी है।
जो कुछ बाहर है सब पर है, कर्माधीन विनाशी है।।
तन से जिसका ऐक्य नहीं, हो-सुत-तिय-मित्रों से कैसे।
चर्म दूर होने पर तन से, रोम समूह रहें कैसे।।
महा कष्ट पाता जो करता, पर पदार्थ जड़ देह संयोग।
मोक्ष महल का पथ है सीधा, जड़ चेतन का पूर्ण वियोग।।
जो संसार पतन के कारण, उन विकल्प-जालों को छोड़।
निर्विकल्प, निर्द्वन्द्व आतमा, फिर, फिर लीन उसी में हो।।
स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ, फल निश्चय ही वे देते।
करें आप फल देय अन्य तो, स्वयं किये निष्फल होते।।
अपने कर्म सिवाय जीव को, कोई न फल देता कुछ भी।
पर देता है यह विचार तज, स्थिर हो छोड़ प्रमादी बुद्धि।।
निर्मल, सत्य, शिवं, सुन्दर है, 'अमितगति' वह देव महान।
शाश्वत निज में अनुभव करते, पाते निर्मल पद निर्वाण।।

अमूल्य तत्व विचार

(हरिगीतिका)

बहु पुण्य-पुंज प्रसंग से शुभ देह मानव का मिला।
तोभी अरे! भव चक्र का, फेरा न एक कभी टला।।
सुख-प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते, सुक्ख जाता दूर है।
तू क्यों भयंकर भाव-मरण, प्रवाह में चकचूर है।।
लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी, पर बढ़ गया क्या बोलिये।
परिवार और कुटुम्ब है क्या? वृद्धि नय पर तोलिये।।
संसार का बढ़ना अरे! नर देह की यह हार है।
नहीं एक क्षण तुझको अरे! इसका विवेक विचार है।।
निर्दोष सुख निर्दोष आनन्द, लो जहाँ भी प्राप्त हो।
यह दिव्य अन्तस्तत्व जिससे बन्धनों से मुक्त हो।।
पर वस्तु में मूर्छित न हो, इसकी रहे मुझको दया।
वह सुख सदा ही त्याज्य रे! पश्चात् जिसके दुख भरा।।
मैं कौन हूँ आया कहाँ से? और मेरा रूप क्या?
सम्बन्ध दुखमय कौन है? स्वीकृत करूँ परिहार क्या।।
इसका विचार विवेक पूर्वक, शान्त होकर कीजिये।
तो सर्व आत्मिक ज्ञान के, सिद्धान्त का रस पीजिये।।
किसका वचन उस तत्व की, उपलब्धि में शिवभूत है।
निर्दोष नर का वचन रे! वह स्वानुभूति प्रसूत है।।
तारो अरे तारो निजात्मा, शीघ्र अनुभव कीजिये।
सर्वात्म में समदृष्टि दो, यह वच हृदय लख लीजिये।।

आलोचना पाठ

(दोहा)

वन्दौं पाँचों परम-गुरु, चौबीसों जिनराज।
करूँ शुद्ध आलोचना, शुद्धिकरन के काज।।

(सखीछन्द)

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी।
तिनकी अब निवृत्ति काज, तुम सरण लही जिनराज।।
इक बे ते चउइन्द्री वा, मन रहित सहित जे जीवा।
तिनकी नहिं करुणा धारी, निरदइ ह्वै घात विचारी।।
समरंभ समारंभ आरंभ, मन वच तन कीने प्रारंभ।
कृत कारित मोदन करिकैं, क्रोधादि चतुष्टय धरिकैं।।
शत आठ जु इमि भेदनतैं, अघ कीने परिछेदनतैं।
तिनकी कहुँ कोलौं कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी।।
विपरीत एकांत विनयके, संशय अज्ञान कुनयके।
वश होय घोर अघ कीने, वचतैं नहिं जाय कहिने।।
कुगुरुनकी सेवा कीनी, केवल अदयाकरी भीनी।
याविधि मिथ्यात भ्रमायो, चहुँगति मधि दोष उपायो।।
हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, पर-वनितासों दृग जोरी।
आरंभ परिग्रह भीनो, पन पाप जु या विधि कीनो।।
सपरस रसना घ्राननको, चखु कान विषय-सेवनको।
बहु करम किये मनमाने, कछु न्याय अन्याय न जाने।।
फल पंच उदम्बर खाये, मधु मांस मद्य चित चाहे।
नहिं अष्ट मूलगुण धारी, विसनन सेये दुखकारी।।

दुईबीस अभख जिन गाये, सो भी निस दिन भुंजाये।
कछु भेदा भेद न पायो, ज्यों त्यों करि उदर भरायो।।
अनंतानु जु बंधी जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो।
संज्वलन चौकरी गुनिये, सब भेद जु षोडस सुनिये।।
परिहास अरति रति शोग, भय ग्लानि तिवेद संयोग।
पनवीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम।।
निद्रावश शयन कराई, सुपने मधि दोष लगाई।
फिर जागि विषय-वन धायो, नानाविध विष फल खायो।।
आहार विहार निहारा, इनमें नहिं जतन विचारा।
बिन देखी धरी उठाई, बिन शोधि वस्तु जु खाई।।
तब ही परमाद सतायो, बहुविधि विकलप उपजायो।
कछु सुधि बुधि नांहिं रही है, मिथ्या मति छाय गयी है।।
मरजादा तुम ढिंग लीनी, ताहूँ में दोष जु कीनी।
भिन्न-भिन्न अब कैसें कहिये, तुम ज्ञान विषें सब पईये।।
हा हा! मैं दुठ अपराधी, त्रस-जीवन-राशि विराधी।
थावर की जतन न कीनी, उरमें करूणा नहिं लीनी।।
पृथिवी बहु खोद कराई, महलादिक जागां चिनाई।
बिन गाल्यो पुनि जल ढोल्यो, पंखातैं पवन विलोल्यो।।
हा हा! मैं अदयाचारी, बहु हरितकाय जु बिदारी।
तामधि जीवन के खन्दा, हम खाये धरि आनन्दा।।
हा हा! परमाद बसाई, बिन देखे अगनि जलाई।
तामधि जे जीव जु आये, ते हू परलोक सिधाये।।
बीध्यो अनराति पिसायो, ईंधन बिन सोधि जलायो।
झाडू ले जागाँ बुहारी, चिंवटी आदिक जीव बिदारी।।
जल छानि जिवानी कीनी, सो हु पुनि डारि जु दीनी।
नहिं जल-थानक पहुँचाई, किरिया बिन पाप उपाई।।

जल मल मोरिन गिरवायो, कृमि-कुल बहु घात करायो।
नदियन विच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये।।
अन्नादिक शोध कराई, तामैं जु जीव निसराई।
तिनका नहिं जतन कराया, गलियारैं धूप डराया।।
पुनि द्रव्य कमावन काज, बहु आरम्भ हिंसा साज।
किये तिसनावश अध भारी, करुना नहिं रंच विचारी।।
इत्यादिक पाप अनंता, हम कीने श्री भगवन्ता।
संतति चिरकाल उपाई, वानी तैं कहिय न जाई।।
ताको जु उदय अब आयो, नानाविध मोहि सतायो।
फल भुजंत जिय दुख पावे, बचतैं कैसें करि गावे।।
तुम जानत केवलज्ञानी, दुख दूर करो शिव थानी।
हम तो तुम शरण लही हैं जिन तारन विरद सही है।।
जो गाँवपती इक होवे, सो भी दुखिया दुख खोवै।
तुम तीन भुवन के स्वामी, दुख मेटहु अंतरजामी।।
द्रोपदि को चीर बढ़ायो, सीता प्रति कमल रचायो।
अंजन से किये अकामी, दुख मेटो अंतरजामी।।
मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनो विरद सम्हारो।
सब दोष रहित करि स्वामी, दुख मेटहु अंतरजामी।।
इंद्रादिक पद नहिं चाहूँ, विषयनि में नाहिं लुभाऊँ।
रागादिक दोष हरिजे, परमातम निज पद दीजै।।

(दोहा)

दोष रहित जिनदेवजी, निजपद दीज्यो मोय।
सब जीवन के सुख बढ़ै, आनंद मंगल होय।।
अनुभव माणिक पारखी, जोहरी' आप जिनन्द।
ये ही वर मोहि दीजिये, चरण शरण आनन्द।।

मेरी भावना

जिसने राग-द्वेष-कामादिक जीते, सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया।।
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति-भाव से प्रेरित हो, यह चित्त उसी में लीन रहो।।
विषयों की आशा नहिं जिनके, साम्य-भाव धन रखते हैं।
निज-पर के हित साधन में जो, निशि दिन तत्पर रहते हैं।।
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुख समूह को हरते हैं।।
रहे सदा सत्संग उन्हीं का ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उन ही जैसी चर्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे।।
नहीं सताऊँ किसी जीव को, झूँठ कभी नहीं कहा करूँ।
पर-धन-वनिता पर न लुभाऊँ, सन्तोषामृत पिया करूँ।।
अहंकार का भाव न रक्खूँ, नहीं किसी पर क्रोध करूँ।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्या भाव धरूँ।।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूँ।
बने जहाँ तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूँ।।
मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे।
दीन-दुखी जीवों पर मेरे, उर से करुणा-स्रोत बहे।।
दुर्जन क्रूर कुमार्गरतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्य-भाव रक्खूँ मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे।।
गुणीजनों को देख हृदय में मेरे, प्रेम उमड़ आवे।
बने जहाँ तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे।।

होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे।।
कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखों वर्षों तक जीऊँ या, मृत्यु आज ही आ जावे।।
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे।
तो भी न्याय मार्ग से मेरा, कभी न पद डिगने पावे।।
होकर सुख में मग्न न फूले, दुख में कभी न घबरावे।
पर्वत नदी-श्मशान-भयानक, अटवी से नहीं भय खावे।।
रहे अडोल-अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे।
इष्ट-वियोग-अनिष्ट योग में, सहनशीलता दिखलावे।।
सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे।
बैर पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे।।
घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो ज़ावे।
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना, मनुज-जन्म फल सब पावै।।
ईति-भीति व्यापै नहिं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे।
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे।।
रोग-मरी-दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे।
परम अहिंसा-धर्म जगत में, फैल सर्व हित किया करे।।
फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर ही रहा करे।
अप्रिय कटुक-कठोर शब्द नहिं, कोई मुख से कहा करे।।
बनकर सब 'युगवीर' हृदय से, देशोन्नति रत रहा करें।
वस्तु-स्वरूप-विचार खुशी से, सब दुख-संकट सहा करैं।।

✦✦✦

वैराग्य भावना

(दोहा)

बीज राख फल भोगवै, ज्यों किसान जग माहिं।
त्यों चक्री नृप सुख करै, धर्म विसारै नाहिं।।

(जोगीरासा या नरेन्द्र छन्द)

इह विध राज करै नर नायक, भोगैं पुण्य विशाल।
सुख सागर में रमत निरन्तर, जात न जान्यो काल।।
एक दिवस शुभ कर्म संयोगे, क्षेमंकर मुनि वन्दे।
देखि श्री गुरु के पद पंकज, लोचन अलि आनन्दे।।
तीन प्रदक्षिण दे सिर नायो, कर पूजा थुति कीनी।
साधु समीप विनय कर बैठ्यो, चरनन में दिठि दीनी।।
गुरु उपदेश्यो धर्म शिरोमणि, सुन राजा वैरागे।
राजरमा वनितादिक जे रस, ते रस बेरस लागे।।
मुनि सूरज कथनी किरणावलि, लगत भरम बुधि भागी।
भव तन भोग स्वरूप विचार्यो, परम धरम अनुरागी।।
इह संसार महावन भीतर, भ्रमते ओर न आवै।
जामन मरण जरा दव दाझे, जीव महादुःख पावै।।
कबहुँ जाय नरक थिति भुंजे, छेदन भेदन भारी।
कबहुँ पशु परजाय धरे तहँ, बध बन्धन भयकारी।।
सुरगति में परसम्पत्ति देखे, राग उदय दुख होई।
मानुषयोनि अनेक विपतिमय, सर्व सुखी नहिं कोई।।
कोई इष्ट वियोगी विलखै, कोई अनिष्ट संयोगी।
कोई दीन दरिद्री विगुचे, कोई तन के रोगी।।

किस ही घर कलिहारी नारी, कै बैरी सम भाई।
किस ही के दुख बाहिर दीखे, किस ही उर दुचिताई।।
कोई पुत्र बिना नित झूरै, होय मरै तब रोवे।
खोटि संततिसों दुख उपजै, क्यों प्राणी सुख सौवे।।
पुण्य उदय जिनके तिनके भी, नाहिं सदा सुख साता।
यह जगवास जथारथ देखे, सब ही है दुख दाता।।
जो संसार विषै सुख होता, तीर्थंकर क्यों त्यागै।
काहे को शिव साधन करते, संजमसों अनुरागै।।
देह अपावन अथिर घिनावन, यामें सार न कोई।
सागर के जलसों शुचि कीजै, तो भी शुद्ध न होई।।
सप्त कुधातु भरी मल मूरत, चाम लपेटी सोहै।
अन्तर देखत या सम जग में, अवर अपावन को है।।
नव मल द्वार स्रवैं निशिवासर, नाम लिये घिन आवै।
व्याधि उपाधि अनेक जहाँ तहँ, कौन सुधी सुख पावै।।
पोषत तो दुख दोष करै अति, सोषत सुख उपजावै।
दुर्जन देह स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढावै।।
राचन जोग स्वरुप न याको, विरचन जोग सही है।
यह तन पाय महातप कीजे, यामें सार यही है।।
भोग बुरे भवरोग बढावें, बैरी हैं जग जीके।
बेरस होंय विपाक समय अति, सेवत लागे नीके।।
बज्र अगनि विष से विषधर से, ये अधिके दुखदाई।
धर्म रतन के चोर प्रबल अति, दुर्गति पन्थ सहाई।।
मोह उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जानैं।
ज्यों कोई जन खाय धतूरा, तो सब कंचन मानैं।।

ज्यों-ज्यों भोग संजोग मनोहर, मन वांछित जन पावै।
तृष्णा नागिन त्यों-त्यों डंके, लहर जहर की आवै।।
मैं चक्री पद पाय निरन्तर, भोगे भोग घनेरे।
तो भी तनिक भये नहिं पूरन, भोग मनोरथ मेरे।।
राज समाज महा अघ कारण बैर बढावनहारा।
वेश्या सम लक्ष्मी अति चंचल, याका कौन पत्यारा।।
मोह महारिपु वैर विचार्यो, जगजिय संकट डारे।
तन काराग्रह बनिता बेड़ी, परिजन जन रखवारे।।
सम्यक्दर्शन ज्ञान चरन तप, ये जियके हितकारी।
ये ही सार असार और सब, यह चक्री चितधारी।।
छोड़े चौदह रत्न नवोनिधि, अरु छोड़े संग साथी।
कोड़ि अठारह घोड़े छोड़े, चौरासी लख हाथी।।
इत्यादिक सम्पत्ति बहुतेरी, जीरण तृण सम त्यागी।
नीति विचार नियोगी सुत को, राज्य दियो बड़भागी।।
होय निशल्य अनेक नृपति संग, भूषण वसन उतारे।
श्री गुरु चरन धरी जिनमुद्रा, पंच महाव्रत धारे।।
धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम, धनि यह धीरजधारी।
ऐसी सम्पत्ति छोड़ बसे वन, तिन पद धोक हमारी।।

(दोहा)

परिग्रह पोट उतार सब, लीनों चारित पन्थ।
निज स्वभाव में थिर भये, वज्रनाभि निरग्रन्थ।।

बारह भावना
(- पं. भूधरदासजी)

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन अपनी-अपनी बार।।
दल बल देई देवता, मात पिता परिवार।
मरती विरियाँ जीव को, कोऊ न राखन हार।।
दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णा वश धनवान।
कहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान।।
आप अकेला अवतरे, मरे अकेलो होय।
यूँ कबहुँ इस जीव को, साथी सगा न कोय।।
जहाँ देह अपनी नहीं, तहां न अपनो कोय।
घर संपति पर प्रगटये, पर हैं परिजन लोय।।
दिपै चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह।।
मोह नींद के जोर, जगवासी घूमें सदा।
कर्म चोर चहुँ ओर, सरवस लूटैं सुध नहीं।।
सतगुरु देय जगाय, मोह नींद जब उपशमे।
तब कछु बनहि उपाय, कर्म चोर आवत रुकें।।
ज्ञान दीप तप तेल भर, घर शोधें भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसै नहीं, पैंठे पूरब चोर।।
पंच महाव्रत संचरन, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय-विजय, धार निर्जरा सार।।
चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान।
तामैं जीव अनादि तैं, भरमत हैं बिन ज्ञान।।
धन कन कंचन राज सुख, सबहि सुलभकर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान।।
जाँचे सुर तरु देय सुख, चिन्तत चिन्ता रैन।
बिन जाँचे बिन चिन्तये, धर्म सकल सुख दैन।।

बारह भावना
(- पं. जयचंदजी)

द्रव्य रूप करि सर्व थिर, परजय थिर है कौन।
द्रव्य दृष्टि आपा लखो, परजय नय करि गौन।।
शुद्धातम अरु पंच गुरु, जग में सरनो दोय।
मोह उदय जिय के वृथा, आन कल्पना होय।।
पर द्रव्यन तें प्रीति जो, है संसार अबोध।
ताको फल गति चार में, भ्रमण कह्यो श्रुत शोध।।
परमारथ तें आत्मा, एक रूप ही जोय।
कर्म निमित्त विकलप घने, तिन नासें शिव होय।।
अपने-अपने सत्व कूँ, सर्व वस्तु विलसाय।
ऐसे चितवे जीव तब, परतैं ममत न थाय।।
निर्मल अपनी आत्मा, देह अपावन गेह।
जानि भव्य निज भाव को, यासों तजो सनेह।।
आतम केवल ज्ञानमय, निश्चय दृष्टि निहार।
सब विभाव परिणाममय, आस्रव भाव विडार।।
निज स्वरूप में लीनता, निश्चय संवर जानि।
समिति गुप्ति संजम धरम, धरैं पाप की हानि।।
संवर मय है आत्मा, पूर्व कर्म झड़ जाय।
निज स्वरूप को पाय कर लोक शिखर जब थाय।।
लोक स्वरूप विचारि कें, आतम रूप निहारि।
परमारथ व्यवहार गुणि, मिथ्याभाव निवारि।।
बोधि आपका भाव है, निश्चय दुर्लभ नाहिं।
भव में प्रापति कठिन है, यह व्यवहार कहाहिं।।
दर्श ज्ञानमय चेतना, आतम धर्म बखानि।
दया क्षमादिक रतनत्रय, यामें गर्भित जानि।।

बारह भावना

(कविवर मंगतरायकृत)

(दोहा)

वन्दू श्री अरहन्त पद, वीतराग विज्ञान।
वरणों बारह भावना, जग जीवन हित जान।।

(विष्णुपद छन्द)

कहाँ गये चक्री जिन जीता, भरत खण्ड सारा।
कहाँ गये वह राम रु लछमन, जिन रावण मारा।।
कहाँ कृष्ण रुक्मिणी सतभामा, अरु सम्पत्ति सगरी।
कहाँ गये वह रंग महल अरु, सुवरन की नगरी।।
नहीं रहे वह लोभी कौरव, जूझ मरे रन में।
गये राज तज पाँडव वन को, अग्निं लगी तन में।।
मोह नींद से उठ रे चेतन, तुझे जगावन को।
हो दयाल उपदेश करें, गुरु बारह भावन को।।

अनित्य भावना

सूरज चाँद छिपै निकले, ऋतु फिर फिर कर आवे।
प्यारी आयू ऐसी बीते, पता नहीं पावे।।
पर्वत पतित नदी सरिता जल, बह कर नहिं हटता।
स्वाँस चलत यों घटे काठ ज्यों, आरे सों कटता।।
ओस बूंद ज्यों गले धूप में, वा अन्जुलि पानी।
छिन छिन यौवन छीन होत है, क्या समझे प्रानी।।
इन्द्रजाल आकाश नगर सम, जग सम्पत्ति सारी।
अथिर रूप संसार विचारो, सब नर अरु नारी।।

अशरण भावना

काल सिंह ने मृग चेतन को घेरा भव वन में।
नहीं बचावन हारा कोई, यों समझो मन में।।
मन्त्र यन्त्र सेना धन सम्पत्ति, राज पाट छूटे।
वश नहीं चलता काल लुटेरा, काय नगरि लूटे।।
चक्र रतन हलधर सा भाई, काम नहीं आया।
एक तीर के लगत कृष्ण की, विनश गई काया।।
देव धर्म गुरु शरण जगत में, और नहीं कोई।
भ्रम से फिरे भटकता चेतन, यूँ ही उमर खोई।।

संसार भावना

जनम मरण अरु जरा रोग से, सदा दुखी रहता।
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव भव, परिवर्तन सहता।।
छेदन भेदन नरक पशू गति, वध बन्धन सहना।
राग उदय से दुख सुरगति में, कहाँ सुखी रहना।।
भोगि पुण्य फल हो इक इन्द्री, क्या इसमें लाली।
कुतवाली दिन चार वही फिर, खुरपा अरु जाली।।
मानुष जन्म अनेक विपतिमय, कहीं न सुख देखा।
पंचम गति सुख मिले, शुभाशुभ का मेटो लेखा।।

एकत्व भावना

जन्मे मरे अकेला चेतन, सुख दुःख का भोगी।
और किसी का क्या इक दिन, यह देह जुदी होगी।।
कमला चलत न पेंड जाय मरघट तक परिवारा।
अपने अपने सुख को रोवे, पिता - पुत्र दारा।।

ज्यों मेले में पन्थी जन मिलि, नेह फिरे धरते।
ज्यों तरुवर पैं रैन बसेरा, पन्छी आ करते।।
कोस कोई दो कोस कोई उड़, फिर थक-थक हारे।
जाय अकेला हंस संग में, कोई न पर मारे।।

अन्यत्व भावना

मोह रूप मृग तृष्णा जल में, मिथ्या जल चमके।
मृग चेतन नित भ्रम में उठ-उठ, दोड़े थक-थक के।।
जल नहिं पावै प्राण गमावे, भटक-भटक मरता।
वस्तु पराई मानै अपनी, भेद नहीं करता।।

तू चेतन अरु देह अचेतन, यह जड़ तू ज्ञानी।
मिले अनादि यतन तें बिछुड़े, ज्यों पय अरु पानी।।
रूप तुम्हारा सबसों न्यारा, भेद ज्ञान करना।
जोलों पौरुष थके न तो लों, उद्यम सो चरना।।

अशुचि भावना

तू नित पोखे यह सूखे ज्यों, धोवे त्यों मैली।
निश दिन करे उपाय देह का, रोग दशा फैली।।
मात पिता रज वीरज मिलकर, बनी देह तेरी।
मांस हाड़ नश लहू राध की प्रगट व्याधि घेरी।।

काना पौण्डा पड़ा हाथ यह, चूँसे तो रोवे।
फले अनन्त जु धर्म ध्यान की, भूमि विषै बोवे।।
केसर चन्दन पुष्प सुगन्धित, वस्तु देख सारी।
देह परसतें होय, अपावन निश दिन मल जारी।।

आस्रव भावना

ज्यों सर जल आवत मोरी त्यों, आस्रव कर्मन को।
दर्वित जीव प्रदेश गहै जब, पुद्गल भरमन को।।
भावित आस्रव भाव शुभाशुभ, निश दिन चेतन को।
पाप-पुण्य के दोनों करता, कारण बन्धन को।।
पन मिथ्यात् योग पन्द्रह द्वादश अविरत जानो।
पंच रु बीस कषाय मिले सब, सत्तावन मानो।।
मोह भाव की ममता टारे, पर परिणति खोते।
करे मोख का यतन निरास्रव ज्ञानी जन होते।।

संवर भावना

ज्यों मोरी में डाट लगावे, तब जल रुक जाता।
त्यों आस्रव को रोके संवर क्यों नहिं मन लाता।।
पंच महाव्रत समिति गुप्तिकर, वचन काय मन को।
दश विध धर्म परीषह बाईस, बारह भावन को।।
यह सब भाव सतावन मिलकर, आस्रव को खोते।
सुपन दशा से जागो चेतन, कहाँ पड़े सोते।।
भाव शुभाशुभ रहित शुद्धि, भावन संवर पावै।
डाँट लगत यह नाव पड़ी, मँझधार पार जावै।।

निर्जरा भावना

ज्यों सरवर जल रुका सूखता, तपन पड़े भारी।
संवर रोके कर्म निर्जरा, हैं सोखन हारि।।
उदय भोग सविपाक समय, पक जाय आम डाली।
दूजी है अविपाक पकावें, पाल विषै माली।।

पहली सबके होय नहीं कुछ, सरे काम तेरा।
दूजी करे जु उद्यम करके, मिटे जगत फेरा।।
संवर सहित करो तप प्रानी, मिले मुक्ति रानी।
इस दुलहिन की यही सहेली, जाने सब ज्ञानी।।

लोक भावना

लोक अलोक अकाश माँहि थिर, निराधार जानो।
पुरुष रूप कर कटी भये षट् द्रव्यन सों मानों।।
इसका कोई न करता हरता, अमिट अनादि है।
जीव रु पुद्गल नाचे यामैं, कर्म उपाधि है।।

पाप पुण्य सों जीव जगत में, नित सुख दुख भरता।
अपनी करनी आप भरै सिर औरन के धरता।।
मोह कर्म को नाश, मेटकर सब जग की आशा।
निज पद में थिर होय लोक के, शीश करो वासा।।

बोधि दुर्लभ भावना

दुर्लभ है निगोद से थावर, अरु त्रस गति पानी।
नर काया को सुरपति तरसे, सो दुर्लभ प्राणी।।
उत्तम देस सुसंगति दुर्लभ, श्रावक कुल पाना।
दुर्लभ सम्यक् दुर्लभ संयम, पंचम गुण ठाना।।

दुर्लभ रत्नत्रय आराधन, दीक्षा का धरना।
दुर्लभ मुनिवर को व्रत पालन, शुद्ध भाव करना।।
दुर्लभ तैं दुर्लभ हैं चेतन, बोधि ज्ञान पावै।
पाकर केवलज्ञान नहीं फिर, इस भव में आवै।।

धर्म भावना

एकान्तवाद के धारी जग में, दर्शन बहुतेरे।
कल्पित नाना युक्ति बनाकर, ज्ञान हरें मेरे।।
हो सुछन्द सब पाप करें सिर, करता के लावे।
कोई छिनक कोई करता से जग में भटकावे।।

वीतराग सर्वज्ञ दोष बिन, श्री जिन की वाणी।
सप्त तत्त्व का वर्णन जामें, सब को सुख दानी।।
इनका चितवन बार-बार कर, श्रद्धा उर धरना।
'मंगत' इसी जतन तें इक दिन, भव सागर तरना।।

मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ

मैं हूँ अपने में स्वयं पूर्ण, पर की मुझ में कुछ गन्ध नहीं।
मैं अरस, अरूपी, अस्पर्शी, पर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं।।
मैं रंग-राग से भिन्न भेद से, भी मैं भिन्न निराला हूँ।
मैं हूँ अखण्ड, चैतन्य पिण्ड, निज रस में रमने वाला हूँ।।
मैं ही मेरा कर्त्ता-धर्त्ता, मुझ में पर का कुछ काम नहीं।
मैं मुझ में रहने वाला हूँ, पर में मेरा विश्राम नहीं।।
मैं शुद्ध, बुद्ध, अविरुद्ध, एक, पर-परिणति से अप्रभावी हूँ।
आत्मानुभूति से प्राप्त तत्व, मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ।।

अपूर्व अवसर

आवे कब अपूर्व अवसर जब, बाह्यान्तर होऊँ निर्ग्रन्थ।
सब सम्बन्धों के बन्धन तज, विचरूं महत् पुरुष के पंथ।।
सर्व भाव से उदासीन हो, भोजन भी संयम के हेतु।
किंचित ममता नहीं देह से, कार्य सभी हों मुक्ती सेतु।।
प्रगटज्ञान मिथ्यात्व रहित से, दीखे आत्म काय से भिन्न।
चरित मोह भी दूर भगाऊँ, निज स्वभाव का ध्यान अछिन्न।।
जब तक देह रहे तब तक भी, रहुँ त्रिधा, मैं निज में लीन।
घोर परीषह उपसर्गों से, ध्यान न होवे मेरा क्षीण।।
संयम हेतू योग प्रवर्तन, लक्ष्य स्वरूप जिनाज्ञाधीन।
क्षण-क्षण चिन्तन घटता जावे, होऊँ अनन्त ज्ञान में लीन।।
राग-द्वेष ना हो विषयों में, अप्रमत्त अक्षोभ सदैव।
द्रव्य क्षेत्र अरुकाल भाव से, विचरण हो निरपेक्षित एव।।
क्रोध प्रति मैं क्षमा संभारूँ, मान तजूँ मार्दव भाऊँ।
माया को आर्जव से जीतूँ, वृत्ति लोभ नहीं अपनाऊँ।।
उपसर्गों में क्रोध न तिलभर, चक्री बन्दे मान नहीं।
देह जाय किंचित नहीं माया, सिद्धि का लोभ निदान नहीं।।
नग्न वेष अरु केश लौंच, स्नान दन्त धोवन का त्याग।
नहीं रुचि श्रृंगार प्रति, निज संयम से होवे अनुराग।।
शत्रु मित्र देखूं न किसी को, मानापमान में समता हो।
जीवन मरण दोऊ सम देखूँ भव शिव में न विषमता हो।।
एकाकी जंगल मरघट में, हो अडोल निज ध्यान धरूँ।
सिंह व्याघ्र यदि तन को खायें, उनमें मैत्री भाव धरूँ।।

घोर तपश्चर्या करते अहार, अभाव में खेद नहीं।
सरस अन्न में हर्ष न रजकण, स्वर्ग ऋद्धि में भेद नहीं।।
चारित मोह पराजित होवे, आवे जहाँ अपूर्व करण।
अनन्य चिन्तन शुद्ध भाव का, क्षपक श्रेणी पर आरोहण।।
मोह स्वयंभू रमण पारकर, क्षीण मोह गुण स्थान वरूँ।
ध्यान शुक्ल एकत्व धार कर, केवलज्ञान प्रकाश करूँ।।
भव के बीज घातिया विनशै, होऊँ मैं कृतकृत्य तभी।
दर्शज्ञानसुख बल अनन्त मय, विकसित हो निजभाव सभी।।
चार अघाति कर्म जहाँ पर, जली जेबरी भांति रहे।
आयु पूर्ण हो मुक्त दशा फिर, देह मात्र भी नहीं रहे।।
मन वच काया कर्म वर्गणा, के छूटे सब ही सम्बन्ध।
सूक्ष्म अयोगी गुण स्थान हो, सुखदायक अरुपूर्ण अबन्ध।।
परमाणु मात्र स्पर्श नहीं हो, निष्कलंक अरु अचल स्वरूप।
चैतन्य मूर्ति शुद्ध निरंजन, अगुरुलघु वस निज पद रूप।।
पूर्व प्रयोगादिक कारण वश, उर्ध्व गमन सिद्धालय तिष्ठ।
सादि अनन्त समाधि सुख में, दर्शनज्ञान चरित्र अनन्त।।
जो पद श्री सर्वज्ञ ज्ञान में, कह न सके पर श्री भगवान।
वह स्वरूप फिर अन्य कहे को, अनुभव गोचर है वह ज्ञान।।
मात्र मनोरथ रूप ध्यान यह, है सामर्थ्य हीनता आज।
'रायचन्द' तो भी निश्चयमन, शीघ्र लहूंगा निजपदराज।।
सहज भावना से प्रेरित हो, हुआ स्वयं ही यह अनुवाद।
शब्द अर्थ की चूक कहीं हो, सुधी सुधार हरो अवसाद।।

पार्श्वनाथ स्तोत्र

नरेन्द्रं फणीन्द्रं सुरेन्द्रं अधीसं, शतेन्द्रं सु पूजैं भजैं नाय शीशं।
मुनीन्द्रं गणेन्द्रं नमों जोड़ि हाथं नमो देवदेवं सदा पार्श्वनाथं।।
गजेन्द्रं मृगेन्द्रं गह्यों तू छुड़ावैं, महा आगतैं नागतैं तू बचावै।
महावीरतैं युद्ध में तू जितावै, महारोगतैं बंधतें तू छुड़ावै।।
दुखीदु:खहर्ता सुक्खीसुक्ख कर्त्ता, सदा सेवकों को महानंदभर्ता।
हरे यक्ष राक्षस्स भूतं पिशाचं, विषं डांकिनी विघ्न के भय अवाचं।।
दरिद्रीन को द्रव्य के दान दीने, अपुत्रीनकौं तू भले पुत्र कीने।
महासंकटों से निकारै विधाता, सबै संपदा सर्व को देहि दाता।।
महाचोरको वज्र को भय निवारैं, महापौन के पुंजतैं तू उबारैं।
महाक्रोध की अग्नि को मेघ धारा, महालोभ शैलेष को वज्र भारा।।
महामोह अन्धेर को ज्ञान भानं, महाकर्मकांतार को दौ प्रधानं।
किये नाग नागिन अधोलोकस्वामी, हर्‍योमान तू दैत्य को हो अकामि।।
तू ही कल्पवृक्षं तुही कामधेनं तुही दिव्य चिंतामणी नाग एनं।
पशू नर्क के दु:खतैं तू छुड़ावै, महास्वर्गतैं मुक्तिमैं तू बसावै।।
करै लोहको हेम पाषाण नामी, रटै नाम सो क्यों न हो मोक्षगामी।
करै सेव ताकी करैं देवसेवा, सुनै वेन सोही लहै ज्ञान मेवा।।
जपै जाप ताको नहीं पाप लागै, धरै ध्यान ताके सबै दोष भागै।
बिना तोहि जाने धरे भव घनेरे, तुम्हारी कृपातैं सरैं काज मेरे।।

(*दोहा*)

गणधर इन्द्र न कर सकैं, तुम विनती भगवान।
'द्यानत' प्रीति निहारकैं, कीजे आप समान।।

महावीराष्टक स्तोत्र

(कविवर भगचन्द्र)

(शिखरिणी)

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचिताः।
समं भान्ति ध्रौव्य-व्यय-जनि लसन्तोऽन्तरहिताः।।
जगत्साक्षीमार्ग-पकटन-परो भानुरिव यो।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः)।।
अताम्रं यच्चक्षुः कमल-युगलं स्पन्द-रहितम्।
जनान्-कोपापायं प्रकटयति वाभ्यन्तरमपि।।
स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वातिविमला।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः)।।
नमन्नाकेन्द्रली मुकुट-मणि-भा-जाल-जटिलं।
लसत्-पादाम्भोज-द्वयमिह यदीयं तनु-भृताम्।।
भव-ज्ज्वाला-शान्त्यैप्रभवति जलं वा स्मृतमपि।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः)।।
यदर्चा-भावेन प्रमुदित-मना दर्दुरइह।
क्षणादासीत्-स्वर्गी गुण-गण-समृद्धः सुखनिधिः।।
लभंते सद्भक्ताः शिव-सुख-समाजं किमुतदा।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः)।।
कनत्-स्वर्णाभासोऽप्यपगत- तनुर्ज्ञान-निवहो।
विचित्रात्माप्येको नृपतिवरसिद्धार्थ - तनयः।।
अजन्मापि श्रीमान् विगत्-भवरागोद्भुत-गतिः।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः)।।

यदीयावाग्गंगा विविध-नय -कल्लोल-विमला।
बृहज्ज्ञानांभोभिर्जगति जनतां या स्नपयति।।
इदानीमप्येषा बुध-जन मरालैः परिचिता।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः)।।

अनिर्वारोद्रेकरस्त्रिभुवन - जयी काम सुभटः।
कुमारावस्थायामपि निजबलाद्येन विजितः।।
स्फुरन्नित्यानन्द-प्रशम-पद-राज्याय स जिनः।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः)।।

महा-मोहातंक- प्रशमन-परा- कस्मिन्भिषग्।
निरापेक्षो बंधुर्विदित-महिमा मंगलकरः।।
शरण्यः साधूनां भव-भय-भृतामुत्तम-गुणो।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः)।।

(अनुष्टुप)

महावीराष्टकं स्तोत्रं भक्त्या भागेन्दुना कृतम्।
यःपठेच्छृणुयाच्चापि स याति परमां गतिम्।।

✠✠✠

भव के भय का भेदन करने वाले इन भगवान के प्रति क्या तुझे भक्ति नहीं है? तो तू भव समुद्र में रहने वाले मगर के मुख में है।

–नियमसार कलश–15
मुनिराज पद्मप्रभमलधारी देव

श्री समयसार स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भाव मरणों टालवा करुणा करि,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! तें संजीवनी।
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुन्द संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।।

(अनुष्टुप्)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या;
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नितरति;
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी।
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी उतरती;
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणती।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तूं छे निश्चयग्रन्थ, भंग सघला व्यवहारना भेदवा,
तूं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा।
साथी साधकनो, तूं भानु जगनो संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।।

(वसंततिलका)

सूण्ये तने रसनिबन्ध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणांय।
तूं रुचतां जगतनी रुचि आलसे सौ,
तूं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।।

(अनुष्टुप्)

बनाऊँ पत्र कुन्दननां, रत्नोंनां अक्षरों लखी,
तथापि कुन्दसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदि।

समाधिमरण भाषा

गौतम स्वामी बन्दौं नामी मरण समाधि भला है।
मैं कब पाऊँ निस दिन ध्याऊँ गाऊँ वचन कला है।।
देव धरम गुरु प्रीति महादृढ़ सप्त व्यसन नहिं जाने।
त्यागि बाईस अभक्ष संयमी बारह व्रत नित ठाने।।
चक्की उखरी चूली बुहारी पानी त्रस न विराधै।
बनिज करे पर द्रव्य हरे नहिं छहों करम इमि साधै।।
पूजा शास्त्र गुरुन की सेवा संयम तप चहुँ दानी।
पर उपकारी अल्प अहारी सामायिक विधिज्ञानी।।
जाप जपै तिहुँ योग धरे दृढ़ तन की ममता टारै।
अन्त समय वैराग्य सम्हारे ध्यान समाधि विचारै।।
आग लगे अरु नाव डुबै जब धर्म विघन जब आवै।
चार प्रकार अहार त्यागि के मन्त्र सुमन में ध्यावै।।
रोग असाध्य जहाँ बहु देखे कारण और निहारैं।
बात बड़ी है जो बनि आवै भार भवन को डारै।।
जो न बने तो घर में रह करि सबसों होय निराला।
मात पिता सुत त्रियको सौंपे निज परिग्रह अहि काला।।
कुछ चैत्यालय कुछ श्रावकजन कुछ दुखिया धन देई।
क्षमा क्षमा सब होंसों कहिके मन की शल्य हनेई।।
शत्रुन सों मिलि निजकर जोरै मैं बहु करि है बुराई।
तुम से प्रीतम को दुख दीने ते सब बकसो भाई।।
धन धरती जो मुख सों मांगे सो सब दे संतोषै।
छहों काय के प्राणी ऊपर करुणा भाव विशेषै।।

ऊँच नीच घर बैठ जगह इक कुछ भोजन कुछ पेलैं।
दूधाधारी क्रम क्रम तजिके छाछ अहार पहेलै।।
छाछ त्यागि के पानी राखै पानी तजि संथारा।
भूमि माँही थिर आसन मांडे साधर्मी ढिंग प्यारा।।
जब तुम जानो यह न जपै है तब जिनवाणी पढ़िए।
यों कहि मौन लियो सन्यासी पंच परम पद गहिए।।
चौ आराधन मन में ध्यावै बारह भावन भावैं।
दशलक्षण मन धर्म विचारैं रत्नत्रय मन ल्यावैं।।
पैंतीस सोलह षट् पन चारों दुई इक बरन विचारैं।
काया तेरी दुखकी ढेरी ज्ञानमयी तू सारैं।।
अजर अमर निज गुण सो पूरे परमानन्द सुझावै।
आनन्दकन्द चिदानन्द साहब तीन जगतपति ध्यावै।।
क्षुधा तृषादिक होय परीषह सहै भाव सम राखै।
अतीचार पाँचों सब त्यागैं ज्ञान सुधारस चाखै।।
हाड़ मांस सब सूखि जाय जब धर्म लीन तन त्यागैं।
अद्भुत पुण्य उपाय सुरग में सेज उठै ज्यों जागैं।।
तहाँ ते आवै शिवपद पावै विलसैं सुक्ख अनन्तो।
'द्यानत' यह गति होय हमारी जैन धर्म जयवन्तो।।

✠✠✠

समाधि भावना

दिनरात मेरे स्वामी मैं भावना ये भाऊँ,
देहान्त के समय में तुमको न भूल जाऊँ।
शत्रु अगर कोई हो सन्तुष्ट उनको कर दूँ,
समता का भाव धर कर, सबसे क्षमा कराऊँ।।
त्यागूँ आहार पानी, औषध विचार अवसर,
टूटे नियम न कोई दृढ़ता हृदय में लाऊँ।
जागे नहीं कषायें नहिं वेदना सतावे,
तुम से ही लौ लगी हो, दुर्ध्यान को भगाऊँ।।
आतम स्वरूप अथवा, आराधना विचारूँ,
अरहन्त सिद्ध साधू, रटना यही लगाऊँ।
धर्मात्मा निकट हों, चरचा धरम सुनावें,
वो सावधान रक्खें, गाफिल न होने पाऊँ।।
जीने की हो न वांछा, मरने की हो न ख्वाहिश,
परिवार मित्र जन से मैं मोह को हटाऊँ।
भोगे जो भोग पहले उनका न होवे सुमरन,
मैं राज्य सम्पदा या, पद इन्द्र का न चाहूँ।
रत्नत्रय का हो पालन, हो अन्त में समाधि,
'शिवराम' प्रार्थना यह जीवन सफल बनाऊँ।।

आत्म भावना

निज स्वभाव में लीन हुए, तब वीतराग सर्वज्ञ हुए,
भव्य भाग्य अरु कुछ नियोग से, जिनके वचन प्रसिद्ध हुए।
मुक्ति मार्ग मिला भव्यों को, वे भी बंधन मुक्त रहे,
उनमें निज स्वभाव दर्शकता देख भक्ति से विनत रहे।
वीतराग सर्वज्ञ ध्वनित जो, सप्त तत्व परकाशक है,
अविरोधी और न्याय तर्क से, मिथ्या मति का नाशक है।
नहिं उल्लंघ सके प्रतिवादि धर्म अहिंसा है जिसमें,
आत्मोन्नति की मार्ग विधायक जिनवाणी हम नित्य नमें।
विषय कषाय आरम्भ न जिनके, रत्नत्रय निधि रखते हैं,
मुख्यरूप से निज स्वभाव, साधन में तत्पर रहते हैं।
प्रमत्त भूमिका में जिनके, अट्ठाईस मूल गुण होते हैं,
ऐसे ज्ञानी साधु गुरु का, हम अभिनन्दन करते हैं।
उन सम निज का हो अवलम्बन, उनका ही अनुकरण करूँ,
उन्हीं जैसी परिचर्या से, आत्म भाव को प्रकट करूँ।
अष्ट मूल गुण धारणकर अन्याय अनीति त्यागूँ मैं,
छोड़ अभक्ष्य सप्त व्यसनों को पंच पाप परिहारुँ मैं।
सदा करूँ स्वाध्याय तत्व निर्णय सामायिक आराधन,
विनय भक्ति और ज्ञान दान से राग घटाऊँ मैं पावन।
जितनी मंद कषाय होय उसका न करूँ अभिमान कभी,
लक्ष्य पूर्णता का अपनाकर सहूँ, परीषह दुख सभी।
गुणीजनों पर हो श्रद्धा व्यवहार और निश्चय सेवा,
उनकी करें दुःखी प्रति करुणा हमको होवे सुख देवा।

शत्रु न जग में दीखे कोई, उन पर भी नहिं क्षोभ करूँ,
यदि संभव हो किसी युक्ति से, उनमें भी सद्ज्ञान भरूँ।
राग नहीं हो लक्ष्मी का ना लोक जनों की किंचित लाज,
प्रभु वचनों से जो प्रशस्त पथ उसमे ही होवे अनुराग।
होय प्रशंसा अथवा निन्दा कितनें हों उपसर्ग कदा,
उन पर दृष्टि भी नहीं जावे, परिणति में हो साम्य सदा।
होवे मौत अभी ही चाहे, कभी न पथ में विचलित हो,
इष्ट वियोग अनिष्ट योग में सदा मेरु सम अचलित् हो।
चाह नहीं हो पर द्रव्यों की विषयों की तृष्णा जावे,
क्षण-क्षण चिन्तन रहे तत्व का, खोटे भाव नहीं आवे।
समय-समय निज अनुभव होवे आत्मा में थिरता आवे,
सम्यक्-दर्शन-ज्ञान-चरण से, शिव सुख स्वयं निकट आवे।
प्रगट होय निर्ग्रन्थ अवस्था, निश्चय आतम ध्यान धरूँ,
स्वाभाविक आतम गुण प्रगटे, सकल कर्म मल नष्ट करूँ।
होवे अन्त भावनाओं का, यही भावना भाता हूँ,
भेद दृष्टि के सब विकल्प तज, निज स्वभाव में आता हूँ।

(दोहा)

सुखमय आत्मस्वभाव है, ज्ञाता दृष्टा ग्राह्य।
लीन आत्मा में रहे स्वयं सिद्ध पद पाय।।

✠✠✠

महावीर वन्दना

जो मोह माया मान मत्सर, मदन मर्दन वीर हैं।
जो विपुल विघ्नों बीच में भी, ध्यान धारण धीर हैं।।
जो तरण-तारण, भव-निवारण, भव-जलधि के तीर हैं।
वे वंदनीय जिनेश, तीर्थंकर स्वयं महावीर हैं।।

जो राग-द्वेष विकार वर्जित, लीन आतम ध्यान में।
जिनके विराट् विशाल निर्मल, अचल केवलज्ञान में।।
युगपद् विशद् सकलार्थ झलकें, ध्वनित हों व्याख्यान में।
वे वर्द्धमान महान जिन, विचरें हमारे ध्यान में।।

जिनका परम पावन चरित, जलनिधि समान अपार है।
जिनके गुणों के कथन में गणधर न पावें पार हैं।।
बस वीतराग-विज्ञान ही, जिनके कथन का सार है।
उन सर्वदर्शी सन्मती को, वंदना शत बार है।।

जिनके विमल उपदेश में सबके उदय की बात है।
समभाव समताभाव जिनका, जगत में विख्यात है।।
जिसने बताया जगत को, प्रत्येक कण स्वाधीन है।
कर्त्ता न धर्त्ता कोई है, अणु-अणु स्वयं में लीन है।।

आतम बने परमात्मा, हो शान्ति सारे देश में।
है देशना-सर्वोदयी, महावीर के संदेश में।।

गुरु वन्दना

बन्दौं दिगम्बर गुरु वरन, जग-तरन-तारन जान;
जे भरम-भारी रोग को हैं, राज वैंद्य महान।
जिनके अनुग्रह बिन कभी, नहिं कटै कर्म-जंजीर;
ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक-पीर।।
यह तन अपावन अथिर है, संसार सकल असार,
ये भोग विष-पकवान से, इह भांति सोच-विचार।
तप विरचि श्री मुनि वन बसे, सब छांडि परिग्रह भीर;
ते साधु मेरे उर बसहु मम हरहु पातक पीर।
जे काच कंचन सम गिनहिं, अरि-मित्र एक सरूप;
निन्दा-बढ़ाई सारिखी, वन-खण्ड शहर अनूप।
सुख-दुःख जीवन-मरन में, नहिं खुशी, नहिं दिलगीर;
ते साधु मेरे उर बसहु मम हरहु पातक पीर।
जे बाह्य परवत वन बसैं, गिरि-गुफा-महल मनोग;
सिल-सेज समता-सहचरी, शशि-किरन-दीपक जोग।
मृग मित्र, भोजन तप-मई, विज्ञान-निरमल नीर;
ते साधु मेरे उर बसहु मम हरहु पातक पीर।
सूखहिं सरोवर जल भरे, सूखहिं तरंगिनी तोय;
बाटहिं बटोही ना चलै, जहँ धाम गरमी होय।
तिहँकाल मुनिवर तप तपहिं, गिरि-शिखर ठाड़े धीर;
ते साधु मेरे उर बसहु मम हरहु पातक पीर।
घनघोर गरजहि घन-घटा, जल परहि पावस-काल;
चहुँओर चमकहिं बीजुरी, अति चलै सीरी ब्याल।

तरु-हेठ तिष्ठहिं तब जती, एकान्त अचल शरीर;
ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक पीर।
जब शीत मास तुषारसों, दाहै सकल बन-राय;
जब जमैं पानी पोखरां, थरहरै सबकी काय।
तब नगन निवसैं चौहटैं, अथवा नदी के तीर;
ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक पीर।
कर जोर 'भूधर' बीनवै, कब मिलहिं वे मुनिराज;
यह आश मन की कब फलै, मम सरहिं सगरे काज।
संसार-विषम-विदेश में, जे बिना कारण वीर;
ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक पीर।

✠✠✠

हे जिनेश आपके दर्शन से आपके चरण कमलों की प्राप्ति होने पर ऐसी कौनसी वस्तु बाकी रही जो मुझे न मिली हो? अर्थात् समस्त पदार्थों की सिद्धि हुई। इसलिये ऐसा कौनसा ज्ञानी है, जो आपके दर्शनों की इच्छा न रखता हो? अर्थात् समस्त ज्ञानी पुरुष आपके दर्शनों की इच्छा रखते हैं।

–श्री जिनेन्द्र स्तवन

परम पूज्य आचार्य पद्मनन्दिदेव

गुरु स्तुति

ते गुरु मेरे मन बसो जे भवजलधि जिहाज।
आप तिरहिं पर तारहिं, ऐसे श्री ऋषिराज।।ते गुरु०।।
मोहमहारिपु जानिकैं, छाड्यो सब घरबार।
होय दिगम्बर वन बसे, आतम शुद्ध विचार।।ते गुरु०।।
रोग उरग-बिल वपु गिण्यो, भोग भुजंग समान।
कदली तरु संसार है, त्याग्यो सब यह जान।।ते गुरु०।।
रतनत्रयनिधि उर धरें, अरु निरग्रन्थ त्रिकाल।
मार्यो कामखबीस को स्वामी परम दयाल।।ते गुरु०।।
पंच महाव्रत आदरें पांचों समिति समेत।
तीन गुपति पालैं सदा अजर-अमर पद हेत।।ते गुरु०।।
धर्म धरैं दशलाछनी, भावै भावन सार।
सहैं परीषह बीस द्वै, चारित-रतन-भण्डार।।ते गुरु०।।
जेठ तपै रवि आकरो, सूखै सरवर नीर।
शैल-शिखर मुनि तप तपैं, दाझें नगन शरीर।।ते गुरु०।।
पावस रैन डरावनी बरसे जलधरधार।
तरुतल निवसै तब यती, बाजै झंझा ब्यार।।ते गुरु०।।
शीत पड़ै कपि-मद गलै, दाहै सब वनराय।
तालतरंगिनि के तटैं, ठाड़े ध्यान लगाय।।ते गुरु०।।
इह विधि दुद्धर तप तपै, तीनों काल मंझार।
लागे सहज सरूप मैं, तनसों ममत निवार।।ते गुरु०।।
पूरब भोग न चिंतवै, आगम बांछै नाहिं।
चहुँगतिके दुःख सों डरै, सुरति लगी शिव मांहि।।ते गुरु०।।

रंग महल में पौढते, कोमल सेज बिछाय।
ते पच्छिम निशि भूमि मैं, सोवें संवरि काय।।ते गुरु०।।
गज चढि चलते गरवसों, सेना सजि चतुरंग।
निरखि निरखि पग वे धरै, पालैं करुणा अंग।।ते गुरु०।।
वे गुरु चरण जहाँ धरै, जग में तीरथ जेह।
सो रज मम मस्तक चढो, 'भूधर' मांगे एह।।ते गुरु०।।

✠✠✠

हे जिनेश! आपके दर्शनों में इतनी शक्ति है कि जो मनुष्य आपको विनयभाव से देखता है, उस मनुष्य के जन्म-जन्मांतर के समस्त दुःख नष्ट हो जाते हैं तथा नाना प्रकार के सुखों की प्राप्ति होती है -यह तो कुछ बात नहीं। अर्थात् जन्मांतर के दुःख तो अवश्य ही नष्ट होते हैं तथा जन्मांतर में सुख मिलता ही है। किन्तु हे प्रभो! इस जन्म में भी आपके दर्शनों से नाना प्रकार के सुखों की प्राप्ति होती है। तथा समस्त प्रकार के दुःखों का नाश हो जाता है अर्थात् आपके दर्शन तत्काल ही फल देने वाले हैं।

-ऋषभ स्तोत्र

परम पूज्य आचार्य पद्मनन्दि देव

मेरा जीवन

अहो चैतन्य आनन्दमय, सहज जीवन हमारा है।
अनादि अनन्त पर निरपेक्ष, ध्रुव जीवन हमारा है।।
हमारे में न कुछ पर का, हमारा भी नहीं पर में।
द्रव्य-दृष्टि हुई सच्ची, आज प्रत्यक्ष निहारा है।।
अनन्ती शक्तियां उछले, सहज सुख ज्ञानमय विलसे।
अहो प्रभुता परम पावन ,वीर्य का भी न पारा है।।
नहीं जन्मूँ, नहीं मरता, नहीं घटता, नहीं बढ़ता।
अगुरुलघुरूप ध्रुव ज्ञायक, सहज जीवन हमारा है।।
सहज ऐश्वर्यमय मुक्ति, अनन्तों गुणमयी ऋद्धि।
विलसती नित्य ही सिद्धि, सहज जीवन हमारा है।।
किसी से कुछ नहीं लेना किसी को कुछ नहीं देना।
अहो निश्चिंत परमानन्द, मय जीवन हमारा है।।
ज्ञानमय लोक है मेरा, ज्ञान ही रूप है मेरा।
परम निर्दोष समतामय, ज्ञान जीवन हमारा है।।
मुक्ति में व्यक्त है जैसा, यहाँ अव्यक्त है वैसा।
अबद्धस्पृष्ट अनन्य, नियत जीवन हमारा है।।
सदा ही है, न होता है, न जिसमें कभी भी होता है।
अहो उत्पाद-व्यय निरपेक्ष, ध्रुव जीवन हमारा है।।
विनाशी बाह्य जीवन की, आज ममता तजी झूठी।
रहे चाहे अभी जाये, सहज जीवन हमारा है।।
नहीं परवाह अब जग की, नहीं है चाह शिवपद की।
अहो परिपूर्ण निष्पृह, ज्ञानमय जीवन हमारा है।।

छहढाला

(मंगलाचरण)

(सोरठा)

तीन भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिकैं।।

पहली ढाल

(चौपाई)

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहैं दुख तैं भयवन्त।
तातैं दुखहारी सुखकार, कहैं सीख गुरु करुणा धार।।
ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्यान।
मोह महामद पियौ अनादि, भूल आप को भरमत वादि।।
तास भ्रमन की है बहु कथा, पै कछु कहुँ कही मुनि यथा।
काल अनन्त निगोद मँझार, बीत्यो एकेन्द्रिय तन धार।।
एक श्वांस में अठ-दश बार, जन्म्यौ-मर्‌यो भर्‌यो दुखभार।
निकसि भूमि जल पावक भयो, पवन प्रत्येक वनस्पति थयो।।
दुर्लभ लहि ज्यों चिंतामणि, त्यों पर्याय लही त्रसतणी।
लट पिपील अलि आदि शरीर, धर-धर मर्‌यो सही बहु पीर।।
कबहुँ पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन बिन निपट अज्ञानी थयो।
सिंहादिक सैनी है क्रूर, निबल पशु हति खाये भूर।।
कबहुँ आप भयो बलहीन, सबलनि करि खायो अति दीन।
छेदन-भेदन भूखरु पियास, भार-वहन हिम आतप-त्रास।।
वध-बन्धन आदिक दुःख घने, कोटि जीभ तैं जात न भने।
अति संक्लेश भाव तैं मर्‌यो, घोर श्वभ्र सागर में पर्‌यो।।

तहाँ भूमि परसत दुःख इसो, बिच्छू सहस डसे नहिं तिसो।
तहाँ राध-श्रोणित वाहिनी, कृमि-कुल कलित देह दाहिनी।।
सेमर तरु दलजुत असिपत्र, असि ज्यौं देह विदारैं तत्र।
मेरु-समान लोह गलि जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय।।
तिल-तिल करैं देह के खण्ड, असुर भिड़ावैं दुष्ट प्रचण्ड।
सिंधु-नीर तैं प्यास न जाय, तो पण एक न बूँद लहाय।।
तीन लोक को नाज जु खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय।
ये दुःख बहु सागर लौं सहे, करम-जोग तैं नरगति लहै।।
जननी उदर वस्यौ नव मास, अंग-सकुचतैं पायो त्रास।
निकसत जे दुःख पाये घोर, तिनको कहत न आवे ओर।।
बालपने में ज्ञान न लह्यौ, तरुण समय तरुणीरत-रह्यौ।
अर्द्धमृतक सम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखै आपनो।।
कभी अकाम-निर्जरा करै, भवनत्रिक में सुरतन धरै।
विषयचाह-दावानल दह्यौ, मरत विलाप करत दुःख सह्यौ।।
जो विमानवासी हूँ थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुःख पाय।
तहँ तैं चय थावर-तन धरै, यों परिवर्तन पूरे करै।।

दूसरी ढाल

(पद्धरी छन्द)

ऐसे मिथ्यादृग-ज्ञान-चरण, वश भ्रमत भरत दुःख जन्म-मरण।
तातैं इनको तजिये सुजान, सुन तिन संक्षेप कहूँ बखान।।
जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व, सरधैं तिन माहिं विपर्ययत्व।
चेतन को है उपयोग रूप, बिनमूरत चिन्मूरत अनूप।।
पुद्गल नभ धर्म-अधर्म काल, इनतैं न्यारी है जीव चाल।
ताको न जान विपरीत मान, करि करै देह में निज पिछान।।

मैं सुखी दुःखी मैं रंक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीण।।
तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान।
रागादि प्रगट ये दुःख दैन, तिनंही को सेवत गिनत चैन।।
शुभ-अशुभ बंध के फल मँझार, रति-अरति करै निजपद बिसार।
आतम हित हेतु विराग ज्ञान, तै लखैं आपको कष्टदान।।
रोके न चाह निज शक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय।
याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान, सो दुःखदायक अज्ञान जान।।
इन जुत विषयनि में जो प्रवृत, ताको जानों मिथ्याचरित्त।
यों मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह, अब जे गृहीत सुनिये सुतेह।।
जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषैं चिर दर्शनमोह एव।
अन्तर रागादिक धरैं जेह, बाहर धन अम्बर तैं सनेह।।
धारें कुलिंग लहिमहत भाव, ते कुगुरु जन्म-जल उपल नाव।
जे राग-द्वेष मल करि मलीन, वनिता गदादिजुत चिन्ह चीन।।
ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, शठ करत न तिन भव-भ्रमण छेव।
रागादि भाव हिंसा समेत, दर्वित त्रस थावर मरण खेत।।
जे क्रिया तिन्हें जानहु कुधर्म, तिन सरधैं जीव लहै अशर्म।
याकूँ गृहीत मिथ्यात्व जान, अब सुन गृहीत जो है अज्ञान।।
एकान्तवाद-दुषित समस्त, विषयादिक पोषक अप्रशस्त।
कपिलादिक-रचित श्रुत को अभ्यास, सो है कुबोध बहु देन त्रास।।
जो ख्याति लाभ पूजादि चाह, धरि करन विविध-विध देह-दाह।
आतम अनात्म के ज्ञानहीन, जे जे करनी तन करन छीन।।
ते सब मिथ्याचारित्र त्याग, अब आतम के हित पन्थ लाग।
जगजाल-भ्रमण को देहु त्याग, अब 'दोलत' निज आतम सुपाग।।

तीसरी ढाल

(नरेन्द्र/जोगीरासा छन्द)

आतम को हित है सुख सो सुख, आकुलता बिन कहिये।
आकुलता शिव माहिं न तातैं, शिव-मग लाग्यो चहिये।।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन शिव, मग सो द्विविध विचारो।
जो सत्यारथ-रूप सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो।।
परद्रव्यन तैं भिन्न आप में, रुचि सम्यक्त्व भला है।
आपरूप को जानपनो सो, सम्यक्ज्ञान कला है।।
आपरूप में लीन रहे थिर , सम्यक्चारित सोई।
अब व्यवहार मोक्ष-मग सुनिये, हेतु नियत को होई।।
जीव अजीव तत्व अरु आस्रव, बन्ध रू संवर जानो।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिन को, ज्यों का त्यों सरधानों।।
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानो।
तिनको सुन सामान्य-विशेषें, दृढ़ प्रतीति उर आनो।।
बहिरातम अन्तर-आतम, परमातम जीव त्रिधा है।
देह-जीव को एक गिनै, बहिरातम तत्त्व मुधा है।।
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के, अन्तर आतम ज्ञानी।
द्विविध संग बिन शुद्ध-उपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी।।
मध्यम अन्तर आतम हैं जे, देशव्रती अनगारी।
जघन कहे अविरत समदृष्टि, तीनों शिव-मगचारी।।
सकल-निकल परमातम द्वैविध, तिन में घाति निवारी।
श्री अरहंत सकल परमातम, लोकालोक निहारी।।
ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्म-मल, वर्जित सिद्ध महन्ता।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगें शर्म अनन्ता।।

बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर आतम हूजै।
परमातम को ध्याय निरन्तर, जो नित आनन्द पूजै।।
चेतनता बिन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं।
पुद्गल पंच वरन रस गन्ध दो, फरस वसु जाके हैं।।
जिय पुद्गल को चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनरुपी।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन बिन मूर्ति निरूपी।।
सकल द्रव्य को वास जास में, सो आकाश पिछानो।
नियत वर्तना निस दिन सो, व्यवहारकाल परिमानो।।
यों अजीव अब आस्रव सुनिये, मन-वच-काय त्रियोगा।
मिथ्या अविरति अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा।।
ये ही आतम को दुःख कारण, तातैं इनको तजिये।
जीव प्रदेश बँधे-विधि सौं, सो बन्धन कबहुँ न सजिये।।
शम-दम तैं जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये।
तप-बल तैं विधि-झरन निर्जरा, ताहि सदा आचरिये।।
सकल कर्म तैं रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी।
इह विधि जो सरधा तत्त्वन की, सो समकित व्यवहारी।।
देव जिनेन्द्र, गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयाजुत सारो।
ये हु मान समकित को कारण, अष्ट अंगजुत धारो।।
वसु मद टारी निवारी त्रिशठता, षट अनायतन त्यागो।
शंकादिक वसु दोष बिना, संवेगादिक चित पागो।।
अष्ट अंग अरु दोष पचीसों, तिन संक्षेपहु कहिये।
बिन जाने तैं दोष-गुनन को, कैसे तजिये गहिये।।
जिन-वच में शंका न धार, वृष भव-सुख-वांछा भानै।
मुनि-तन मलिन न देख घिनावैं, तत्त्व कुतत्त्व पिछानै।।

निज-गुण अरु पर-औगुण ढांकै, वा निज धर्म बढ़ावैं।
कामादिक कर वृषतैं चिगते, जिन-पर को सुदिढ़ावैं।।
धर्मी सों गौ-बच्छ प्रीति सम, कर जिन-धर्म दिपावैं।
इन गुन तैं विपरीत दोष वसु, तिनको सतत खिपावैं।।
पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै।
मद न रूप कौ, मद न ज्ञान कौ, धन-बल कौ मद भानै।।
तप कौ मद न मद जु प्रभुता कौ, करै न सो निज जानै।
मद धारै तो येहि दोष वसु, समकित को मल ठानै।।
कुगुरु कुदेव कुवृष सेवक की, नहिं प्रशंस उचरै हैं।
जिन-मुनि जिन-श्रुत बिन कुगुरादिक तिन्हें न नमन करै हैं।।
दोष-रहित गुण-सहित सुधी जे, सम्यग्दर्श सजै हैं।
चरितमोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजै हैं।।
गेही पै, गृह में न रचे ज्यों, जल तें भिन्न कमल हैं।
नगर-नारि को प्यार यथा, कादे में हेम अमल है।।
प्रथम नारक बिन षट् भू ज्योतिष, वान भवन षँढ़ नारी।
थावर विकलत्रय पशु में नहिं, उपजत सम्यक्धारी।।
तीनलोक तिहुँकाल माँहि नहिं, दर्शन सो सुखकारी।
सकल धरम को मूल यही, इस बिन करनी दुःखकारी।।
मोक्षमहल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान-चरित्रा।
सम्यकता न लहै सो दर्शन, धारौ भव्य पवित्रा।।
'दौल' समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवै।।

चौथी ढ़ाल

(दोहा)

सम्यक्श्रद्धा धारी पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान।
स्व-पर अर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रगटावन भान।।

(रोला)

सम्यक् साथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधौ।
लक्षण श्रद्धा जान, दुहू में भेद अबाधौ।।
सम्यक्कारण जान, ज्ञान कारज है सोई।
युगपत् होते हू, प्रकाश दीपक तैं होई।।
तास भेद दो हैं परोक्ष, परतछि तिन माँही।
मति श्रुत दोय परोक्ष, अक्ष मन तैं उपजाहीं।।
अवधिज्ञान मनपर्जय, दो है देश प्रतच्छा।
द्रव्य क्षेत्र परिमाण लिये, जानै जिय स्वच्छा।।
सकल द्रव्य के गुन अनन्त, परजाय अनन्ता।
जानै एकै काल प्रगट, केवली भगवन्ता।।
ज्ञान समान न आन, जगत में सुख को कारन।
इह परमामृत जन्म-जरा-मृत रोग निवारन।।
कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे।
ज्ञानी के छिन माहिं, त्रिगुप्ति तै सहज टरैं ते।।
मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रीवक उपजायौ।
पै निज आतम ज्ञान बिना, सुख लैश न पायौ।।
तातैं जिनवर कथित, तत्त्व अभ्यास करीजे।
संशय विभ्रम मोह त्याग, आपौ लख लीजै।।

यह मानुष पर्याय, सुकुल सुनिवौ जिनवानी।
इह विधि गयें न मिलैं, सुमणि ज्यों उदधि समानी।।
धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै।
ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै।।
तास ज्ञान को कारण, स्व-पर विवेक बखानो।
कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आनो।।
जे पूरब शिव गये, जाहिं अरु आगे जैहैं।
सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनिनाथ कहै हैं।।
विषय चाह दव दाह, जगत जन अरनि दझावैं।
तास उपाय न आन, ज्ञान घनघान बुझावैं।।
पुण्य-पाप फल माहिं, हरख बिलखौ मत भाई।
यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसै फिर थाई।।
लाख बात की बात, यहै निश्चय उर लाओ।
तोरि सकल जग दन्द-फन्द, निज आतम ध्याओ।।
सम्यग्ज्ञानी होय बहुरि, दृढ़ चारित लीजै।
एकदेश अरु सकलदेश, तसु भेद कहीजै।।
त्रस हिंसा को त्याग, वृथा थावर न संहारै।
पर-वधकार कठोर निंद्य, नहिं वयन उचारै।।
जल मृत्तिकाबिन और, नाहिं कछु गहै अदत्ता।
निज वनिता बिन सकल, नारि सों रहे विरत्ता।।
अपनी शक्ति विचार परिग्रह थोरो राखै।
दश दिशि गमन प्रमान ठान, तसु सीम न नाखै।।
ताहु में फिर ग्राम, गली गृह बाग बजारा।
गमनागम प्रमान, ठान अन सकल निवारा।।

काहू की धन-हानि, किसी जय-हार न चिन्तैं।
देय न सो उपदेश, होय अघ बनज कृषी तैं।।
कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै।
असि धनु हल हिंसोपकरन, नहिं दे जस लाधै।।
राग-द्वेष करतार कथा, कबहुँ न सुनीजै।
और हु अनरथदण्ड, हेतु अघ तिन्हैं न कीजै।।
धरि उर समता भाव, सदा सामायिक करिये।
परब चतुष्टय मांहि, पाप तज प्रोषध धरिये।।
भोग और उपभोग, नियम करि ममत निवारै।
मुनि को भोजन देय, फेर निज करहिं अहारै।।
बारह व्रत के अतिचार, पन पन न लगावै।
मरण समय सन्यास धारि, तसु दोष नशावै।।
यों श्रावक व्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावै।
तहँ तैं चय नर जन्म पाय, मुनि है शिव जावै।।

पाँचवीं ढाल

बारह भावना

(चाल छन्द)

मुनि सकलव्रती बड़भागी, भव-भोगन तैं वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिन्तैं अनुप्रेक्षा भाई।।
इन चिन्तत समसुख जागै, जिमि ज्वलन पवन के लागै।
जब ही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिव सुख ठानै।।
जोबन गृह गो धन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी।
इन्द्रिय भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई।।
सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दले ते।
मणि मन्त्र तन्त्र बहु होई, मरते न बचावे कोई।।

चहुँ गति दुःख जीव भरे हैं, परिवर्तन पंच करे हैं।
सब विधि संसार असारा, यामें सुख नाहिं लगारा।।
शुभ-अशुभ करम फल जेते, भोगे जिय एक ही ते ते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी।।
जल-पय ज्यौं जिय तन मेला, पै भिन्न-भिन्न नहिं भेला।
तो प्रकट जुदे धन धामा, क्यों हैं इक मिलि सुतरामा।।
पल रुधिर राध मल थैली, कीकस वसादि तैं मैली।
नव द्वार बहै घिनकारी, अस देह करै किम यारी।।
जो योगन की चपलाई, तातैं हैं आस्रव भाई।
आस्रव दुःखकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्है निरवेरे।।
जिन पुण्य-पाप नहीं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिन ही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके।।
निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना।
तप करि जो कर्म खिपावे, सोई शिवसुख दरसावे।।
किन हू न करों न धरैं को, षट्द्रव्यमयी न हरै को।
सो लोक मांहि बिन समता, दुःख सहै जीव नित भ्रमता।।
अन्तिम ग्रीवक लौं की हद, पायो अनन्त बिरियाँ पद।
पर सम्यग्ज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निज में मुनि साधौ।।
जो भाव मोह तैं न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारै, तब ही सुख अचल निहारै।।
सो धर्म मुनिन करि धरिये, तिनकी करतूति उचरिये।
ताको सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी।।

छठवीं ढ़ाल
(हरिगीतिका)

षट्काय जीव न हनन तैं, सब विधि दरब हिंसा टरि।
रागादि भाव निवार तैं, हिंसा न भावित अवतरी।।
जिनके न लेश मृषा न जल, मृण हू बिना दीयौ गहैं।
अठ-दश सहस विधिशील धर, चिद्ब्रह्म में नित रमि रहैं।।
अन्तर चतुर्दश भेद बाहिर, संग दशधा तैं टलैं।
परमाद तजि चौकर मही लखि, समिति इर्य्या तैं चलैं।।
जग सुहितकर सब अहितहर, श्रुति सुखद सब संशय हरैं।
भ्रम-रोग हर जिनके वचन, मुख-चन्द्र तैं अमृत झरैं।।
छयालीस दोष बिना सुकुल, श्रावक तनैं घर अशन को।
लैं तप बढ़ावन हेत नहिं तन, पोषते तजि रसन को।।
शुचि ज्ञान संयम उपकरण, लखि कै गहैं लखि कै धरैं।
निर्जन्तु थान विलोकि तन मल, मूत्र श्लेषम परिहरैं।।
सम्यक्प्रकार निरोध मन-वच-काय आतम ध्यावते।
तिन सुथिर मुद्रा देखि मृगगण, उपल खाज खुजावते।।
रस रूप गन्ध तथा फरस अरु, शब्द शुभ असुहावने।
तिनमें न राग विरोध, पंचन्द्रिय जयन पद पावने।।
समता समहारैं थुति उचारैं, वन्दना जिनदेव की।
नित करैं, श्रुति-रति करैं प्रतिक्रम, तजैं तन अहमेव की।।
जिनके न न्हौंन न दन्तधोवन, लेश अम्बर आवरन।
भू माहिं पिछली रयनि में, कछु शयन एकाशन करन।।
इक बार दिन में लैं अहार, खड़े अलप निज पान में।
कचलोंच करत न डरत परिषह, सों लगे निज ध्यान में।।

अरि-मित्र महल-मसान कंचन-काँच निन्दन-थुतिकरन।
अर्घावतारन असि-प्रहारन में, सदा समता धरन।।
तप तपैं द्वादश, धरैं वृष दश, रत्नत्रय सेवैं सदा।
मुनि साथ में वा एक विचरैं, चहैं नहिं भव-सुख कदा।।
यों है सकल संयम चरित, सुनिये स्वरूपाचरन अब।
जिस होत प्रगटै आपनी निधि, मिटै पर की प्रवृति सब।।
जिन परम पैनी सुबुधि छैनी, डारि अन्तर भेदिया।
वरणादि अरु रागादि तैं, निज भाव को न्यारा किया।।
निजमाहिं निज के हेतु, निज कर आपको आपै गह्यो।
गुण-गुणी ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय, मँझार कछु भेद न रह्यो।।
जहँ ध्यान-ध्याता-ध्येय को, न विकल्प वच-भेद न जहाँ।
चिद्भाव कर्म चिदेश कर्ता, चेतना किरिया तहाँ।।
तीनों अभिन्न अखिन्न शुध, उपयोग की निश्चल दसा।
प्रगटी जहाँ दृग-ज्ञान-व्रत, ये तीनधा एकै लसा।।
परमाण-नय-निक्षेप को, न उद्योत अनुभव में दिखै।
दृग-ज्ञान-सुख बलमय सदा, नहिं आन भाव जु मो विषै।।
मैं साध्य-साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनि तैं।
चितपिण्ड चण्ड अखण्ड सुगुणकरण्ड, च्युति पुनि कलनि तैं।।
यों चिन्त्य निज में थिर भये, तिन अकथ जो आनन्द लह्यौ।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा, अहमिन्द्र के नाहीं कह्यौ।।
तब ही शुक्ल ध्यानाग्नि करि, चउ घाति विधि कानन दह्यौ।
सब लख्यौ केवलज्ञान करि, भविलोक कों शिवमग कह्यौ।।
पुनि घाति शेष अघाति विधि, छिन माहिं अष्टम भू बसैं।
वसु कर्म विनसैं सुगुण वसु, सम्यकत्व आदिक सब लसैं।।

संसार खार अपार, पारावार तरि तीरहिं गये।
अविकार अकल अरूप शुचि, चिद्रुप अविनाशी भये।।
निज मांहि लोक अलोक, गुण-परजाय प्रतिबिम्बत भये।
रहि हैं अनन्तानन्त काल; यथा तथा शिव परिणये।।
धनि धन्य है जे जीव नरभव, पाय यह कारज किया।
तिन ही अनादि भ्रमण पंच प्रकार, तजि वर सुख लिया।।
मुख्योपचार दुभेद यों, बड़भागी रत्नत्रय धरैं।
अरु धरेंगे ते शिव लहैं, तिन सुयश-जल जग-मल हरैं।।
इमि जानि आलस हानि, साहस ठानि यह सिख आदरौ।
जबलौं न रोग ज़रा गहै, तबलौं झटिति निज हित करौ।।
यह राग-आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये।
चिर भजे विषय-कषाय अब तो, त्याग निज-पद बेइये।।
कहा रच्यो पर-पद में न तेरो पद यहै क्यों दुःख सहै।
अब 'दौल' होउ सुखी स्व-पद रचि दाव मत चूको यहै।।

(दोहा)

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज सुकल बैशाख।
करयो तत्व उपदेश यह, लखि 'बुधजन' की भाख।।
लघु-धि तथा प्रमादतैं, शब्द-अर्थ की भूल।
सुधी सुधार पढ़ो सदा जो पावो भव-कूल।।

卐 卐 卐

भक्तामर स्तोत्रम्

भक्तामर-प्रणत-मौलि-मणि-प्रभाणा-
मुद्योतकं दलित-पाप-तमो-वितानम्।
सम्यक्प्रणम्य जिन-पाद-युगं युगादा-
बालम्बनं भव-जले पततांजनानाम्।।१।।
यः संस्तुतः सकल-वाङ्मय-तत्त्व-बोधा-
दुद्भूत-बुद्धि-पटुभिः सुर-लोक-नाथैः।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितय-चित्त-हरैरुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्।।२।।
बुद्धया विनापि विबुधार्चित-पाद-पीठ
स्तोतुं समुद्यत-मतिर्विगत-त्रपोऽहम्।
बालं विहाय जल-संस्थितमिन्दु-बिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनःसहसाग्रहीतुम्।।३।।
वक्तुं गुणान्गुण-समुद्र शशांक-कांतान्
कस्ते क्षमः सुर-गुरु-प्रतिमोऽपि बुद्धया।
कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-नक्र-चक्रं,
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम्।।४।।
सोऽहं तथापि तव भक्ति-वशान्मुनीश
कर्तु स्तवं विगत-शक्तिरपि प्रवृतः।
प्रीत्यात्म-वीर्यमविचार्य मृगो मृगेन्द्र
नाभ्येति किं निज-शिशोः परिपालनार्थम्।।५।।
अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहास-धाम
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्।

यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति
तच्चारु-चाम्र-कलिका - निकरैकहेतुः ।।६ ।।
त्वत्संस्तवेन भव-सन्तति-सन्निबद्धं
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम्।
आक्रान्त-लोकमलि-नीलमशेषमाशु
सूर्यांशु-भिन्नमिव शार्वरमन्धकारम्।।७।।
मत्त्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनु-धियापि तव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनि-दलेषु
मुक्ता-फलद्युतिमुपैति ननूद-बिन्दुः।।८।।
आस्तां तव स्तवनमस्त-समस्त दोषं
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति।
दूरे सहस्त्रकिरणः कुरुते प्रभैव
पद्माकरेषु जलजानि विकासभांजि।।९।।
नात्यद्भुतं भुवन-भूषण भूत-नाथ
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति।।१०।।
दृष्ट्वा भवन्तमनिमेष-विलोकनियं
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्वा पयः शशिकर-द्युति-दुग्ध-सिन्धोः
क्षारं जलं जल-निधेरसितुं क इच्छेत्।।११।।
येः शान्त-राग-रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं
निर्मापितस्त्रिभुवनैक -ललाम - भूत।

तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां
यते समानमपरं न हि रूपमस्ति।।१२।।
वक्त्रं क्व ते सुर-नरोरग-नेत्र-हारि
निःशेष - निर्जित - जनत्त्रितयोपमानम्।
बिम्बं कलंक-मलिनं क्वनिशाकरस्य
यद्वासरे भवति पाण्डु पलाश-कल्पम्।।१३।।
संपूर्ण-मण्डल-शशांक-कला-कलाप-
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तब लंघयन्ति।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वर-नाथमेकं
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम्।।१४।।
चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभि-
र्नीतं मनागपि मनो न विकार-मार्गम्।
कल्पान्त-काल-मरुता चलिताचलेन
किं मन्दराद्रि-शिखरं चलितं कदाचित्।।१५।।
निर्धूम-वर्तिरपवर्जित-तैल-पूरः
कृत्सनं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ! जगत्प्रकाशः।।१६।।
नास्तं कदाचिदुपयासि न राहु गम्यः
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति।
नाम्भोधरोदर-निरुद्ध-महा-प्रभावः
सूर्यातिशायि-महिमासि मुनीन्द्र! लोके।।१७।।
नित्योदयं दलित-मोह-महान्धकारं
गम्यं न राहु-वदनस्य न वारिदानाम्।

विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति
विद्योतयज्जगदपूर्व - शशांक - बिम्बम् ।।१८।।
किं शर्वरीषु शशिनाहि विवस्वता वा
युष्मन्मुखेन्दु-दलितेषु तमःसु नाथ।
निष्पन्न-शालि-वन-शालिनि जीव-लोके
कार्यं कियज्जलधरैर्जल-भर-नम्रैः ।।१६।।
ज्ञानं यथा त्वयिविभाति कृतावकाशं
नैवं तथा हरि-हरादिषु नायकेषु।
तेजःस्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं
नैवं तु काच-शकले किरणाकुलेऽपि ।।२०।।
मन्ये वरं हरि-हरादय एवं दृष्टा
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः
कश्चिन्मनो हरित नाथ भवान्तरेऽपि ।।२१।।
स्त्रीणां शातानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्र-रश्मिं
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ।।२२।।
त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्य-वर्णममलं तमसः परस्तात्।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं
नान्यः शिवः शिव-पदस्य मुनिन्द्र! पन्थाः ।।२३।।
त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्गकेतुम्।

योगीश्वरं विदित-योगमनेकमेकं
ज्ञान-स्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ।।२४।।
बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित-बुद्धि-बोधात्
त्वं शङ्करोऽसि भुवन-त्रय-शंकरत्वात् ।
धातासि धीर शिव-मार्ग-विधेर्विधानाद्
व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोऽसि ।।२५।।
तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ !
तुभ्यं नमः क्षिति-तलामल-भूषणाय ।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय
तुभ्यं नमो जिन! भवोदधि-शोषणाय ।।२६।।
को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश ।
दोषैरुपात्तविविधाश्रय-जात-गर्वैः
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ।।२७।।
उच्चैरशोक-तरु-संश्रितमुन्मयूख-
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम् ।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्त-तमो-वितानं
बिम्बं रवेरिव पयोधर-पार्श्ववर्ति ।।२८।।
सिंहासने मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलता-वितानं
तुङ्गोदयाद्रि शिरसीव सहस्र-रश्मेः ।।२९।।
कुन्दावदात-चल-चामर-चारु-शोभं
विभ्राजते तब वपुःकलधौत-कान्तम् ।

उद्यच्छशांक-शुचिनिर्झर-वारि-धार
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ।।३०।।
छत्र-त्रयं तव विभाति शशाङ्क-कान्त-
मुच्चेः स्थितं स्थगित-भानु-कर-प्रतापम् ।
मुक्ता-फल-प्रकर-जाल-विवृद्ध-शोभं
प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ।।३१।।
गम्भीर-तार-रव-पूरित-दिग्विभाग-
स्त्रैलोक्य-लोक-शुभ-संगम-भूति-दक्षः।
सद्धर्मराज-जय-घोषण-घोषकः सन्
खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी।।३२।।
मन्दार-सुन्दर-नमेरु-सुपारिजात-
सन्तानकादि-कुसुमोत्कर-वृष्टि-रुद्धा।
गन्धोद-बिन्दु-शुभ-मन्द-मरुत्प्रयाता
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा।।३३।।
शुम्भत्प्रभा-वलय-भूरि-विभा विभोस्ते
लोक-त्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती।
प्रोद्यद्दिवाकर-निरन्तर-भूरि-संख्या
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोम-सौम्याम् ।।३४।।
स्वर्गापवर्ग-गम-मार्ग-विमार्गणेष्टः
सद्धर्म-तत्त्व-कथनैक-पटुस्त्रिलोक्याः।
दिव्य-ध्वनिर्भवति ते विशदार्थ-सर्व-
भाषा-स्वभाव-परिणाम-गुणै-र्प्रयोज्यः।।३५।।
उन्निंद्र-हेम-नव-पङ्कज-पुंज-कान्ती
पर्युल्लसन्नख-मयुख-शिखाभिरामौ।

पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र धत्तः
पद्मानि तत्र विभुधाः परिकल्पयन्ति।।३६।।
इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र
धर्मोपदेशन-विधो न तथा परस्य।
यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा
तादृक्कृतो ग्रह-गणस्य विकासिनोऽपि।।३७।।
श्च्योतन्मदाविल-विलोल-कपोल-मूल-
मत्तभ्रमद् भ्रमर-नाद-विवृद्ध-कोपम्।
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तं
दृष्टवा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम्।।३८।।
भिन्नेभ-कुम्भ-गलदुज्ज्वल-शोणिताक्त-
मुक्ता-फल-प्रकर-भूषित-भूमि-भागः।
बद्ध-क्रमः क्रम-गतं हरिणाधिपोऽपि
नाक्रामति क्रम-युगाचल-संश्रितं ते।।३६।।
कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-वह्निन-कल्पं
दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिंगम्।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तं
त्वन्नाम-कीर्तन-जलं शमयत्यशेषम्।।४०।।
रक्तेक्षणं समद-कोकिल-कण्ठ-नीलं
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम्।
आक्रामति क्रम-युगेण निरस्त-शंङ्कः
स्त्वन्नाम-नाग-दमनिहृदि यस्य पुंसः।।४१।।
वल्गत्तुरङ्ग-गज-गर्जित-भीमनाद-
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम्।

उद्यदिवाकर-मयूख-शिखापविद्धं
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति।।४२।।
कुन्ताग्र-भिन्न-गज-शोणित-वारिवाह-
वेगावतार-तरणातुर-योध-भीमे।
युद्धे जयं विजित-दुर्जय-जेय-पक्षा-
स्त्वत्पाद-पंकज-वनाश्रयिणो लभन्ते।।४३।।
अम्भोनिधौ क्षुभित-भीषण-नक्र-चक्र
पाठीन-पीठ-भय-दोल्वण-वाडवाग्नौ।
रंगत्तरंग-शिखर-स्थित-यान-पात्रा-
स्त्रांसं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति।।४४।।
उद्भुत-भीषण-जलोधर-भार-भुग्नाः
शोच्यां दशामुपगताश्च्युत-जीविताशाः।
त्वत्पाद-पंकज-रजोमृत-दिग्ध-देहा
मर्त्या भवन्ति मकरध्वज-तुल्यरूपाः।।४५।।
आपाद-कण्ठमुरुश्रृंखल-वेष्टितांगा
गाढं बृहन्निगड-कोटि-निघृष्ट-जंगा।
त्वन्नाम-मन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः
सद्यः स्वयं विगत-बन्ध-भया भवन्ति।।४६।।
मत्तद्विपेन्द्र-मृगराज-दवानलाहि-
संग्राम-वारिधि-महोदर-बन्धनोत्थम्।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते।।४७।।
स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां
भक्त्या मया रुचिर-वर्ण-विचित्र-पुष्पाम्।
धत्ते जनो य इह कण्ठ-गतामजस्रं
तं 'मानतुंग' मवशा समुपैति लक्ष्मीः।।४८।।

भक्तामर स्तोत्र (भाषा)

(दोहा)

आदिपुरुष आदीश जिन, आदि सुविधि करतार।
धरम-धुरंधर परमगुरु, नमों आदि अवतार।।

(चौपाई)

सुर-नत-मुकुट रतन-छवि करैं, अन्तर पाप-तिमिर सब हरैं।
जिनपद वन्दों मन-वच-काय, भव जल-पतीत उधरन-सहाय।।१।।
श्रुत पारग इन्द्रदिक देव, जाकि थुति कीनी कर सेव।
शब्द मनोहर अरथ विशाल, तिस प्रभु की वरनों गुन-माल।।२।।
विबुध-वंद्य-पद मैं मति-हीन, हो निलज्ज थुति-मनसा कीन।
जल-प्रतिबिम्ब बुद्ध को गहै, शशि-मण्डल बालक ही चहै।।३।।
गुन-समुद्र तुम गुन अविकार, कहत न सुर-गुरु पावें पार।
प्रलय-पवन-उद्धत जल-जन्तु, जलधि तिरै को भुज बलवन्त।।४।।
सो मैं शक्तिहीन थुति करूँ, भक्तिभाव वश कुछ नहिं डरूँ।
ज्यों मृगि निज-सुत पालन हेत, मृगपति सन्मुख जाय अचेत।।५।।
मैं शठ सुधी हँसन को धाम, मुझ तव भक्ति बुलावै राम।
ज्यों पिक अंब-कली-परभाव, मधु-ऋतु मधुर करै आराव।।६।।
तुम जस जपत जन छिनमाहिं, जनम-जनम के पाप नशाहिं।
ज्यों रवि उगै फटै तत्काल, अलिवत नील निशा-तम-जाल।।७।।
तव प्रभावतैं कहूँ विचार, होसी यह थुति जन-मन-हार।
ज्यों जल-कमल-पत्रपै परै, मुक्ताफलकी द्युति विस्तरै।।८।।
तुम गुन-महिमा हत-दुख-दोष, सो तो दूर रहो सुख-पोष।
पाप-विनाशक है तुम नाम, कमल-विकाशी ज्यों रवि-धाम।।९।।

नहिं अचम्भ जो होहिं तुरन्त, तुमसे तुम गुण वरणत संत।
जो अधीनको आप समान, करै न सो निंदित धनवान।।१०।।
इकटक जन तुमको अविलोय, अवरविषै रति करै न सौय।
को करि छीर-जलधि जल पान, क्षार नीर पीवै मतिमान।।११।।
प्रभु तुम वीतराग गुन-लीन, जिन परमाणु देह तुम कीन।
हैं तितने ही ते परमाणु, यातैं तुम सम रूप न आनु।।१२।।
कहाँ तुम सुख अनुपम अविकार, सुर-नर-नाग-नयन-मनहार।
कहाँ चन्द्र-मण्डल सकलंक, दिनमें ढाक-पत्र सम रंक।।१३।।
पूरन-चन्द्र-ज्योति छविवंत, तुम गुन तीन जगत लंघंत।
एक नाथ त्रिभुवन आधार, तिन विचरत को करै निवार।।१४।।
जो सुर-तियविभ्रम आरम्भ, मन न डिग्यो तुम तौं न अचंभ।
अचल चलावै प्रलय समीर, मेरु-शिखर डगमगै न धीर।।१५।।
धूमरहित वाती गत नेह, परकाशै त्रिभुवन घर एह।
वात-गम्य नाहीं परचण्ड, अपर दीप तुम बलो अखण्ड।।१६।।
छिपहु न लुपहु राहुकी छांहि, जग-परकाशक हो छिनमांहिं।
घनअनवर्त्त दाह विनिवार, रवितैं अधिक धरो गुणसार।।१७।।
सदा उदित विदलित मनमोह, विघटित नेह राहु अविरोह।
तुम मुख-कमल अपूरब चंद, जगत विकासी जोति अमन्द।।१८।।
निशदिन शशिरवि को नहिं काम, तुम मुखचंद हरै तम घाम।
जो स्वभावतैं उपजै नाज, सजल मेघ तो कौनहु काज।।१९।।
जो सुबोध सोहै तुममाहिं, हरि नर आदिकमें सो नाहिं।
जो दुति महा-रत्न में होय, काच-खण्ड पावै नहिं सोय।।२०।।

(नाराच छन्द)

सराग देव देख मैं भला विशेष मानिया।
स्वरूप जाहि देख वीतराग तू पिछानिया।।
कछु न तोहिं देखके जहाँ तुही विशेखिया।
मनोग चित्त-चोर और भूल हूँ न पेखिया।।२१।।
अनेक पुत्रवंतिनी नितंबिनी सपूत हैं।
न तो समान पुत्र और माततैं प्रसूत हैं।।
दिशा धरंत तारिका अनेक कोटिको गिनै।
दिनेश तेजवंत एक पूर्व ही दिशा जनै।।२२।।
पुरान हो पुमान हो पुनीत पुण्यवान हो।
कहैं मुनीश अन्धकार-नाशको सुभान हो।।
महंत तोहि जानके न होय वश्य कालके।
न और मोहि मोखपंथ देह तोहि टालके।।२३।।
अनन्त नित्य चित्तकी अगम्य रम्य आदि हो।
असंख्य सर्वव्यापि विष्णु ब्रह्म हो अनादि हो।।
महेश कामकेतु योग ईश योग ज्ञान हो।
अनेक एक ज्ञानरूप शुद्ध संतमान हो।।२४।।
तुही जिनेश बुद्ध है सुबुद्धि के प्रमानतैं।
तुही जिनेश शंकरो जगत्त्रये विधानतैं।।
तुही विधात है सही सुमोखपंथ धारतैं।
नरोत्तमो तुही प्रसिद्ध अर्थके विचारतैं।।२५।।
नमों करूँ जिनेश तोहि आपदा निवार हो।
नमों करूँ सु भूरि भूमि-लोक के सिंगार हो।।
नमों करूँ भवाब्दि-नीर-राशि-शोष-हेतु हो।
नमों करूँ महेश तोहि मोखपंख देतु हो।।२६।।

(चौपाई)

तुम जिन पूरन गुन-गन भरे, दोष गर्व करि तुम परिहरे।
और देव-गण आश्रय पाय, स्वप्न न देखे तुम फिर आय।।२७।।
तरु अशोक-तर किरन उदार, तुम तन शोभित हे अविकार।
मेघ निकट ज्यों तेज फुरंत, दिनकर दिपै तिमिर निहनंत।।२८।।
सिंहासन मनि-किरन-विचित्र, तापर कंचन-वरन पवित्र।
तुमतन शोभित किरन-विथार, ज्यों उदयाचल रवि तमहार।।२९।।
कुन्द-पहुप-सित-चमर ढुरंत, कनक-वरन तुम तन शोभंत।
ज्यों सुमेरु-तट निर्मल कांति, झरना झरैं नीर उमगांति।।३०।।
ऊँचे रहैं सूर दुति लोप, तीन छत्र तुम दिपैं अगोप।
तीन लोक की प्रभुता कहैं, मोती-झालरसौं छवि लहैं।।३१।।
दुन्दुभि-शब्द गहर गम्भीर, चहुँदिशि होय तुम्हारे धीर।
त्रिभुवन-जन शिवसंगम करैं, मानूँ जय-जय रव उच्चरैं।।३२।।
मन्द पवन गन्धोदक इष्ट, विविध कल्पतरु पहुप-सुवृष्ट।
देव करैं विकसित दल सार, मानौं द्विज-पंकति अवतार।।३३।।
तुम तन-भामण्डल जिनचन्द, सब दुतिवंत करत है मन्द।
कोटिशंख रवि तेज छिपाय, शशि निर्मल निशि करै अछाय।।३४।।
स्वर्ग-मोख-मारग संकेत, परम-धरम उपदेशन हेत।
दिव्य वचन तुम खिरैं अगाध, सब भाषागर्भित हित साध।।३५।।

(दोहा)

विकसित-सुवरन-कमल-दुति, नख-दुति मिलि चमकाहिं।
तुम पद पदवी जहँ धरो, तहँ सुर कमल रचाहिं।।३६।।
ऐसी महिमा तुम विषै, और धरै नहिं कोय।
सूरज में जो जोत है, नहिं तारा-गण होय।।३७।।

(षट्पद)

मद-अवलिप्त-कपोल-मूल अलि-कुल झंकारैं।
तिन सुन शब्द प्रचंड क्रोध उद्धत अति धारैं।।
काल-वरन विकराल कालवत सनमुख आवैं।
ऐरावत सो प्रबल सकल जन भय उपजावैं।।
देखि गयन्द न भय करै, तुम पद महिमा छीन।
विपति रहित सम्पति सहित, वरतैं भक्त अदीन।।३८।।

अति मद-मत्त-गयन्द कुम्भथल नखन विदारै।
मोती रक्त समेत डारि भूतल सिंगारै।।
बाँकी दाढ़ विशाल वदन में रसना लोलै।
भीम भयानक रूप देखि जन थरहर डोलै।।
ऐसे मृगपति पगतलैं, जो नर आयो होय।
शरण गये तुम चरणकी, बाधा करै न सोय।।३९।।

प्रलय-पवनकर उठी आग जो तास पटन्तर।
बमैं फुलिंग शिखा उतंग पर जलैं निरन्तर।।
जगत समस्त निगल्ल भस्मकर हैगी मानों।
तडतडाट दव-अनल जोर चहुँदिशा उठानो।।
सो इक छिनमें उपशमें, नाम-नीर तुम लेत।
होय सरोवर परिनमै, विकसित कमल समेत।।४०।।

कोकिल-कंठ-समान श्याम-तन क्रोध जलंता।
रक्त-नयन फुंकार मार विष-कण उगलन्ता।।
फणको ऊंचो करै वेग ही सन्मुख धाया।
तब जन होय निशंक देख फणिपति को आया।।

जो चाँपे निज पगतलैं, व्यापै विष न लगार।
नाग-दमनि तुम नामकी, है जिनके आधार।।४१।।

जिस रन माहिं भयानक रव कर रहे तुरंगम।
घनसे गज गरजाहिं मत्त मानों गिरि जंगम।।
अति कोलाहल मांही बात जहँ नाहिं सुनीजै।
राजन को परचंड, देख बल धीरज छीजै।।

नाथ तिहारे नामतैं, सो छिनमाहिं पलाय।
ज्यों दिनकर परकाशतैं, अन्धकार विनशाय।।४२।।

मारै जहाँ गयन्द कुम्भ हथियार विदारै।
उमगै रुधिर प्रवाह बेग जलसम विस्तारै।।
होय तिरन असमर्थ महाजोधा बल पूरे।
तिस रनमें जिन तोर भक्त ते हैं न सूरे।।

दुर्जय अरिकुल जीतके, जस पावैं निकलंक।
तुम पद-पंकज मन बसै, ते नर सदा निशंक।।४३।।

नक्र चक्र मगरादि मच्छकरि भय उपजावै।
जामैं बड़वा अग्नि दाहतैं नीर जलावै।।
पार न पावै जास थाह नहिं लहिये जाकी।
गरजै अतिगम्भीर लहरकी गिनति न ताकी।।

सुखसों तिरै समुद्र को, जे तुम गुन सुमराहिं।
लोलक-लोलनके शिखर, पार यान ले जाहिं।।४४।।

महा जलोदर रोग, भार पीड़ित नर जे हैं।
वात पित्त कफ कुष्ट आदि जो रोग गहै हैं।।
सोचत रहैं उदास नाहिं जीवन की आशा।
अति घिनावनी देह धरैं दुर्गन्धि-निवासा।।

तुम पद-पंकज-धूलको, जो लावैं निज-अंग।
ते नीरोग शरीर लहि, छिनमें होय अनंग।।४५।।

पाँव कठतैं जकर बाँध सांकल अति भारी।
गाढी बेड़ी पैरमाँहि जिन जाँघ विदारी।।
भूख प्यास चिंता शरीर दुःख जे विललाने।
सरन नाहिं जिन कोय भूपके बन्दीखाने।।

तुम सुमरत स्वयमेव ही बन्धन सब खुल जाहिं।
छिनमें ते संपति लहैं चिंता भय विनसाहिं।।४६।।

महामत्त गजराज और मृगराज दवानल।
फणपति रण परचंड नीर-निधि रोग महाबल।।
बन्धन ये भय आठ डरपकर मानों नाशै।
तुम सुमरत छिनमाहिं अभय थानक परकाशै।।

इस अपार संसार में, शरन नाहिं प्रभु कोय।
यातैं तुम पद-भक्त को, भक्ति सहाई होय।।४७।।

यह गुनमाल विशाल नाथ तुम गुनन संवारी।
विविध-वर्णमय-पुहुप गूँथ मैं भक्ति विथारी।।
जे नर पहिरे कंठ भावना मन में भावैं।
'मानतुंग' ते निजाधीन-शिव-लक्ष्मी पावैं।।

भाषा भक्तामर कियो, 'हेमराज' हित हेत।
जे नर पढ़ैं सुभावसों, ते पावैं शिव-खेत।।४८।।

जिनेन्द्र कलशाभिषेक के अवसर पर पठित

श्री जिनवर जयमाला

अमर नयरी समनयरी अयोध्या, नाभिनरेन्द्र वसैनिज बुद्धया।
सुरपति मेरुशिखर लहि चढ़िया कनक कलश क्षीरोदधि भरिया।
तस पटराणी मरुदेवी माया युगपति आदि जिनेश्वर जाया।
ज्येष्ठ मास अभिषेक जुकरिया अष्टोत्तरशत कुम्भ जुढ़रिया।
भभकत जलधारा संचरिया ललित कलोलधरणी उतरिया।
जय जय असुरनिकरी उच्चरिया इन्द्र इन्द्राणी सिंहासन धरिया।
अंग अनंग विभूषण धरिया कुण्डल रहित हार मणी जड़िया।
ऋषभ नाम शत मुख विस्तरिया कमलनयन कमलापति कहिया।
युगला धर्म निवारण वरिया सुरनर निकर गंदोधक महिया।
रतन कंचोल कुमरिनि भरिया जिनचरणाम्बुज पूजत हरिया।
हिम हिमांशु चन्दन धन सरिया भूरि सुगंध गन्ध परिसरिया।
अक्षत-अक्षत वास लहरिया रोहणींकांत किरण सम सरिया।
देखत रुचि करि अमरनि करिया पंचमुष्ठीं जिन आगे धरिया।
सुन्दर पारीजात मोगरिया कमल बकुल पाटल कमुदरिया।
चरु वर दीपलेईअपछरिया जिनवर आगे उतारि उघरिया।
अगर लोबान धूप फल फलिया फणसुरसाल मधुर रस भरिया।
कुसुमांजली सांजुलिसम जुलिया पंडित राय अभ्रवच कलिया।
त्रिभुवन कीर्तिंपदकंज वरिया रत्नभूषण सूरी महापद कहिया।
ब्रह्मकृष्ण जिनराज स्तविया जय जयकार करि मनहारिया।
कुम्भ कलश भरि जय जिनवरिया शाश्वत शर्म सदा अनुसरिया।

घता- यावन्तिजिन चैत्यानि विद्यन्ते भुवन भये।
तावन्ति सततंभ-त्तया, त्रिपरित्यनमायः।।